Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

राज्यकाण्डम् (उत्तरार्द्धम्)

त्रयोदशः सर्गः

(राम द्वारा राज्यभरमें हास्यपर प्रतिबन्ध)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा रमाजानिः सुहृद्भिः सदसि स्थितः । वीजितश्चामरेणैव लक्ष्मणेनातिशोभितः ॥ १ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पौरः कश्चित्सभास्थितः । वाराङ्गनानां नृत्यादिं दृष्ट्वा हास्यं चकार सः ॥ २ ॥
तद्धास्यं राघवः श्रुत्वा सस्मार पूर्वचेष्टितम् । लंकायां युद्धसमये रावणस्य शिरांसि खात् ॥ ३ ॥
रामबाणान्मृतिं लब्ध्वाऽस्माभिश्चेति विहस्य च । श्रीरामं वन्दनं कर्तुं पतन्ति स्म प्रभुं पुनः ॥ ४ ॥
तेषां विक्रालतां दृष्ट्वा दंतादीनां रघूत्तमः । मामत्तुं हि पुनर्यान्ति शिरांस्येतानि खादिति ॥ ५ ॥
रामो भीत्या पुनस्तानि खे शिरांस्यक्षिपच्छरैः । एकोत्तरशतान्येव वारं वारं त्वरान्वितः ॥ ६ ॥
तद्वृत्तं राघवः स्मृत्वा किं दशास्यस्य वै शिरः । समागतं सभामध्येऽत्रेति पार्श्वेऽन्यलोकयत् ॥ ७ ॥
मायाविनो राक्षसाश्च संत्यत्रेति विचिंत्य च । एवं यदा यदा हास्यं स शुश्राव रघूत्तमः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासजी बोले—एक दिन रामचन्द्रजी अपने मित्रोंके साथ सभामें बैठे थे। उस समय रामपर चँवर चल रहे थे और लक्ष्मण रामके पास बैठे हुए थे। इसलिए रामकी शोभा कईगुना अधिक दिखायी दे रही थी ॥ १ ॥ इसी समय सभाका कोई नागरिक वेश्याओंका नृत्य देखकर जोरोंके साथ हँस पड़ा ॥ २ ॥ उस हास्यको सुना तो रामको उस समयकी एक बात याद आ गयी, जब वे लंकामें रावणके मस्तकोंको अपने बाणोंसे काटकर आकाशमें उड़ा देते थे तो वे मस्तक यह समझकर कि रामके बाणोंसे मेरी वुद्धि ठिकाने आयी है। इस भावसे हँसते हुए ऊपरसे फिर नीचे आकर रामके चरणोंमें लोटते हुए वन्दना करने लगते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनके दाँतों आदिकी विकरालता देखकर रामको यह ख्याल होता था कि ये मस्तक मुझे खाने आ रहे हैं। इस लिए उन्हें फिर बाणों द्वारा आकाशमें उड़ा दिया करते थे। यह उपाय रामको एक दो बार नहीं – पूरे एक सौ एक बार करने पड़े थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसी बातको स्मरण करके रामने सोचा कि कहीं रावणके मस्तक ही तो इस सभामें आकर ठहाका नहीं मार रहे हैं। इस भावसे उन्होंने अपने आस-पास विस्मयभरे नेत्रोंसे देखा ॥ ७ ॥ क्योंकि उनका ख्याल था कि राक्षस मायावी होते हैं, शायद यहाँ भी आ जायँ तो क्या आश्चर्य है । इस तरह राम जब कभी किसीका हास्य सुनते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तदा तदा पूर्ववृत्तं स्मृत्वा पार्श्वे व्यलोकयत् । ततो रामः क्षणं चित्ते चिंतयामास सादरम् ॥ ९ ॥
यदा यदा श्रूयतेऽत्र हास्यं केनापि यत्कृतम् । तदा तदा दशास्यस्य शिरोहास्यं स्मराम्यहम् ॥१०॥
मायाविनो राक्षसास्ते मां विस्मार्य पुनश्चिरात् । मामत्तुमत्र यास्यंति त्विति मत्वा स्वचेतसि ॥११॥
अन्यच्च निंदितं हास्यं नीतिशास्त्रेषु सर्वदा । अतो हास्यं वर्जयामि सर्वेषां भूनिवासिनाम् ॥१२॥
इति निश्चित्य हृदये लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् । दुंदुभिं घोषयस्वाद्य पुर्यां राष्ट्रेऽवनीतले ॥१३॥
स्मिताननो नरः कश्चिन्नारी वाऽथ सुहृच्च वा । सीता वा तनयो बंधुः स मे दंड्यो भवेदिति ॥१४॥
तथेति रामवाक्यात्स घोषयामास दुन्दुभिम् । पौरा जनपदाः सर्वे श्रुत्वा शिक्षाध्वनिं प्रभोः ॥१५॥
रामदंडभयात् सर्वे न चक्रुस्ते स्मिताननम् । वारांगनानृत्यगीते नटगीतप्रवर्तने ॥१६॥
स्त्रीभिः सुहृद्भिर्मित्रैश्च विनोदानुत्सवान् वरान् । मांगल्यानि च कर्माणि हास्यकारीणि नाचरन् ॥१७॥
वंशस्तंभकलाभिश्च कौतुकानि हि यानि च । तूर्यघोषादिमाङ्गल्यकर्माणि विविधाः कथाः ॥१८॥
सांवत्सरोत्सवान् सर्वान् यात्रायज्ञोत्सवान् शुभान् । कौतुकानुत्सवांश्चैव विवाहादिषु कर्मसु ॥१९॥
वार्ताश्चित्रकथाश्चापि न चक्रुश्च कदा जनाः । ययौ नावश्यकात्कार्याद्विना सदसि कः प्रभुम् ॥२०॥
पुराणानीतिहासांश्च न पठन्ति स्म केचन । गर्भाधाने पुत्रजन्मनामकर्मादिषूत्सवान् ॥२१॥
पौरा जानपदाः सर्वे सप्तद्वीपनिवासिनः । एतानि हास्यकारीणि नानाकर्माणि भूतले ॥२२॥
रहस्यपि न चक्रुस्ते रामदण्डभयात् कदा । एवमासीद्वर्षमेकं तदा भूम्यां कदापि हि ॥२३॥
स्मिताननं कस्य नासीन्न चक्रुर्मंडनादिकम् । तदोत्साहदेवताश्च नानाकर्माङ्गदेवताः ॥२४॥
इन्द्राय कथयामासुस्तद्वृत्तं जगतीभवम् । इंद्रादीनां सुराणां च कर्मांगपूजनादि हि ॥२५॥
नासीद्यदा जगत्यां हि तदेंद्रोऽकथयद्विधिम् । तदा सुरान्विधिः प्राह न रामाग्रे बलं हि नः ॥२६॥

तो उनका ध्यान उसी ओर आकृष्ट हो जाया करता था और अपने अगल-बगल निहारने लगते थे। इस समय रामने उस हास्यको सुनकर क्षणभर विचार किया और लोगोंसे कहने लगे—॥ ८ ॥ ९ ॥ जब कभी मैं किसीका हास्य सुनता हूँ तो मुझे रावणकी हँसी स्मरण आ जाया करती है और यह ख्याल होता है कि वे मायावी राक्षस जिनको कि मैंने मार डाला है, धोखा देकर मुझे खानेके लिए लिए तो नहीं आ गये हैं ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ दूसरे नीतिशास्त्रमें भी हास्यकी निन्दा की गयी है । इसीलिए आजसे मैं भूतलपर रहनेवालोंको हँसनेकी मनाही करता हूँ। इसके बाद लक्ष्मणसे बोले कि मेरे राष्ट्र तथा पृथ्वीतल भरमें डुग्गी पिटवाकर कहला दो कि कोई स्त्री, पुरुष, मेरा मित्र, स्वयं सीता तथा मेरे बेटे या भाई भी न हँसें। जो इस आज्ञाके विपरीत चलेगा, उसे दण्ड भुगतना पड़ेगा ॥ ११-१४ ॥ लक्ष्मणने रामके आज्ञानुसार चारों ओर दुंदुभी बजवाकर रामकी यह आज्ञा घोषित करा दी। जितने पुरवासी अथवा देशवासी थे, उन्होंने प्रभुकी इस शिक्षाध्वनिको सुनकर दण्डके भयसे हमेशाके लिये हँसना छोड़ दिया। वेश्याओंके नृत्य, गाने, नाटक, स्त्रियों या मित्रोंके साथ हँसी-दिल्लगी आदि ऐसे सब कार्य बन्द कर दिये गये, जिनमें हँसी आनेका अन्देशा रहता था ॥ १५-१७ ॥ उस समय बाँसपर चढ़कर नाचने आदिकी कला, तुड़ही-नगाड़े आदिके बाजे, यात्रा, यज्ञ, सांवत्सरिक उत्सव, विवाह आदि मङ्गल कार्योंमें भी हँसी लानेवाले खेल-कूद और गप-शप आदि बातोंको बन्द कर दिया और बिना किसी विशेष कामके कोई रामकी सभामें भी नहीं जाता था ॥ १८-२० ॥ लोगोंसे पुराण-इतिहास आदिका भी पढ़ना छोड़ दिया। गर्भाधान, पुत्रजन्म, नामकर्म आदि उत्सवोंमें हँसी न आने देनेका पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाने लगा। मतलब यह कि सारे पुरवासी एवं देशवासी हास्योत्पादक कामोंको नहीं करते थे। रामके दण्डभयसे कोई एकान्तमें भी नहीं हँसता था। यह व्यवस्था एक वर्ष तक चलतीरही। इस बीचमें भूतलनिवासियोंमेंसे किसीका भी मुखमण्डल मुस्कराता हुआ नहीं दीखा और किसीने भी अपना शृङ्गार आदि नहीं किया। ऐसी अवस्थामें कितने ही कर्माङ्गदेवता और बहुतसे उत्साहदेवता एकत्रित होकर इन्द्रके पास गये ॥ २१-२४ ॥ उन्होंने पृथ्वीतलके उस समाचारको कह सुनाया। जब इन्द्रने सुना कि हम देवताओं-

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Nagpur Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नैवोपदेष्टुं योग्यः स ममापि जनकस्तु यः । युक्त्या कार्यं साधयामि येन चोऽद्य हितं भवेत् ॥२७॥
इत्याश्वास्य सुरान् सर्वान्विधिर्भूमण्डलं ययौ । अयोध्यायाश्च सीमायां दृष्ट्वा वेधाः सुपिप्पलम् ॥२८॥
स्वयं विवेश तन्मध्ये दृष्ट्वा पांथान् जहास सः । एतस्मिन्नंतरे कश्चित्काष्ठभारवहः पुमान् ॥२९॥
श्रुत्वा पिप्पलहास्यं तत्तेन दीर्घं जहास सः । ततः स भारवाहश्च ययौ हट्टे प्रभोः पुरीम् ॥३०॥
काष्ठभारविक्रयार्थं तत्र स्मृत्वा स्मितं हृदि । चलपत्रस्य सोऽत्युच्चैर्न समर्थो निरोधितुम् ॥३१॥
भारवाहस्य हास्यं तद्राजदूतोऽथ शुश्रुवे । राजदूतो जहासोच्चैर्न समर्थो निरोधितुम् ॥३२॥
राजदूतः सभां गत्वा भारवाहस्य यत् स्मितम् । हृदि स्मृत्वा जहासोच्चैस्तच्छ्रुत्वा ते सभासदः ॥३३॥
सभायां जहसुः सर्वे तच्छ्रुत्वा राघवोऽपि सः । उच्चैर्जहास सदसि वरसिंहासने स्थितः ॥३४॥
रामो विचारयामास किमर्थं हसितं मया । यन्निमित्तं सदा दण्डं पौरान् जानपदान्निजान् ॥३५॥
अहं करोमि सोऽद्याहं सभायां हसितः कथम् । दण्डयिष्यति मां कोऽद्य किं मां पौरा वदंति हि ॥३६॥
अस्माकमेव शिक्षाऽस्ति सर्वदा राघवस्य सा । स कथं हसितश्चाद्य सर्वेषां पुरतः स्फुटम् ॥३७॥
शिक्षां करिष्यति विभोः कोऽस्य त्विति वदंति ते । मानयिष्यंति नातस्ते ममाग्रे शिक्षितं भुवि ॥३८॥
ममैतन्न व्रतं योग्यमिति रामस्त्वमन्यत । पुनर्जहास श्रीरामस्तन्निरोद्धुं न स क्षमः ॥३९॥
ततो रामोऽब्रवीत्पौरान् सभास्थान्स्मितराननः । किमर्थं हसिता यूयं येभ्यो हास्यं ममापि हि ॥४०॥
समागतं सभामध्ये पौराः प्रोचुर्नृपोत्तमम् । दृष्ट्वा त्वद्दूतहास्यं हि तेनास्माकं समागतम् ॥४१॥
तत् पौरवचनं श्रुत्वा दूतमाह रघूत्तमः । त्वया किमर्थं हसितं सोऽब्रवीद्रघुनन्दनम् ॥४२॥

के कर्माङ्ग पूजनादि सत्कार्य लुप्त होते जा रहे हैं तो ब्रह्माके पास जाकर यह बात बतायी। ब्रह्माने कहा कि रामचन्द्रजीके आगे हम लोगोंमें कुछ भी शक्ति नहीं है ॥ २५ ॥ २६ ॥ मैं उन्हें उपदेश नहीं दे सकता। क्योंकि वे मेरे पिता हैं। इसलिए मैं किसी युक्तिसे अपना कार्यसाधन करूँगा कि जिससे आप लोगोंका कल्याण हो ॥ २७ ॥ इस प्रकार उन्हें आश्वासन देकर ब्रह्माजी भूमण्डलकी ओर चल पड़े। अयोध्याकी सीमापर एक विशाल पिप्पल वृक्षको देखकर वे स्वयं उसके भीतर प्रविष्ट हो गये और उस रास्तेसे आने-जानेवाले लोगोंको देख-देखकर जोरोंसे हँसने लगे। उसी समय एक लकड़हारा लकड़ीका बोझ माथेपर रक्खे हुए वहाँ आ पहुँचा। उसे भी देखकर पीपलके भीतर बैठे हुए ब्रह्माजी हँसे ॥ २८ ॥ २९ ॥ पीपलकी हँसी सुनकर लकड़हारा दूने जोरसे हँसा और लकड़ीका बोझा लिये हुए अयोध्या नगरीमें जा पहुँचा। रास्तेमें उसे पीपलकी हँसीवाली बात याद आ गयी और ठहाका मारकर हँस पड़ा। लेकिन क्षण भर बाद उसे रामकी मनाहीका स्मरण हो आया, जिससे वेचारा शंकित हो उठा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ लकड़हारेको हँसते देखकर चौराहे-पर खड़ा सिपाही भी अपनी हँसी नहीं रोक सका ॥ ३२ ॥ सिपाही सभामें गया तो उसे वहाँ लकड़हारेको हँसी याद आ गयी, जिससे वह हँस पड़ा। सिपाहीको हँसते देखा तो सभामें बैठे हुए लोग भी अपनी हँसी नहीं रोक सके और वे भी हँसने लगे ॥ ३३ ॥ तमाम सभाके लोगोंको हँसते देखकर रामचन्द्रजी भी हँसने लगे ॥ ३४ ॥ तब रामचन्द्रजी तुरन्त हँसी रोककर सोचने लगे—और लोग हँसें तो हँसें, मैं क्यों हँसा? जब मैं सारे भूतलवासियोंको इस कामसे रोक रहा हूँ और दण्ड देता हूँ। तब मैं क्यों हँसा? मुझे कौन दण्ड देगा? और ये पुरवासी क्या कहेंगे? यही न कि राम दूसरोंको ही शिक्षा देते हैं, प्रजाके वास्ते ही दण्डविधान करते है और स्वयं जो मनमें आता है, सो कर डालते हैं। सब लोगोंके लिए तो हँसनेकी मनाही कर दी है, किन्तु स्वयं हजारों मनुष्योंके सामने ठठाकर हँसते हैं ॥ ३५–३७ ॥ इसका परिणाम यह होगा कि वे भविष्यमें मेरी बात नहीं मानेंगे। यह सब विचारकर रामने यह ठहराया कि मैंने बड़ी भारी भूल की है। लेकिन क्षणभर बाद ही रामको फिर हँसी आ गयी। पूरी चेष्टा करके भी वे हँसनेसे नहीं रुक सके ॥ ३८ ॥ तब रामचन्द्रजी सभाके लोगोंसे कहने लगे-आपलोग किस बातपर हँसे? आप लोगोंको हँसते देख-कर मैं भी हँस पड़ा। सभामें बैठे हुए पुरवासियोंने उत्तर दिया कि आपके सिपाहीको हँसते देखकर हमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भारवाहस्य हास्यं तत् स्मृत्वा प्रहसितं मया । तद्दूतवचनं श्रुत्वा भारवाहं तदा प्रभुः ॥४३॥
दूतैरानीय सदसि तमाह रघुनन्दनः । मा भीतिं भज मत्तस्त्वं सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥४४॥
हट्टे किमर्थं हसितं त्वयाऽद्य कथयस्व माम् । स भारवाहश्चकितः शुष्ककंठोष्ठतालुकः ॥४५॥
वेपमानः स्खलद्वाचा राघवं वाक्यमब्रवीत् । अयोध्यायाश्च सीमायामश्वत्थस्य मयाऽद्य हि ॥४६॥
दृष्ट्वा प्रहसितं राजन् हट्टे हास्यं तथा कृतम् । तदपूर्वां तद्गिरं स प्रभुः श्रुत्वा सुविस्मितः ॥४७॥
दूतानुवाच श्रीरामस्त्वनेन सह वेगतः । यूयं गत्वाऽद्य द्रष्टव्यं किं सत्यं कथ्यते न वा ॥४८॥
अनेन भारवाहेन ते तथेति त्वरान्विताः । गत्वाऽश्वत्थसमीपं हि ददृशुस्ते स्मितं मुहुः ॥४९॥
तदाश्चर्याच्च ते दूताः प्रहसंतोऽतिवेगतः । अश्वत्थसहितं रामं गत्वा सर्वे न्यवेदयन् ॥५०॥
तद्दूतवचनं श्रुत्वा राघवश्चातिविस्मितः । राज्ये ममैतद्दुश्चिह्नं मे शिक्षां लोप्तुमुद्यतम् ॥५१॥
इति निश्चित्य मनसि दूतांश्चाज्ञापयत्तदा । छिद्यतां चलपत्रः स ममाज्ञाभंगकारकः ॥५२॥
तद्रामवचनादेव शतशोऽथ सहस्रशः । कुठारपाणयः शीघ्रमश्वत्थं दुद्रुवुस्तदा ॥५३॥
हास्यमानं नगं दृष्ट्वा ते सर्वेऽतीव विस्मिताः । कुठारैस्तं तदा छेत्तुमुद्यता राघवाज्ञया ॥५४॥
तांश्छेत्तुकामान् सकलान् प्राप्तान् स्वनिकटं विधिः । दूतान्सन्ताडयामासोपलैरश्वत्थनिर्गतैः ॥५५॥
उपलैश्छिन्नभिन्नांगास्ते दूता लोहितांकिताः । कोलाहलं प्रकुर्वंतो रामं वृत्तं न्यवेदयन् ॥५६॥
ततोऽतिविस्मितो रामः पुनर्दूतान् सहस्रशः । प्रेषयामास तं छेत्तुं धनुर्बाणासिधारिणः ॥५७॥
तेऽपि गत्वा नगं तेन ताडिता उपलैर्दृढम् । छिन्नांगा राघवं वेगात्सर्वं वृत्त न्यवेदयन् ॥५८॥
ततो रामोऽतिसंक्रुद्धः सुमंत्रं सेनया युतम् । प्रेषयामास तं वृक्षं छेत्तुं बुद्धिपुरःसरम् ॥५९॥

हँसी आ गयी ॥ ३९-४१ ॥ पुरवासियोंकी बात सुनकर रामने सिपाहीसे पूछा कि तुम क्यों हँसे ? उसने कहा कि एक लकड़हारेको हँसते देखकर मुझे हँसी आ गयी। दूतकी बात सुनकर रामने दूतों द्वारा लकड़हारेको पकड़वा मँगाया और उससे कहा कि किसी प्रकारका भय न करके मुझे यह बतलाओ कि तुम बाजारमें क्यों हँसे थे ? ॥ ४२-४४ ॥ लकड़हारा रामकी बात सुनकर चौकन्ना हो गया। उसके कंठ, ओष्ठ और तालु सूख गये, शरीर काँपने लगा और भर्राये हुए स्वरसे उसने उत्तर दिया कि अयोध्याके समीप ही एक पीपलका वृक्ष है। मैंने बाजार आते समय उस वृक्षकी हँसी सुनी और हँस पड़ा। नगरमें आया तो यहाँ भी एकाएक वह बात याद आ गयी और चेष्टा करके भी मैं हँसीको नहीं रोक सका। उसकी यह बात सुनकर मुस्कराते हुए रामचन्द्रजीने दूतोंको आज्ञा दी कि तुम लोग इसके साथ जाकर देखो कि यह जो कह रहा है, वह ठीक है या नहीं ॥ ४५-४८ ॥ उस भारवाहीके साथ-साथ दूत चले, पीपलके समीप गये और उसकी हँसी सुनी तो स्वयं खूब हँसे और लौटकर रामको वहाँका सच्चा वृत्तांत सुना दिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ दूतों-की बात सुनकर राम बहुत विस्मित हुए और सोचने लगे कि हमारे राज्यमें यह एक बड़ा दुश्चिह्न उत्पन्न होकर मेरे शासनको ही लुप्त कर देना चाहता है। इस प्रकार विचार करके रामने दूतोंको आज्ञा दी कि उस पीपलके वृक्षको काट डालो। क्योंकि वह मेरी आज्ञा भङ्ग कर रहा है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ रामके आज्ञानुसार सैकड़ों हजारों व्यक्ति कुठार ले-लेकर उस वृक्षकी ओर चल पड़े। उस समय भी उस वृक्षको हँसते देखकर वे सब उसे काटनेको उद्यत हो गये। उनको देखकर ब्रह्मा उस वृक्षपरसे ही पत्थरके टुकड़े फेंक-फेंककर मारने लगे। इस उत्पातसे कितने ही लोगोंको गहरी चोट आयी। रुधिरसे उनका शरीर भींग गया और चिल्लाते हुए उन्होंने रामके पास पहुँचकर वहाँका हाल बतलाया ॥ ५३-५६ ॥ सो सुनकर रामको और भी आश्चर्य हुआ और फिर हजारों दूतोंको वह वृक्ष काटनेके लिए भेजा। धनुष बाण एवं तलवार धारण किये हुए वे दूत जब वृक्षके पास पहुँचे तो फिर ब्रह्माने पत्थर फेंक-फेंककर मारा, जिससे भिन्नमस्तक हो उब सबने लौटकर रामको यह समाचार सुनाया ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तब रामने कुपित होकर बहुत सी सेनाके साथ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुमंत्रो राघवं नत्वा सेनया तं नगं ययौ । तावदश्वत्थपाषाणैरग्रे गन्तुं न स क्षमः ॥६०॥
ततो राघवभीत्या स शनैः सैन्येन तत्पुरः । ययौ तावन्नगोद्भूतैः पाषाणैस्ताडितोऽपतत् ॥६१॥
सुमंत्रं पतितं दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् । अयोध्यायां च सर्वत्र तदद्भुतमिवाभवत् ॥६२॥
सुमंत्रं पतितं श्रुत्वा पुत्राभ्यां रघुनन्दनः । सैन्येन प्रेषयामास शत्रुघ्नं तं नगं पुनः ॥६३॥
ततस्तत्कौतुकं श्रुत्वा पौरनार्यः सहस्रशः । प्रासादशिखरारूढा ऊर्ध्वास्यास्तं व्यलोकयन् ॥६४॥
तर्जन्या दर्शयामासुः सोऽश्वत्थश्चेति ता मिथः । वामहस्तं भ्रुवोः स्थाप्य रविदीप्तीर्न्यवारयन् ॥६५॥
कुञ्चितानलकान्नेत्रपतितान् करपल्लवैः । स्त्रियो निवार्य प्रासादगोपुराट्टालसंस्थिताः ॥६६॥
निद्रासंभ्रान्तनयनाश्चान्योन्यं दर्शयन्नगम् । एवं तन्नगरं सर्वं चकितं चाभवत्तदा ॥६७॥
शत्रुघ्नोऽथ पुराद्यावत्सैन्येन निर्गतो बहिः । तावत्तद्रथवाहाश्च संस्थिता एव ते पथि ॥६८॥
ताडिता अपि सूतेन नोत्तस्थुस्तुरगोत्तमाः । कुशस्याथ लवस्यापि रथवाहास्तथैव च ॥६९॥
ताडिता रुक्मदंडैश्च नोत्तस्थुः पथि संस्थिताः । आश्चर्येणाथ तद्वृत्तं राघवाय न्यवेदयन् ॥७०॥
रामोऽपि श्रुत्वा चकितस्तदा चित्तेऽविचारयत् । विचारः करणीयोऽत्र ह्यविचारोऽद्य नोचितः॥७१॥
अस्त्यत्र कारणं किञ्चित्प्रष्टव्योऽद्य पुरोहितः । जानन्नपि रमानाथः स्वयं सर्वं तथापि सः ॥७२॥
मानुषं भावमाश्रित्य पुरोहितमथाह्वयत् । सोपि रामाज्ञया शीघ्रं तां सभां प्रययौ गुरुः ॥७३॥
प्रत्युद्गम्य गुरुं रामो ददावासनमुत्तमम् । ततः सम्पूज्य विधिवत् सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥७४॥
तच्छ्रुत्वा राघवं प्राह वसिष्ठो मुनिसत्तमः । वाल्मीकिस्त्वद्य प्रष्टव्यो येन ते चरितं कृतम् ॥७५॥
तद्गुरोर्वचनं श्रुत्वा वाल्मीकिं स समाह्वयत् । सोऽपि रामाज्ञया शीघ्रं ययौ श्रीराघवं प्रति ॥७६॥

सुमन्तको वृक्ष काटनेके लिए भेजा। सुमन्त रामको प्रणाम करके अश्वत्थकी ओर बढ़े। किन्तु वृक्षसे थोड़ी दूरपर ही थे। इतनेमें पत्थरोंकी वर्षा होने लगी। जिससे उस वृक्षके पासतक नहीं पहुँच सके॥ ५९ ॥ ६० ॥ लेकिन रामके भयसे सुमन्त पीछे न लौटकर आगे ही बढ़ते गये और उधरसे बराबर पत्थरोंकी वृष्टि होती रही। जिससे वे घायल होकर गिर पड़े॥ ६१ ॥ सुमन्तको गिरा देखा तो सेनामें घोर कोलाहल होने लगा। सारे अयोध्यावासियोंको वह एक अनहोनी-सी बात मालूम पड़ी ॥ ६२ ॥ सुमन्तको घायल सुना तो रामने अपने दोनों पुत्रोंके साथ एक बड़ी सेना भेजी ॥ ६३ ॥ इस कौतुकको सुना तो नगरकी बहुत-सी स्त्रियाँ अपनी-अपनी अटारियोंपर चढ़कर मस्तक उठाये हुए उस वृक्षको देखने लगीं और सूर्यके प्रकाशका निवारण करनेके लिए अपना बायाँ हाथ भौहोंपर रख-रखकर एक दूसरीको परस्पर उँगलियोंसे वह वृक्ष दिखाने लगीं॥ ६४ ॥ ६५ ॥ नेत्रके सामने आये हुए केशोंको हटाती हुई वे स्त्रियाँ मकानकी छतों, कंगूरों और अटारियोंपर अधिक-से-अधिक संख्यामें एकत्र हो गयीं॥ ६६ ॥ कितनोंकी आखें उस वृक्षको निहारते-निहारते नींदकी बोझसे बोझिल हो गयीं। इस तरह उस समय सारा नगर विस्मित हो रहा था॥ ६७ ॥ उधर शत्रुघ्न अपनी सेना लेकर चले। नगरसे बाहर निकले ही थे कि उनके रथवाले घोड़े रास्तेमें बैठ गये और कोचवानके बार-बार मारनेपर भी नहीं उठे। यही दशा कुश और लवके भी रथकी हुई। उनके घोड़े भी रास्तेमें बैठ गये और कितने ही डंडे खानेपर भी नहीं उठे तो वे सब लौटकर आश्चर्यके साथ रामके पास पहुँचे और यह हाल बताया॥ ६८-७० ॥ यह सुना तो वे मनमें विचारने लगे कि इस विषयमें पूर्णतया विचार करके काम करनेकी आयश्यकता है। आज अविचारितासे काम नहीं चलनेका है॥ ७१ ॥ इसमें अवश्य कोई कारण है। अतः पहले पुरोहितको बुलाकर पूछ लेना जरूरी है। यद्यपि रामचन्द्रजी सब कुछ जानते थे, फिर भी मनुष्यभावसे उन्होंने पुरोहितको बुलवाया। रामके आज्ञानुसार तुरन्त गुरुजी राजसभामें जा पहुँचे। तब राम गुरुके आगे गये और एक उत्तम आसनपर बिठाकर पूजन करनेके अनन्तर सारा वृत्तान्त कह सुनाया॥ ७२-७४ ॥ यह सब सुनकर गुरु वसिष्ठने कहा कि इस विषयमें आप वाल्मीकिजीसे पूछ-ताछ करें तो अच्छा होगा। क्योंकि उन्होंने आपके चरित्रको बनाया है। ॥ ७५ ॥ गुरुके आज्ञानुसार रामने वाल्मीकि

CC0. In Public Domain Kirikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रत्युद्गम्य मुनिं रामो ददावासनमुत्तमम् । नत्वा सम्पूज्य विधिवत् सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥७७॥
ततो विहस्य वाल्मीकिः प्रोवाच रघुनन्दनम् । सर्वं वेत्सि भवान् राम किमर्थं मां तु पृच्छसि ॥७८॥
त्वं चेत्पृच्छसि रामात्र मानुषं भावमाश्रितः । तर्हि ते कथयाम्यद्य शृणुष्व रघुनन्दन ॥७९॥
त्वयाऽत्र वर्जितं हास्यं त्वद्भिया सकलैर्जनैः । हास्यकारीणि कर्माणि संत्यक्तान्यवनीतले ॥८०॥
विवाहादिसमुत्साहाः कथावार्तादिकौतुकम् । मङ्गलोत्साहगीतानि नृत्यं यज्ञादिसत्क्रियाः ॥८१॥
यात्राः संवत्सरोत्साहास्त्यक्ता एवावनीतले । यद्यद् कर्म तोषकारि हास्यकारि च तन्नरैः ॥८२॥
एकसम्वत्सरं नात्र क्रियते रघुनन्दन । उत्साहदेवताः सर्वास्तथा कर्माङ्गदेवताः ॥८३॥
इन्द्रादिलोकपालाश्च दृष्ट्वा स्वीयं प्रपूजनम् । लुप्तं भूम्यां ततो राम तद्वृत्तं कथयन्विधिम् ॥८४॥
ततो विधिश्च तच्छ्रुत्वाऽसमर्थस्त्वां निवेदितुम् । त्वयि कुंठितसामर्थ्यः सोऽश्वत्थे संप्रवेशितः ॥८५॥
हितार्थं निर्जराणां च सोऽद्य तिष्ठति पिप्पले । प्रक्षिपत्युपलान् राम छेत्तुकामान् समागतान् ॥८६॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवः क्रोधमाययौ । अहमेवाद्य गच्छामि सारं पश्यामि ब्रह्मणः ॥८७॥
कथं नाम रघुश्रेष्ठः स्वशिक्षां परिवर्तयेत् । इत्युक्त्वाज्ञापयामास स्वीयां सेनां तदा प्रभुः ॥८८॥
ततस्तं बोधयामास वाल्मीकिर्मुनिसत्तमः ।
क्रोधं त्यज रघुश्रेष्ठ शृणुध्वं वचनं मम । सच्चिदानन्दरामस्त्वमानन्दचरितं तव ॥८९॥
मयाऽस्ति वर्णितं राम तत् किंचित्पुत्रयोर्मुखात् । त्वयाऽपि यज्ञसमये श्रुतं गङ्गातटे पुरा ॥९०॥
यस्य संश्रवणादेवानन्दरूपो भवेन्नरः । हास्यं वर्जयसि त्व चेत्तर्हि ते चरितं त्विदम् ॥९१॥
न जनाः कीर्तयिष्यंति सुखरूपं स्मितं विना । अन्यत् किंचित् प्रवक्ष्यामि प्रभो वृत्तं तवाग्रतः ॥९२॥
शतकोटिमितं तेऽत्र चरितं यन्मया कृतम् । पुरा त्वया विविक्तं यत् सर्वत्र रघुनन्दन ॥९३॥

को बुलवाया। यह सन्देश पाते ही वाल्मीकि रामसे मिलनेका चल पड़े ॥ ७६ ॥ वहाँ पहुँचनेपर रामने उठकर उनकी अगवानी की और एक सुन्दर आसनपर बिठाकर पूजन किया। फिर जो कुछ वृत्तान्त बताना था, सो बताया ॥ ७७ ॥ यह सब सुना तो हँसकर वाल्मीकिने कहा—हे राम! आपसे कुछ छिपा नहीं है, आप सब जानते हैं। फिर हमसे क्यों पूछते हैं? ॥ ७८ ॥ हाँ, यदि मानवभावका आश्रय लेकर आप हमसे पूछते हैं तो बताता हूँ, सुनिए ॥ ७९ ॥ आपने अपने राज्यमें हँसनेकी मनाही कर दी है। इससे सब लोगोंने ऐसे शुभ कार्योंका करना बन्द कर दिया है, जो हँसी-खुशीसे ही सम्पन्न हो सकते हैं ॥ ८० ॥ विवाह, कथावार्ता, खेल-तमाशे, नाच-गान, यज्ञादि सत्क्रियाएँ, यात्रा और सांवत्सरिक उत्सव आदि कर्म लोग नहीं कर रहे हैं। कहनेका मतलब यह कि जितने कार्य हृदयको आनन्दित करनेवाले हैं, वे सब आज एक वर्षसे बन्द हैं। इससे व्याकुल होकर समस्त उत्साहदेवता, कर्माङ्गदेवता तथा इन्द्रादि लोकपाल भूमण्डलपर अपनी पूजाको लुप्त होते देख ब्रह्माके पास गये और उन्हें अपना दुःख सुनाया ॥ ८१-८४ ॥ इसके बाद ब्रह्माजी आपसे कुछ कहने-सुननेमें असमर्थ होकर उस पीपल वृक्षमें गुप्तरूपसे प्रविष्ट हो गये हैं। देवताओंकी कल्याणकामनासे वे आज भी उसमें बैठे हुए हैं। जो कोई उस वृक्षको काटनेके लिये जाता है, वे उसपर पत्थर बरसाते हैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ मुनिराज वाल्मीकिके मुखसे यह हाल सुनकर रामको क्रोध आ गया और उन्होंने कहा कि आज मैं स्वयं जाकर ब्रह्माका पराक्रम देखता हूँ। रघुवंशका एक श्रेष्ठ क्षत्रिय अपने आदेशमें किसी प्रकारका उलट-फेर नहीं कर सकता। इतना कहकर रामने अपनी सेना तैयार करनेकी आज्ञा दी ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ तब वाल्मीकि समझाने लगे—हे रघुश्रेष्ठ! इस प्रकार क्रोध न करके मेरी बात सुनिये। आप साक्षात् सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म हैं और आपका चरित्र लोगोंको आनन्दित करनेवाला है। उसे मैंने ही बनाकर आपके पुत्रोंके मुखसे यज्ञशालामें सुनवाया था, उसे आपने भी सुना है। फिर जिसके सुनने मात्रसे मनुष्य आनन्दमग्न हो जाता है, ऐसे पुनीत चरित्रको लोग—यदि आप न हँसनेका नियम रखखेंगे—तो नहीं सुन सकेंगे। क्योंकि कथा सुनकर आनन्दको प्राप्त लोग हँसे बिना नहीं रह सकेंगे। इसके सिवाय हे प्रभो! मुझे आपसे कुछ और भी कहना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भागाद्भारतवर्षांतर्गताद्रामायणात् प्रभो । सारं सारं प्रगृह्याथ यद्यद्रम्यं मनोरमम् ॥ ९४ ॥
कथानकं तेन तेन व्यासेन मुनिनाऽत्र हि । अष्टादश पुराणानि तथोपपुराणानि च ॥ ९५ ॥
कृतान्यन्येऽपि मुनयः षट्शास्त्रादीन्यनेकशः । अग्रे सर्वे करिष्यंति सारं रम्यं प्रगृह्य च ॥ ९६ ॥
ततोऽग्रे शोकरूपं च यत्त्वया दंडके वने । चतुर्दशवत्सरैश्च कैकेयीदुष्टभावतः ॥ ९७ ॥
कृतं चरित्रं सीताया विरहादि च राघव । तत् किंचिच्छेषभूतं हि चतुर्विंशत्सहस्रकम् ॥ ९८ ॥
तावन्मात्रं वदिष्यन्ति यद्वाल्मीकेः कृतं त्विति । तत्सर्वं सकलं ज्ञात्वा भावि वृत्तं रघूत्तम ॥ ९९ ॥
शोकस्तदुपयोगश्च पूर्वमेव मयेरितः । युद्धं प्रभाते श्रोतव्यं शोकश्चैवापराह्णके ॥१००॥
रतिर्निशायां श्रोतव्याऽऽनन्दरामायणं सदा । युद्धं ज्ञेयं भारतं हि रतिर्भागवतं स्मृतम् ॥१०१॥
शेषभूतं चतुर्विंशसहस्रं शोक उच्यते । तव भाविवरेणैतदानन्दचरितं तव ॥१०२॥
शतकोटिमितं पूर्वं यन्मयैव विनिर्मितम् । नवकांडमितं रम्यं यद्द्वादशसहस्रकम् ॥१०३॥
नवोत्तरशतं सर्वं क्वचित् स्थास्यति भूतले । तव भाविवराद्राम न कोऽप्येतां मनोरमाम् ॥१०४॥
अष्टोत्तरशतैः सर्गैर्निर्मितां मेरुणान्विताम् । तव कीर्तनमालां नो खंडयिष्यति भूतले ॥१०५॥
नवकाण्डयुतं रम्यं दृष्ट्वा त्वत्तुष्टिहेतवे । एतद्धि रक्षयिष्यंति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥१०६॥
यदा तत् खंडितं पूर्वं व्यासेन मुनिना तव । शतकोटिमितं रामचरितं यन्मया कृतम् ॥१०७॥
तदा किंचिद्धितं दृष्ट्वाऽहं तूष्णीमेव संस्थितः । भविष्यंति कलौ मन्दमतयोऽल्पायुषो नराः ॥१०८॥
न समर्था मम ग्रन्थं त्विमं श्रोतुं कदापि हि । अतो व्यासेन मुनिना मत्काव्यं यत्पृथक् कृतम् १०९
तत्सम्यगित्यहं मत्वा परां तुष्टिं गतः प्रभो । अतस्त्वां प्रार्थयाम्यद्य नवकांडमितं त्विदम् ॥११०॥
आनन्दरामचरितं न विरूपय राघव । वर्जयिष्यसि चेद्धास्यं तदा दुःखमयं प्रभो ॥१११॥

है। मैंने जो सौ करोड़ श्लोकोंमें आपके चरित्रका वर्णन किया है, उसे हे रघुनन्दन ! आप कुछ समय पहले कई भागोंमें बाँट चुके हैं ॥ ८९-९३ ॥ उनमेंसे जो भाग भारतवर्षके लिये चुना था, उसके सार अंशको लेकर जो कथानक अच्छे थे, सुननेमात्रसे समझमें आ जाते या कानोंको प्रिय लगते थे, उन्हींके आधारपर व्यासदेवने अष्टादश पुराणों तथा उपपुराणोंको बना दिया है। इनके अतिरिक्त भी बहुतसे ऋषि उन्हींकी सहायतासे षट्शास्त्र आदि कितने ही शास्त्र बनायेंगे ॥ ९४-९६ ॥ कुछ ही समय बीतनेके बाद कैकेयीकी दुष्टतासे आपको चौदह वर्ष पर्यन्त जो दुःख झेलने पड़े थे, सीताके विरह आदिका दुःख जो चौबीस हजार श्लोकोंसे कुछ कम है, उतने ही चरित्रको लोग मुझ वाल्मीकिका बनाया हुआ मानेंगे। इस भावी स्थितिको समझकर ही मैंने आपके उतने शोकमय चरित्रको विशेष उत्साहके साथ लिखा है। सब लोगोंको चाहिये कि सबेरे युद्ध-चरित्र तथा दोपहरके बाद शोक-चरित्रका श्रवण करें। युद्धचरित्रका मतलब महाभारत, रति-चरित्रका श्रीमद्भागवत तथा बाकी चौबीस हजार श्लोकोंका मतलब शोकचरित्र माना गया है। आपके भावी वरदानके प्रभावसे आपका यह आनन्दरामायण, सौ करोड़ श्लोकोंवाला मेरा बनाया रामचरित्र, नौ काण्डोंवाला द्वादश सहस्रात्मक रामचरित्र एवं एक सौ नौ श्लोकोंवाली रामायण ये सब पृथ्वीतलमें कहीं न कहीं रहेंगे ही। आपके भावी वरदानसे एक सुन्दर कीर्तनमाला, जिसमें १०८ सर्ग हैं, सुमेरुकी मनकासदृश अलगसे लगी है, इसका कोई भी खण्डन नहीं कर सकेगा। इस नौ काण्डोंवाले चरित्रको लोग आपकी प्रसन्नताके लिए तबतक सम्हालेंगे, जब तक कि संसारमें सूर्य-चन्द्र विद्यमान रहेंगे ॥ ९७-१०६ ॥ मेरे बनाये सौ करोड़ श्लोकोंवाले रामचरित्रका खण्डन करके जब व्यासजीने १८ पुराण बनाये थे, तब उससे किसी प्रकारका कल्याण देखकर ही मैं चुप रह गया था। उस समय मेरे विचारमें आया कि आगे चलकर कलियुगमें लोग मन्दबुद्धि तथा अल्पायु होंगे। इस कारण वे मेरे इतने बड़े ग्रन्थको कभी नहीं सुन सकेंगे। व्यासजीने मेरे काव्यके कथायें अलग करके जो पुराणोंको बनाया, सो बहुत अच्छा किया। उससे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भविष्यति शेषवद्धि चैतच्चापि मनोहरम् । अतस्ते कथयाम्यद्य येन ते शिक्षितं भुवि ॥११२॥
भविष्यति मृषा नैव येन तुष्टास्तु देवताः । भविष्यंति जनाश्चापि सत्या मत्कविता भवेत् ॥११३॥
जना हसंतु सर्वत्र दंतानां दर्शनं विना । आस्यमाच्छाद्य वस्त्रेण कदा कौतुकदर्शनात् ॥११४॥
हास्यं लक्ष्मीसूचकं हि हसितं सौख्यदायकम् । मांगल्यं हसितं चैतद्धास्याच्छ्रेष्ठं न किंचन ॥११५॥
नारी स्मितानना यस्मिन् गेहे तन्मन्दिरं स्मृतम् । लक्ष्म्याऽपि स्थीयते तत्र निश्चलं रघुनन्दन ॥११६॥
स एव पुरुषो धन्यो यस्य स्याच्च स्मिताननम् । स एव पुरुषो निंद्यो यस्यास्यं क्रोधसंयुतम् ॥११७॥
प्रमदा निंदिता सापि यस्याः क्रोधयुतं मुखम् । गर्हयंत्यतिहास्यं हि सर्वदा ते मुनीश्वराः ॥११८॥
अतस्त्वां प्रार्थयाम्येतन्मानय त्वं वचो मम । न करोति विधिर्गर्वं त्वां तातं वेत्ति राघव ॥११९॥
आनयिष्यामि शरणं तवाहं चतुराननम् । एवं वाल्मीकिवचनमंगीकृत्य रघूत्तमः ॥१२०॥
एवमस्त्विति तं प्राह मुनिं तद्वाक्यगौरवात् । तद्रामवचनं श्रुत्वा वाल्मीकिस्तुष्टमानसः ॥१२१॥
शिष्यं संप्रेष्य ब्रह्माणमानयामास पिप्पलात् । अश्वाः सर्वे समुत्तस्थुर्ययुस्ते नगरीं प्रति ॥१२२॥
ययौ सैन्येन शत्रुघ्नो रामपार्श्वे स्थितोऽभवत् । रामपुत्रौ समायातौ पितुरग्रे निषेदतुः ॥१२३॥
रामाज्ञया भारवाहस्ततो दूतैर्विसर्जितः । कृतेंद्रेण सुधावृष्टिः सुमन्त्राद्याः सुजीविताः ॥१२४॥
सुमंत्राद्या रामदूतास्तत्क्षणं राघवं ययुः । नत्वा रामं सुमंत्रः स रामपार्श्वे स्थितोऽभवत् ॥१२५॥
ततः सुरैर्ययाविंद्रः श्रीरामं प्रणनाम सः । रामं नत्वाऽब्रवीद्ब्रह्मा मया यदपराधितम् ॥१२६॥
तत्क्षमस्व रघुश्रेष्ठ त्वत्पाल्याः सर्वदा वयम् । पुराऽस्माकं हितार्थं हि त्वया रामावनीतले ॥१२७॥

मुझे बड़ी प्रसन्नता है। अतएव आज आपसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि इस नौ काण्डवाले आनन्दरामायणकी शोभा न बिगाड़िए। यदि आप सदाके लिए लोगोंका हँसना रोक देंगे तो बड़ा अनर्थ होगा। मेरी रामायण किसी कामकी नहीं रह जायगी। इसीलिये मैं आपसे कहता हूँ कि कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे आपके आदेशमें भी किसी प्रकारका अन्तर न पड़े और देवता तथा मनुष्य भी प्रसन्न रहें और मेरी कविता भी सत्य हो जाय ॥ १०७–११३ ॥ लोग हँसें सही, किन्तु उनके दाँत न दिखायी दें। किसी कौतुकको देखकर यदि लोगोंको हँसी आ जाय तो कपड़ेसे मुँह ढाँककर हँसें ॥ ११४ ॥ क्योंकि हँसी लक्ष्मीसूचक है, हँसी सबको सुख देनेवाली वस्तु है और हँसी मंगलमयी मानी गयी है। कहनेका भाव यह कि हँसीसे बढ़कर कोई चीज है ही नहीं ॥ ११५ ॥ जिस घरमें मुस्काती हुई नारी रहती है, वह घर देवमंदिरके समान पवित्र होता है और लक्ष्मी वहाँपर ही निवास करती है। हे रघुनन्दन! इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है ॥ ११६ ॥ वही पुरुष धन्य है, जिसका मुखमण्डल सदा हँसता हुआ दीखे और वही पुरुष अधम है, जिसका मुख सदा क्रोधसे युक्त रहे ॥ ११७ ॥ वह स्त्री भी निन्द्य है, जो सदा क्रोधयुक्त मुँह बनाये रहती है। बड़े-बड़े मुनिगण आदि हास्यकी सदासे निन्दा करते आये हैं ॥ ११८ ॥ अतएव मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी यह बात मान लीजिए। ब्रह्मा किसी तरह अभिमान न करके आपको अपने पिताके समान मानते हैं ॥ ११९ ॥ मैं स्वयं जाकर ब्रह्माको आपकी शरणमें लाऊँगा—वे आपसे क्षमा माँगेंगे। रामने वाल्मीकिके वाक्यगौरवको समझकर उनकी बात मान ली और कहा कि जैसा आप कहते हैं, वैसा ही होगा। रामकी स्वीकृति सुनकर वाल्मीकि परम प्रसन्न हुए और अपना एक शिष्य भेजकर उस पीपलपरसे ब्रह्माजीको बुलवाया। यह हो जानेपर शत्रुघ्न तथा लव-कुशके जो घोड़े अबतक रास्तेमें बैठे थे, वे उठ खड़े हुए और अयोध्याको वापस चल दिये। शत्रुघ्न और लव-कुश भी अपनी सेना लिये हुए आये और रामके पास जाकर बैठ गये ॥ १२०—१२३ ॥ रामकी आज्ञासे दूतोंने लकड़हारेको छोड़ दिया। इन्द्रने आकर अमृतकी वर्षा की। जिससे सुमंत्रादि जो योद्धा मूर्छित पड़े थे, वे सचेत हो गये ॥ १२४ ॥ इसके अनन्तर वृक्षको काटनेके लिए गये हुए लोग रामके पास आये। सुमन्त्र रामके पास जाकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद देवताओंके साथ-साथ इन्द्र और ब्रह्मा भी रामकी सभामें आये और बैठ गये। रामको प्रणाम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अवताराश्च बहवो धृता नो रिपवो हताः । शंखासुरो वेदहर्ता मत्स्यरूपेण दारितः ॥१२८॥
तथाऽस्माकं सुधां दातुं मज्जंतं मंदराचलम् । दृष्ट्वा स कूर्मरूपेण त्वया पृष्ठे धृतो गिरिः ॥१२९॥
मत्पृथ्वीति स्पर्द्धमानं हिरण्याक्षं निहत्य च । त्वया वाराहरूपेण जलात्पृथ्वी समुद्धृता ॥१३०॥
प्रह्लादवचनात्स्तम्भादाविर्भूय त्वया पुरा । नरसिंहस्वरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥१३१॥
तथा राज्यं हृतं दृष्ट्वा पुरा तु मघवंस्त्वया । बलिर्वामनरूपेण पाताले विनिवेशितः ॥१३२॥
नृपैरधर्मनिरतैर्दृष्ट्वा व्याप्तां भुवं पुरा । त्वयैकविंशद्वारं हि जामदग्न्यस्वरूपिणा ॥१३३॥
पितुर्वैरं पुरस्कृत्य निःक्षत्री पृथिवी कृता । दशास्यकुम्भकर्णौ तौ रामरूपेण राक्षसौ ॥१३४॥
पत्नीवैरं पुरस्कृत्य त्वया दुष्टौ हताविह । उद्धारितौ तौ स्वगणौ द्विवारं देवशापतः ॥१३५॥
एकवारं पुनस्त्वग्रे त्वं तावेवोद्धरिष्यसि । तद्ब्रह्मवचनं श्रुत्वा वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥१३६॥
सर्वं जानन्नपि जनाञ्ज्ञातुं पप्रच्छ तं विधिम् ॥१३७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे रामहास्यप्रतिरोधो नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

(वाल्मीकिकी जन्मगाथा तथा बहुतेरे मंत्रोंका निरूपण)

श्रीरामदास उवाच

कौ गणौ देवशप्तौ तौ कथमुद्धारितौ वद । पुरा द्विवारं रामेणाग्रे कथं चोद्धरिष्यति ॥१॥
तद्वसिष्ठवचः श्रुत्वा विधिः प्राह विहस्य तम् । सर्वं वेत्सि भवान् लोकान् ज्ञापितुं मां हि पृच्छसि ॥२॥
तदा वदाम्यहं सर्वं गणयोः शापकारणम् । एकदाऽयं महाविष्णुर्वैकुण्ठे रमया रहः ॥३॥
संस्थितश्च तदा द्वारि विष्णुं द्रष्टुं सुरोत्तमौ । तावश्विनीकुमारौ हि समाजग्मतुरादरात् ॥४॥

करनेके पश्चात् ब्रह्माने कहा—मैंने जो कुछ अपराध किया है, सो क्षमा करें । हे रघुश्रेष्ठ ! आपका कर्तव्य है कि आप हमारी रक्षा करें । पहले भी आपने हमारी रक्षा करनेके लिए पृथ्वीतलपर कितने ही अवतार लेकर हमारे शत्रुओंको मारा है । वेदको चुरानेवाले शंखासुरको आपने मत्स्यका रूप धारण करके मारा था ॥१२५-१२८॥ हम सबोंको अमृत पिलानेकी इच्छासे, समुद्रमन्थनके समय जब मन्दराचल डूबा जा रहा था, तब कूर्मरूप धारण करके उसे अपनी पीठपर रक्खा था । "यह पृथ्वी मेरी है"इस प्रकार कहकर डींग मारनेवाले हिरण्याक्षको मारकर आपने वाराहरूप धारण करके जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया ॥ १२९ ॥ १३० ॥ प्रह्लादके वचनसे आप खम्भेसे प्रकट हुए और हिरण्यकशिपुका संहार किया । जब दैत्योंने इन्द्रसे राज्य छीन लिया था, तब आपने वामनरूप धारण करके भीख माँगी और बलिको पाताल लोक भेज दिया ॥१३१॥१३२॥ जब इस पृथ्वीमण्डलमें पापी राजाओंका अत्याचार देखा तो परशुरामका रूप धारण करके पितृवैरके ब्याजसे पृथ्वीको क्षत्रियविहीन कर दिया । रावण और कुम्भकर्णको आपने पत्नीवैरके बहाने यमपुर पहुँचाया । दो बार आपने देवताओंके शापसे अपने गणोंकी रक्षा की है और भविष्यमें फिर एक बार उनका उद्धार करेंगे । ब्रह्माकी बातको सुनकर सब कुछ जानते हुए भी वसिष्ठने ब्रह्माजीसे पूछा—॥ १३३-१३७ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते राज्यकांडे उत्तरार्द्धे त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

वसिष्ठजी कहने लगे--वे दोनों कौनसे गण थे, जिनको देवताओंका शाप प्राप्त हुआ था और रामने उनका उद्धार किया था और फिर भी उद्धार करेंगे, सो कहिए ॥ १ ॥ इस प्रकार वसिष्ठकी बातसुनकर ब्रह्माने हँसकर कहा—आप सब कुछ जानते हैं, किन्तु मुझे ज्ञान प्राप्त करानेके लिए मुझसे पूछ रहे हैं तो मैं भी उन गणोंके शापका कारण बतलाता हूँ । एक समय महाविष्णु एकान्तमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समागतौ देववैद्यौ तौ दृष्ट्वा द्वाररक्षकौ । जयविजयनामानौ तयोरग्रे प्रजग्मतुः ॥ ५ ॥
ताभ्यां वैद्यौ तदा प्रोक्तौ विष्णुस्तिष्ठति वै रहः । नायं कालो दर्शनस्य तच्छ्रुत्वा प्रोचतुः सुरौ ॥ ६ ॥
अधुना द्रष्टुमिच्छावो विष्णुं कथयतां गणौ । द्वार्यावयोरागमनं युवां शृणुत चेरितम् ॥ ७ ॥
तत्तयोर्वचनं श्रुत्वा तौ पुनः प्रोचतुर्गणौ । न गच्छावो महाविष्णुमावां लक्ष्म्या रहः स्थितम् ॥८॥
एवं त्रिवारं ताभ्यां तौ प्रोक्तौ नेत्यूचतुर्गणौ । तदाऽश्विनीकुमारौ तौ प्रोचतुः क्रोधमूर्च्छितौ ॥ ९ ॥
आवयोर्वचनं नैव युवाभ्यां हि श्रुतं गणौ । यतस्त्रिवारं तस्माद्धि युवां जन्मत्रयं भुवि ॥१०॥
लभथश्च न संदेहस्तच्छ्रुत्वा वचनं तयोः । गणावपि तयोः शापं ददतुर्देववैद्ययोः ॥११॥
विनापराधतः शापो यस्माद्दत्तस्तु चावयोः । एकवारं युवां चापि जन्मातश्चस्तु वै भुवि ॥१२॥
एवं परस्परं शापं लब्ध्वा हाहेति चुक्रुशुः । तदा कोलाहलश्चासीदाह्वयामास तान् हरिः ॥१३॥
ततस्तत्सकलं वृत्तं प्रोचुस्ते जगदीश्वरम् । चत्वारस्ते महाविष्णुं प्रार्थयामासुरादरात् ॥१४॥
येन शीघ्रं विमुक्तिः स्यात्तन्नो वद महेश्वर । ततः प्रोवाच तान् विष्णुर्मुक्तिः शीघ्रं शुभाऽत्र हि ॥१५॥
मयि भक्त्या विरोधिन्या जायते नात्र संशयः । सप्तजन्मांतरेणैव मद्भक्त्या जायते गतिः ॥१६॥
युष्माकं रोचते या सा भक्तिः कार्याऽवनीतले । तद्विष्णोर्वचनं श्रुत्वा ते प्रोचुर्जगदीश्वरम् ॥१७॥
नोऽस्तु भक्त्या विरोधिन्या शीघ्रं ते दर्शनं पुनः । तथेत्युक्त्वा रमानाथस्तान् सर्वान् स व्यसर्जयत् १८॥
ते जन्मानि ततः प्रापुर्जगत्यां मुनिसत्तम । जयो जातो हिरण्याक्षो हिरण्यकशिपुस्तथा ॥१९॥
जातोऽत्र विजयः पूर्वं तौ हतौ विष्णुना पुरा । वाराहरूपिणाऽनेन हिरण्याक्षो विदारितः ॥२०॥
नरसिंहस्वरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः । ततः पुनर्जन्म तौ हि द्वितीयं प्रापतुर्भुवि ॥२१॥

लक्ष्मीके साथ बैठे थे। उसी समय उनके दर्शनार्थ अश्विनीकुमार वहाँ जा पहुँचे ॥ २-४ ॥ उन देववैद्योंको देखकर जय-विजय नामक दोनों द्वारपाल उनके सामने पहुँचे और कहने लगे—इस समय भगवान् एकान्तमें हैं। अतएव आप लोग दर्शन नहीं कर सकेंगे। यह सुनकर वे दोनों देवता बोले—विष्णुभगवान्से जाकर कह दो कि हम अभी इसी समय आपका दर्शन करना चाहते हैं। देवताओंकी बात सुनकर जय-विजयने कहा कि हम अभी उनके पास नहीं जायँगे। वे लक्ष्मीके साथ एकान्तमें बैठे हैं ॥ ५-८ ॥ इस तरह तीन बार अश्विनीकुमारोंके कहनेपर भी जब जय-विजयने उनकी बात नहीं मानी तो क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप देते हुए कहा कि तीन बार तुम लोगोंने मेरी बातका उल्लंघन किया है, इसलिए तुम्हें तीन बार पृथ्वीलोकमें जन्म लेना पड़ेगा। उनके इस शापको सुनकर जय-विजयने भी अश्विनीकुमारोंको शाप देते हुए कहा कि बिना अपराध तुमने हमको शाप दिया है। अतएव तुम दोनोंको भी एक बार पृथ्वीतलपर जन्म लेना पड़ेगा ॥९--१२॥ इस प्रकार आपसमें शाप पाकर वे चारों हाहाकार करके पछताने लगे और वैकुण्ठभरमें कोलाहल मच गया। तब विष्णुभगवान्ने उनको अपने पास बुलाया ॥ १३ ॥ भगवान्ने उनका वृतान्त सुना। इसके अनन्तर आदरपूर्वक उन चारोंने भगवान्से प्रार्थना की—॥ १४ ॥ हे महेश्वर ! जिससे हमलोग शीघ्र इस शापसे मुक्त हो जायँ, हमें आप वही उपाय बतलायें। विष्णुभगवान्ने उन्हें समझाते हुए कहा कि घबड़ाओ नहीं, शीघ्र ही तुम लोग शापसे मुक्त हो जाओगे। किन्तु उपाय दो हैं। एक यह कि तुमलोग हमारी भक्तिसे विरोधभाव रखो। दूसरे उपायसे हमारी भक्ति करके मुक्ति पानेकी चेष्टा करो। यदि मेरी भक्तिके विरुद्ध रहोगे तो शीघ्र मुक्ति मिल जायगी और भक्तिके साथ चाहोगे तो सात बार जन्म लेना पड़ेगा। इन दोनोंमेंसे जो उपाय अच्छा जँचे, उसे चुन लो। इस प्रकार विष्णुकी बात सुनकर उन लोगोंने उत्तर दिया कि हम आपकी भक्तिके विरुद्ध भाव रक्खेंगे, जिससे शीघ्र मुक्त हो जायँ। भगवान्ने भी "अच्छी बात है" यह कहकर उन लोगोंको बिदा कर दिया ॥ १५—१८ ॥ तदनन्तर वे लोग मृत्युलोकमें आकर जन्मे। उनमें जय हिरण्याक्ष नामका तथा विजय हिरण्यकशिपु राक्षस होकर जन्मा। इसके अनन्तर वाराहरूप धारण करके विष्णुभगवान्ने हिरण्याक्षको मारा और नरसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपुका वध किया ॥ १९ ॥ २० ॥ दूसरे जन्ममें

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Srivastava Ghaziabad Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जयो जातो रावणोऽत्र कुम्भकर्णस्तथाऽपरः । जातो विजयनामा हि रामेणानेन तौ हतौ ॥२२॥
तावश्विनीकुमारौ हि एक ऐरावणः स्मृतः । मैरावणश्च त्वपरं एवं तौ जनितावधः ॥२३॥
पाताले वरदानाच्च रामहस्तान्मृतिं गतौ । अग्रे जयः शिशुपालो भविष्यति न संशयः ॥२४॥
विजयो दंतवक्त्रश्च भविष्यत्यवनीतले । द्वापरे कृष्णरूपेण शिशुपालं हरिः स्वयम् ॥२५॥
वधिष्यति दंतवक्त्रं तथैव मुनिसत्तम । एवं जन्मत्रयं शापाद्भुक्त्वा तौ भगवद्गणौ ॥२६॥
जयविजयनामानौ पूर्ववत् स्थास्यतः शुभौ । द्वारदेशेऽस्य वै विष्णोर्वैकुण्ठे दुःखवर्जिते ॥२७॥
तावश्विनौ देववैद्यौ पूर्ववद्दिवि तौ स्थितौ । एवं मुने त्वया पृष्टं तन्मया परिवर्णितम् ॥२८॥
भगवद्गणयोः शापकारण च पुरातनम् । एवं राघव चाग्रे त्वं द्वापरे परमे शुभे ॥२९॥
जरासंधादिवीरैश्च कंसाद्यैरपि भूतलम् । खिन्नं दृष्ट्वाऽत्रावतीर्य कृष्णरूपेण लीलया ॥३०॥
सर्वान्हत्वा तोषयुक्तं करिष्यसि महीतलम् । तान् बौद्धान्बुद्धरूपेण कलावग्रे विजेष्यसि ॥३१॥
वर्णसंकरमालक्ष्य कलेरंते रघूत्तम । कल्किरूपेण सकलान्संहरिष्यसि लीलया ॥३२॥
एवं दशावताराश्च तथान्येऽपि सहस्रशः । त्वया हितार्थमस्माकं धृताश्चाग्रे धरिष्यसि ॥३३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं स्तुवन्तं ब्रह्माणं समालिंग्य रघूत्तमः । संनिवेश्यासने प्राह त्वदर्थं च मुनेर्गिरा ॥३४॥
हास्यमाज्ञापितं किञ्चिज्जनाः कुर्वंतु ते सुखम् । यथा वाल्मीकिना प्रोक्तं तथा मा विस्तरोस्तु वै ॥३५॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा तदा हृष्टाः सुरादयः । प्रपच्छ च वाल्मीकिं सभायां रघुनन्दनः ॥३६॥
ममावतारतः पूर्वं त्वया मच्चरितं कृतम् । कथं ज्ञातं त्वया पूर्वं केन त्वामुपदेशितम् ॥३७॥
पूर्वजन्मनि कस्त्वं हि किं पुण्यं हि त्वया कृतम् । तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्वाद्य मां प्रति ॥३८॥

वे दोनों रावण और कुम्भकर्ण होकर जन्मे और भगवानने रामका रूप धारण करके उन्हें मारा ॥ २१ ॥ २२ ॥ दोनों अश्विनीकुमारोंमेसे एक ऐरावण एवं दूसरा मैरावणके रूपसे धरतीपर आया और पाताललोकमें रामके हाथों उन दोनोंकी मृत्यु हुई । अगले जन्ममें जब शिशुपाल तथा विजय दन्तवक्त्रके नामसे जन्मेगा। द्वापरमें भगवान् कृष्णरूपसे उन दोनोंका संहार करेंगे । इस तरह आपसके शापा-शापीसे ये लोग तीन जन्ममें अपनी करनीका फल भोगकर फिर पहलेकी तरह जय-विजयके नामसे भगवान्के द्वारपाल हो जायँगे, तब उन्हें फिर कोई क्लेश नहीं होगा ॥ २३-२७ ॥ तबसे अश्विनीकुमार भी आनन्दके साथ स्वर्गलोकमें निवास करेंगे। हे मुनिराज ! आपने हमसे जो कुछ पूछा, वह मैंने बतलाया। इसका सारांश यह निकला कि उन दोनों भगवद्गणोंके लिए एक प्राचीन शाप कारण था। उसमें कोई नयी बात नहीं थी। हे राघव ! आगे द्वापर युगमें भी पृथ्वी जब कंस तथा जरासंघ आदि दुष्टोंके अत्याचारोंसे घबड़ा जायगी, तब आप कृष्ण अवतार लेकर दुष्टोंका संहार करते हुए पृथ्वीका भार उतारेंगे। उसी प्रकार कलियुगमें बुद्धका रूप धारण करके आप बौद्धोंको पराजित करेंगे ॥ २८-३१ ॥ हे रघूत्तम ! कलियुगके अन्तमें जब समस्त संसार वर्णसङ्कर हो जायगा, तब आप कल्किरूप धारण करके सबका संहार करेंगे । इस तरह दस क्या, हजारों अवतार आपने हम लोगोंके कल्याणार्थ लिया है और भविष्यमें भी लेंगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीरामदास बोले—इस तरह स्तुति करते हुए ब्रह्माको रामने हृदयसे लगा लिया और अपनी बगलमें बिठाकर कहा कि वाल्मीकिके कथनानुसार मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम्हारे सुखके लिये लोग हँसें या जो कुछ करें, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। वाल्मीकिने जो कहा है, उसके अनुसार मेरी प्रजाके लोग काम करेंगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ रामकी इस बातको सुनकर जितने देवता थे, वे सब प्रसन्न हो गये। इसके पश्चात् रामने वाल्मीकिसे कहा कि मेरे अवतारसे पहले ही आपने मेरा चरित्र रामायण बना डाला है। सो भविष्यकी बातें आपको कैसे मालूम हुईं ? उन्हें किसने बतायी थीं ? ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ पूर्वजन्ममें आप कौन थे और आपने कौनसे पुण्यकार्य किये थे, सो मुझसे कहिए। इस प्रकार रामके प्रश्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तद्रामवचनं श्रुत्वा वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः। सभायां राघवं सर्वं वक्तुं समुपचक्रमे ॥३९॥

वाल्मीकिरुवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया राम सावधानमनाः शृणु। राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम् ॥४०॥
यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान्। शृणु राघव मत्तस्त्वं कथा मे पूर्वजन्मनः ॥४१॥
पंपातीरे द्विजः कश्चिच्छंखो नाम महायशाः। गुरोः सिद्धिं गतश्चागान्नदीं गोदावरीं प्रति ॥४२॥
तीर्त्वा भीमरथीं पुण्यां कांतारे कंटकाविले। निर्जले विजने घोरे वैशाखे तापकर्षितः ॥४३॥
वनं चोपविवेशासौ मध्याह्नसमये द्विजः। तदा कश्चिद्दुराचारी व्याधश्चापधरः शठः ॥४४॥
निर्घृणः सर्वभूतेषु कालांतक इवापरः। तं कुण्डलधरं विप्रं दीक्षितं भास्करोपमम् ॥४५॥
खड्गेन भीषयित्वा तु जग्राह कुंडलादिकम्। उपानहौ तच्छत्रं च वस्त्राणि च कमण्डलुम् ॥
पश्चाद्वित्वाऽथ तं विप्रं गच्छेत्याह स मूढधीः ॥४६॥

तथा स गच्छन्पथि शर्कराविले सूर्यांशुतप्ते जनवर्जिते खरे।
संतप्तपादस्तृणगोपिते स्थले क्वचिच्च वस्त्रोपरि संस्थितोऽभवत् ॥४७॥
स वै द्रुतं तापतप्तोऽपि तिष्ठन्हाहेति वादी प्रजगाम विप्रः।
दृष्ट्वा मुनिं तं बहुखिन्नमानसं मध्यं गते पूष्णि यदाऽतितीव्रे ॥४८॥
व्याधस्य जाता मतिरीदृशी वै तस्मै ददामीति च पादरक्षे।
स्वीयेन धर्मेण तु तस्करेण वने गृहीतं सकलं च तन्मे ॥४९॥

चौर्येण च स्वधर्मेण यद्गृहीतं वनान्तरे। तदीयमेव तत्सर्वं व्याधानां धर्मनिर्णयः ॥५०॥
तस्मादुपानहौ दास्ये मुहुर्दुःखापनुत्तये। तेन श्रेयो भवेद्यच्च तद्भवेन्मम पापिनः ॥५१॥
जीर्णौ चोपानहावेतौ ह्रस्वौ स्तश्च पदोर्मम। न चाभ्यामस्ति मे कार्यं तस्मात्तस्मै ददाम्यहम् ॥५२॥

करनेपर वाल्मीकिजीने बतलाना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा—आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सावधान चित्त होकर सुनिये। हे राम! आपके नामकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है, जिसके प्रभावसे आज मैं ब्रह्मर्षिपदपर बैठा हूँ। अच्छा, पहले अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त ही बतलाता हूँ। पम्पा सरोवरके पास कोई एक महान् यशस्वी शङ्ख नामका ब्राह्मण रहता था। उसने गुरुके पाससे सिद्धि प्राप्त की और कुछ दिनों बाद गोदावरी नदीपर गया। उसे पार करके भीमरथी नदी पार किया और एक ऐसे निर्जन वनमें पहुँचा, जहाँ जलतक मिलना कठिन था। वह वैशाखका महीना था। मारे गर्मीके उसका जी बेचैन था। दोपहरके समय थककर वह उसी वनमें बैठ गया। उसी समय धनुष-बाण लिये एक दुष्ट व्याध उसके पास आ पहुँचा ॥ ३८-४४ ॥ वह दूसरे यमराजके समान भयानक और निर्दयी था। उसने उस सूर्यके समान तेजस्वी ब्राह्मणको तलवारसे भयभीत करके उसके कुण्डलादि आभूषण, जूते, छतरी, वस्त्र तथा कमण्डलु आदि छीन लिये। इसके बाद उसने "जाओ" कहकर छोड़ दिया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ बेचारा ब्राह्मण कङ्कड़-पत्थर तथा सूर्यके तापसे जलती हुई बालुकाव्याप्त मार्गसे चलने लगा। जब उसके पैर ज्यादा जलने लगते तो किसी तृण आदिपर पैर ठंढा करके आगे बढ़ता था। चलते-चलते जब पैर बहुत जलने लगे तो वह कपड़ा बिछाकर एक स्थानपर बैठ गया ॥ ४७ ॥ थोड़ी देर बाद उठकर उस कड़ाकेकी धूपमें पैरके जलनेसे हाहाकार करता हुआ वह फिर आगे बढ़ा। उस ब्राह्मणको जलती दुपहरीमें इस तरह दुःखित देखकर व्याधके मनमें आया कि मैंने इसकी सारी वस्तुयें तो छीन ली हैं। न हो, इसे इसके जूते लौटा दूँ। इसकी सब चीजें छीनकर मैंने अपने धर्मका पालन किया ही है। हे राम! वनमें आने-जानेवाले पथिकोंके सामान छीन लेना, उन चोरोंके धर्ममें सम्मिलित है। उस चोरने सोचा कि इसके जूते इसे दे डालूँ तो इसका क्लेश दूर हो जायगा और उससे जो पुण्य होगा, सो मुझ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इति निश्चित्य मनसि तूर्णं गत्वा ददौ च तौ। शर्करातप्तपादाय द्विजवर्याय सीदते ॥५३॥
उपानहौ गृहीत्वाऽसौ निर्वृतिं च परां ययौ। सुखी भवेति तं प्राह शंखस्तं पुनरब्रवीत् ॥५४॥
पूर्वपुण्येन ते जाता शुभा बुद्धिर्वनेचर। यया बुद्ध्याऽद्य वैशाखे त्वया दत्तावुपानहौ ॥५५॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा शंखं व्याधोऽब्रवीद्वचः। किं मयाऽऽचरितं पूर्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥५६।

शंख उवाच

आतपो बाधते घोरो नात्र छाया न वै जलम्। तस्मात्स्थलांतरं गत्वा यत्र छायांबु वर्तते ॥५७॥
तत्र गत्वा जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः। ततस्ते सुकृतं पूर्वं सविस्तारं वदाम्यहम् ॥५८॥
इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्राह कृतांजलिः। इतोऽविदूरे सलिलं वर्तते च सरोवरे ॥५९॥
कपित्थास्तत्र वै संति फलभारेण पीडिताः। गच्छात्रस्तत्र संतुष्टिर्भविता नात्र संशयः ॥६०॥
व्याधेनैवं समादिष्टस्तेन साकं ययौ मुनिः। कियद्दूरं ततो गत्वा ददर्शाग्र्यं सरोवरम् ॥६१॥
स्नात्वा मध्याह्नवेलायां तस्मिन्सरसि निर्मले। वाससी परिधायाथ कृत्वा माध्याह्निकीः क्रियाः ॥६२॥
देवपूजां तथा कृत्वा फलमूलमतंद्रितः। व्याधोपनीतं सुस्वादु कपित्थं श्रमहारि च ॥६३॥
भुक्त्वा सुखं जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः। सुखोपविष्टस्तं प्राह पूर्वपुण्यं वदामि ते ॥६४॥
शाकले नगरे पूर्वं द्विजस्त्वं वेदपारगः। स्तंभो नाम महापापी तथा श्रीवत्सगोत्रजः ॥६५॥
तवेष्टा गणिका काचित्तदाऽऽसीत्संगदोषतः। त्यक्तनित्यक्रियो नित्यं शूद्रवन्मूर्खमार्गगः ॥६६।
शून्याचारस्य मूढस्य परित्यक्तक्रियस्य च। ब्राह्मणी ते तदाऽन्यासीद्भार्या कांतमयी तथा ॥६७॥
सा त्वां पर्यचरत्सुभ्रूः सवेश्यं ब्राह्मणाधमम्। उभयोः क्षालयंती च पादौ त्वत्प्रियकाम्यया ॥६८॥
उभयोरप्यधः शेते उभयोर्वचने रता। वेश्यया वार्यमाणाऽपि हितकार्ये द्वयोः स्थिता ॥६९॥

पापीके पक्षमें अच्छा ही होगा ॥ ४८-५१ ॥ ये जूते भी पुराने और छोटे हैं। इसलिए मेरे पैरमें न आयेंगे। तब इसे दे ही डालूँ। इस प्रकार निश्चय करके दौड़ता हुआ वह उस धूप तथा कंकड़ियोंके गड़नेसे दुःखी ब्राह्मणके पास पहुँचा और उसे उसके जूते दे दिये ॥५२॥५३॥ जूता मिलनेपर उसे बड़ा आनन्द मिला और ब्राह्मणने कहा—तुम सुखी होओ। हे वनेचर! पूर्वजन्मके किसी पुण्यसे तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई है। जिससे तुमने वैशाख महीनेमें इस जूतेका दान दिया है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इस प्रकार शङ्खकी बात सुनकर व्याधने कहा कि पूर्वजन्ममें मैंने कौनसा पुण्य किया था। सो आप विस्तारपूर्वक मुझे बताइये ॥ ५६ ॥ ब्राह्मणने कहा कि इस समय मुझे घाम ज्यादा लग रहा है। इस जगहपर न तो पानी है, न छाया ही है। इसलिए किसी एक स्थानपर चलो, जहाँ कि छाया और पानी मिल सके। वहाँपर ही मैं तुम्हें तुम्हारे पूर्वजन्मका वृत्तांत सुनाऊँगा ॥५७॥५८॥ इस प्रकार ब्राह्मणकी बात सुनी तो हाथ जोड़कर व्याधेने कहा कि पास ही सरोवरमें पानी है और उसके आस-पास बहुतसे कैथेके वृक्ष फलसे लदे हुए विद्यमान हैं। वहाँपर चलनेसे आप सन्तुष्ट हो जायँगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ व्याधेके ऐसा कहनेपर ब्राह्मण उसके साथ चलकर उस सरोवरके पास पहुँचा। दोपहरके समय उसने स्नान किया, कपड़े पहने और मध्याह्नकालकी क्रियायें पूरी कीं। फिर देवताका पूजन करके व्याधेके लाये हुए कैथेके फल खाये, सरोवरका मीठा पानी पिया और छायामें सुखसे बैठकर विप्र बोला—अब मैं तुम्हारे पूर्वजन्मके पुण्य बतलाता हूँ ॥ ६१-६४ ॥ पूर्वजन्ममें शाकल नामकी नगरीमें तुम वेदपरगामी स्तम्भ नामके ब्राह्मण थे। श्रीवत्स गोत्रमें तुम्हारा जन्म हुआ था, किन्तु तुम बड़े भारी पापी थे। दुःसङ्गके दोषवश तुम एक वेश्यापर मुग्ध हो गये। तुमने अपनी सारी नित्य-क्रियायें छोड़ दीं और शूद्रके समान मूर्खोंके मार्गपर चलने लगे। तुम जैसे मूर्ख तथा आचार विहीन ब्राह्मणके घरमें एक अति रूपवती ब्याही भार्या भी थी। वह उस वेश्याकी तथा तुम्हारी खूब सेवा करती थी। तुम्हें प्रसन्न रखनेकी इच्छासे वह तुम दोनोंके पैर धोती थी ॥ ६५-६८ ॥ तुम दोनोंकी अपेक्षा नीची शय्यापर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एवं शुश्रूषयंत्या हि भर्तारं वेश्यया सह । जगाम सुमहान्कालो दुःखितायाा महीतले ॥७०॥
अपरस्मिन्दिने भर्ता माहिष्यं मूलकान्वितम् । अभक्षयत्क्षुद्रकर्मा निष्पावांस्तिलमिश्रितान् ॥७१॥
तमपथ्यमशित्वा तु वमंश्चैव व्यरेचयत् । अपथ्याद्दारुणो रोगो व्यजायत भगंदरः ॥७२॥
स दह्यमानो रोगेण दिवारात्रं तु भूरिशः । यावदास्ते गृहे वित्तं तावद्वेश्या च संस्थिता ॥७३॥
गृहीत्वा सकलं वित्तं पश्चान्नोवास मन्दिरे । अन्यस्य पार्श्वमासाद्य तस्थौ घोराऽतिनिर्घृणा ॥७४॥
ततः स दीनवदनो व्याधिबाधासुपीडितः । उक्तवान्सुरुदन्भार्यां रुजा व्याकुलमानसः ॥७५॥
परिपालय मां देवि वेश्यासक्तं सुनिष्ठुरम् । न मयोपकृतं किंचित्तव सुन्दरि पावनि ॥७६॥
यो भार्यां प्रणतां पापो नानुमन्येत मूढधीः । स षंढो भवतीत्यत्र दश जन्मानि सप्त च ॥७७॥
दिवारात्रं महाभागे निन्दितः साधुभिर्जनैः । पापयोनिमवाप्स्यामि त्वां साध्वीमवमन्य वै ॥७८॥
अहं क्रोधेन दग्धोऽस्मि सदा निष्ठुरभाषणः । एवं ब्रुवाणं भर्तारं कृताञ्जलिपुटाऽब्रवीत् ॥७९॥
न दैन्यं भवता कार्यं न व्रीडा कांत मां प्रति । न चापि त्वयि मे क्रोधो वर्तते सुमनागपि ॥८०॥
पुरा कृतानि पापानि दुःखानि भवंति हि । तानि यः क्षमते साध्वी पुरुषो वा स उत्तमः ॥८१॥
यन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि । तद्भुञ्जन्त्या न मे दुःखं न विषादः कथंचन ॥८२॥
इत्येवमुक्त्वा भर्तारं सा सुश्रूरन्वपालयत् । आनीय जनकाद्वित्तं बन्धुभ्यो वरवर्णिनी ॥८३॥
क्षीरोदवासिनं विष्णुं भर्तुर्देहे व्यचिन्तयत् । शोधयन्ती दिवारात्रौ पुरीषं मूत्रमेव च ॥८४॥
नखेन कर्षती भर्तुः कृमीन्देहाच्छनैः शनैः । न सा स्वपिति रात्रौ तु दिवा वा वरवर्णिनी ॥८५॥
भर्तुर्दुःखेन संतप्ता दुःखितेदमथाब्रवीत् । देवाश्च पांतु भर्तारं पितरो ये च विश्रुताः ॥८६॥
कुर्वंतु रोगहीनं मे भर्तारं हृतकल्मषम् । चंडिकायै प्रदास्यामि रक्तं मांसं सुखोद्भवम् ॥८७॥

सोती और दोनोंकी आज्ञाका पालन करती रहती थी। यद्यपि वेश्या उसे अपनी सेवा करनेसे रोकती, फिर भी वह न मानती और तुम दोनोंकी परिचर्यामें रात-दिन लगी रहती थी। इस तरह सेवा करते-करते उस दुखियाके बहुत दिन बीत गये। एक दिन स्तम्भने तिलमिश्रित कुछ ऐसी चीजें खा लीं, जिसमें कै दस्त होने लगा और कुछ दिनों बाद उसने अतिदारुण भगन्दर रोगका रूप धारण कर लिया ॥ ६९-७२ ॥ उस रोगसे स्तम्भ रात-दिन गलने लगा। जब तक घरमें सम्पत्ति थी, तब तक वेश्या रही। बादमें घरकी रही-सही पूंजी चुराकर निकल भागी और किसी दूसरेके घर जा बैठी। ऐसी अवस्थामें रोता हुआ स्तम्भ अपनी स्त्री-से कहने लगा—॥ ७३-७५ ॥ हे देवि ! मुझ वेश्यागामी तथा निष्ठुर पुरुषकी रक्षा करो। हे सुन्दरि ! हे पावनि ! मैंने जीवनभरमें तुम्हारा कोई उपकार नहीं किया है। शास्त्र कहता है कि जो पापी शीलवती भार्याका निरादर करता है, वह सत्रह जन्म तक नपुंसक होकर जन्म लेता है। अच्छे पुरुष ऐसे मनुष्योंकी रात-दिन निन्दा करते हैं। तुम जैसी सती-साध्वी नारीका अपमान करके मुझे किसी नीच योनिमें जाना पड़ेगा ॥ ७६-७८ ॥ क्योंकि मैं सदा तुम्हारे ऊपर कुपित रहता और रूखी बातें बोला करता था। इस प्रकार दीनभावसे प्रार्थना करते हुए पतिसे स्त्रीने हाथ जोड़कर कहा—हे कान्त ! आप किसी प्रकार दुखी न हों और उन बीती बातोंके लिए पश्चात्ताप न करें। मुझे तुम्हारेपर उनके लिए कोई चिन्ता या क्रोध नहीं है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अपने पूर्वजन्मके किये हुए पाप ही दुःखरूपसे प्राप्त होते हैं। जो स्त्री या पुरुष उन दुःखोंको सह लेता हे, वे उत्तम हैं। मुझ पापिनीने पूर्वजन्ममें जो पाप किये थे, उनको भोगते हुए मुझे किसी तरह का दुःख या विषाद नहीं है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ इतना कहकर उसने अपने पतिको ढाढ़स बँधाया और पिता तथा भ्राताओंके पाससे धन माँग लाकर सेवा करने लगी। वह उस रोगी पतिके शरीरमें क्षीरसागरनिवासी विष्णुभगवान्का निवास मानती हुई रात-दिन मल-मूत्र उठाकर सेवा करती रही ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ पतिके शरीरमें पड़े हुए कीड़ोंको नाखूनसे निकालती रहती थी। इस प्रकार सेवा करनेसे रात-दिन कभी उसे सोनेतक की छुट्टी नहीं मिलती थी। स्वामीके दुःखसे दुखित होकर वह देवताओंको मनाती, पितरोंसे विनती करती

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुष्ठ्वन्नं माहिषोपेतं भर्तुरारोग्यहेतवे । मोदकानपि दास्यामि विघ्नेशाय महात्मने ॥८८॥
मन्दवारे करिष्यामि सदैवाहमुपोषणम् । नोपभोक्ष्यामि मधुरं नोपभोक्ष्यामि वै घृतम् ॥८९॥
तैलाभ्यङ्गविहीनाऽहं सदा स्थास्यामि भूतले । जीवत्वयं रोगहीनो भर्ता मे शरदां शतम् ॥९०॥
एवं सा व्याहरद्देवी वासरे वासरे गते । तदा चागान्मुनिः कश्चिन्महात्मा देवलाह्वयः ॥९१॥
वैशाखमासे घर्मार्तः स ययौ तस्य वै गृहे । तदा ते भार्यया चोक्तं वैद्योऽयं गृहमागतः ॥९२॥
तेन ते रोगहानिः स्यात्तस्यातिथ्यं करोम्यहम् । यदाज्ञापयसि त्वं मां नोचेन्नैव करोम्यहम् ॥९३॥
ज्ञात्वा त्वां धर्मविमुखं भिषग्व्याजेन वंचितम् । तस्यातिथ्यं तु वै कर्तुं दत्ताऽऽज्ञा वै पुरा त्वया ॥९४॥
तस्य पत्नी तदा तुष्टा पूजयामास सा मुनिम् । पादावनेजनं कृत्वा तज्जलं मूर्ध्नि तेऽवहत् ।९५॥
पातुं तुभ्यं ददौ तीर्थं त्वामुक्त्वा भेषजं त्विति । पानकं च ददौ तस्मै घर्मार्ताय महात्मने ॥९६॥
दिव्यान्नैर्भोजयामास सुगन्धव्यजने ददौ । त्वयाऽनुमोदिता सायं घर्मतापं न्यवारयत् ॥९७॥
स प्रातरुदिते सूर्ये मुनिर्ग्रामांतरं ययौ । अथ चाल्पेन कालेन सन्निपातोऽभवत्तव ॥९८॥
त्रिकटुं मुख आधात्सा भर्ताऽङ्गुलिमखण्डयत् । कफेन दन्तपंक्तिभ्यां मीलिताभ्यां दृढ तदा ।९९॥
ते वक्त्रेऽङ्गुलिखण्डं तत्स्थितमेवातिकोमलम् । खंडयित्वांगुलिं तस्याः पञ्चत्वं त्वं गतः पुरा ॥१००॥
शय्यायां सुमनोज्ञायां स्मरंस्तां पुंश्चलीं हृदि । मृतं विज्ञाय भर्तारं भार्या कांतिमयी तव ॥१०१॥
विक्रीत्वा वलये स्वे त्वां गृहीत्वा चंदनं बहु । चक्रे चितिं तेन साध्वी मध्ये कृत्वा पतिं तदा ॥१०२॥
समालिंग्य भुजाभ्यां ते पादौ चाश्लिष्य पादयोः । मुखे मुखं निजं कृत्वा हृदये हृदयं तथा ॥१०३॥
गुह्ये कृत्वा तु गुह्यं स्वमेवं सा रामामानसा । दाहयामास कल्याणी भर्तुर्देहं रुजान्वितम् ॥
आत्मना सह तन्वङ्गी ज्वलिते जातवेदसि ॥१०४॥

एवं वरा सा ललना पतिव्रता दंदह्यमाने सुसमिद्धवह्नौ ।
विमुच्य देहं सहसा जगाम पतिं नमस्कृत्य मुरारिलोकम् ॥१०५॥

और चण्डिकाके समीप यह प्रार्थना करती-हे देवि ! यदि मेरे पतिदेव शीघ्र अच्छे हो जायं तो मैं महिषके रक्त और मांससे मिला हुआ अन्न आपको समर्पण करूँगी । पतिदेव यदि अच्छे हो जायँ तो मैं गणेशजीको लड्डू चढ़ाऊँगी और प्रत्येक शनिवारका व्रत करूँगी । मैं मिठाई खाना छोड़ दूँगी, घी भी नहीं खाऊँगी, शरीरमें तेल और उबटन लगाना त्याग दूँगी और सर्वदा जमीनपर सोऊँगी । लेकिन मेरे पतिदेव रोगमुक्त हो जायँ और सैकड़ों वर्ष जीवित रहें ॥८५-९०॥ इस तरह वह नित्य मानता माना करती थी । इसी बीच एक दिन महात्मा देवल ऋषि सहसा उसके घर पहुँचे । वह वैशाखका महीना था । स्तम्भकी स्त्री पतिके पास जाकर कहने लगी कि एक कोई वैद्य एकाएक मेरे घर आ गया है । वह अवश्य किसी उपायसे आपका रोग नष्ट कर देगा । आप यदि आज्ञा दें तो मैं उसकी सेवा करूँ, नहीं तो नहीं ॥ ९१-९३ ॥ स्तम्भ (तुम) ने सेवा करनेकी आज्ञा दे दी । स्त्रीने प्रसन्न मनसे देवलकी पूजा की । उनके चरण धोकर उस जलको माथे चढ़ाया और थोड़ा-सा जल दवाके ब्याजसे स्तम्भ (तुम) को भी पिला दिया । फिर उन देवल ऋषिको उसने पानी पिलाया । अच्छे-अच्छे पकवान बनाकर भोजन कराया और तुम्हारे कहनेसे उनको पंखा भी झलकर उनका सन्ताप दूर किया ॥ ९४-९७ ॥ रातभर देवलऋषि उनके घर रहे और सबेरे दूसरे गाँवको चले गये । थोड़े दिन बाद स्तम्भको (तुमको) सन्निपात हो गया । स्त्रीने त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) का काढ़ा बनाकर स्तम्भके (तुम्हारे) मुखमें दिया, इतनेमें कफके प्रकोपसे दांत जकड़ गये और तुमने स्त्रीकी एक उँगली काट ली । तुम्हारे मुखमें वह कोमल उँगली पड़ी ही रही और तुम्हारी मृत्यु हो गयी ॥ ९८-१०० ॥ मरणकालमें शय्यापर पड़े हुए उसी पुंश्चली वेश्याका स्मरण करते-करते तुमने प्राण त्याग दिया । जब उस सतीने जाना कि तुम्हारी मृत्यु हो गयी है तो अपने दोनों कंकण बेचकर बहुत-सी चन्दनकी लकड़ी खरीदी और उसकी चिता बनायी । फिर दोनों भुजाओंसे भुजाएँ, पैरसे पैर, मुखसे मुख तथा हृदयसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

त्वमन्तकाले गणिकेच्छया हि देहं त्यक्त्वा त्यक्तकर्मा दुरात्मा ।
व्याधजन्म प्रापितं घोरधर्मे हिंसासक्तः सर्वदोद्वेगकारी ॥१०६॥
दत्ता त्वया पानकमर्पितुं वै मासेऽनुज्ञा माधवे सद्‌द्विजाय ।
भिषग्व्याजात्तेन जाता सुबुद्धिर्धर्मं कर्तुं पादरक्षेऽर्पिते ये ॥१०७॥
घृतं मूर्ध्ना पादशौचावशेषं जलं मुनेः सर्वपापापहारि ।
तेनैव ते सङ्गतिर्मे वनेऽस्मिन् जाता श्रोतुं स्वीयपुण्यं मतिश्च ॥१०८॥
मुखे कृत्वांगुलिं यस्मान्मृतः पूर्वभवांतरे । तस्मादत्र वने मांसाहारस्तेऽभूद्वनेचर ॥१०९॥
वेश्या सा भिल्लिनी जाता भार्या या तव वर्तते । शय्यायां मरणात्तेऽत्र शयनं भुवि सर्वदा ॥११०॥
इति ते सर्वमाख्यातं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् । तत्कर्म पुण्यं पापं च दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥१११॥
अतः परं भावि वृत्तं शृणु तेऽहं वदामि वै । कृणुर्नाम मुनिस्त्वग्रे कस्मिंश्चिच्च सरोवरे ॥११२॥
करिष्यति तपस्तीव्रं चान्नव्यापारवर्जितः । पश्चात्तपोविरामांते तन्नेत्राभ्यां बहिः स्रुतम् ।११३॥
वीर्यं दृष्ट्वोरगी काचित्स्वयं स्खलितमंजसा । ग्रहीष्यति ऋतोः काले तस्मात्त्वत्पुण्यतस्तदा ॥११४॥
किराताः पालयिष्यंति किरातस्त्वं भविष्यसि । उपानहावर्पितेऽद्य यस्मात्त्वत्पुण्यतस्तदा ॥११५॥
भविष्यति सङ्गतिस्ते वने सप्तमुनीश्वरैः । तेषां प्रसादाद्वाल्मीकिर्मुनिस्त्वं हि भविष्यसि ॥११६॥
यस्त्वं रामकथां दिव्यां सुप्रबन्धैः करिष्यसि ।

वाल्मीकिरुवाच

इति व्याधं समादिश्य धर्मान्वैशाखजानपि ॥११७॥
उपदिश्य सविस्तारं प्रतस्थे गौतमीं तदा । स शंखः कुण्डलाद्यैश्च तद्दत्तैस्तुष्टमानसः ॥११८॥
व्याधोऽपि शङ्खवचनात्तस्मिन्नेव वने चिरम् । वन्यैर्वैशाखमासीयान्धर्मान्प्रीत्याऽकरोच्छुभान् ११९॥

हृदयका आलिंगन करके तुम्हारे साथ धधकती चितामें शरीरको त्यागकर वह राममें रमी पतिव्रता स्त्री सती होकर वैकुण्ठलोकको चली गयी ॥ १०१–१०५ ॥ अपने ब्राह्मणोचित कार्योंको त्यागे हुए तुमने अन्तसमयमें वेश्याका चिन्तन करते हुए प्राण त्यागे थे। इससे सर्वदा उद्वेगकारी तथा हिंसामें आसक्त इस घोरकर्ममय व्याधेकी योनिमें उत्पन्न हुए हो। उस समय वैशाख महीनेमें आये हुए देवल ऋषिकी पूजाके लिए तुमने अपनी स्त्रीको आज्ञा दे दी थी, उसी पुण्यसे तुम्हारे हृदयमें धर्मबुद्धि उत्पन्न हुई है। इसीसे इस समय तुमने मेरे जूते वापस दे दिये हैं। तुम्हारी स्त्रीने दवाके ब्याजसे ब्राह्मणका चरण-जल तुम्हारे माथे चढ़ाया था, उसी पुण्यसे आज हमारी भेंट हुई है और तुम अपने पूर्वजन्मका वृत्तांत सुन रहे हो ॥ १०६–१०८ ॥ तुमने पूर्वजन्ममें अपनी स्त्रीकी उँगली काट ली थी। इसलिए हे वनेचर ! इस समय तुम माँसाहारी हो। वह वेश्या इस समय भीलिनी है। मरते समय तुम शय्यापर ही पड़े रहे, इस कारण इस जन्ममें तुम्हें सर्वदा भूमिपर शयन करना पड़ता है। मैंने अपनी योगदृष्टिसे तुम्हारे पूर्वजन्मके पाप-पुण्य देखकर तुम्हें बतलाया है ॥ १०९–१११ ॥ इसके अनन्तर अब मैं तुम्हें तुम्हारे भावी जीवनका हाल बतलाता हूँ, सुनो। कृणुनामके कोई तपस्वी अन्न त्यागकर एक सरोवरके निकट तपस्या करते रहेंगे। तपस्याके अन्तमें उनकी आँखोंसे वीर्य निकलेगा। उसे देखकर कोई सर्पिणी खा जायगी। उसीके उदरसे तुम किरातके रूपमें उत्पन्न होओगे ॥ ११२--११४ ॥ किरात लोग तुम्हारी रक्षा करेंगे और तुम उन्हींके साथ रहोगे। जो तुम इस समय मुझे मेरा जूता वापस दे रहे हो, इसी पुण्यसे एक बार तुम्हारी सप्त ऋषियोंसे भेंट होगी और उनकी दयासे तुम वाल्मीकि नामक ऋषि होओगे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ अपनी अच्छी रचनासे तुम रामकथाका निर्माण करोगे। वाल्मीकिजी कहते हैं कि इस प्रकार वैशाख मासका धर्म तथा विविध उपदेश देकर व्याधसे कुण्डल आदि पाकर प्रसन्न मन शङ्ख गौतमी नदीकी ओर चले गये। व्याधने भी शङ्खके उपदेशसे वनैले फलमूल द्वारा ही वैशाख मासके धर्मोंकी

CC0. In Public Domain. Pratikanth Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

व्याधजन्मात्यये जाते कृणुः पुत्रस्त्वहं ततः । पन्नगीजठरोद्भूतस्त्वरण्ये रघुनन्दन ॥१२०॥
अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्द्धितः । जन्ममात्रं द्विजत्वं मे शूद्राचाररतः सदा ॥१२१॥
शूद्रायां बहवः पुत्राश्चोत्पन्ना मेऽजितात्मनः । ततश्चौरैश्च संगत्य चौरोऽहमभवं पुनः ॥१२२॥
धनुर्बाणधरो नित्यं जीवानामंतकोपमः । एकदा मुनयः सप्त दृष्टा महति कानने ॥१२३॥
स्वतेजसा प्रकाशंतो ज्वलनार्कसमप्रभाः । तानन्वधावं लोभेन तेषां सर्वपरिच्छदान् ॥१२४॥
गृहीतुकामस्तत्राहं तिष्ठतां तिष्ठतामिति । अब्रव मुनयोऽपृच्छन् किमायासि द्विजाधम ॥१२५॥
अह तानब्रवं किंचिदादातुं मुनिसत्तमाः । पुत्रदारादयः संति बहवो मे बुभुक्षिताः ॥१२६॥
तेषां संरक्षणार्थाय चरामि गिरिकानने । ततो मामूचुरव्यग्राः पृच्छ गत्वा कुटुम्बकम्॥१२७॥
यो यो मया प्रतिदिनं क्रियते पापसंचयः । यूयं तद्भागिनः किं वा नेति नेति पृथक् पृथक्१२८॥
वयं स्थास्यामहे यावदागमिष्यसि निश्चयात् । यत्पापं ब्रह्महत्यायां यत्पापं मद्यपानतः ॥१२९॥
तेन पापेन लिम्पामो यदि गच्छामहे वयम् । यत्पापं हेमचौर्येण गुरुदारागमाच्च यत् ॥१३०॥
तेन पापेन लिंपामो त्वामपृष्ट्वा वनेचर । चेद्व्रजामो वयं सर्वे इतस्ते पृष्ठतो बहिः ॥१३१॥
संसर्गजनितं पापं ब्रह्मस्वहरणाच्च यत् । तेन पापेन लिंपामो यदि गच्छामहे वयम् ॥१३२॥
एवं तच्छपथैर्नानाविधैः प्रत्ययमागतः । तथेत्युक्त्वा गृहं गत्वा मुनिभिर्यदुदीरितम् ॥१३३॥
अपृच्छं पुत्रदारादींस्तैरुक्तोऽहं रघूत्तम । पातं तवैव तत्सर्वं वयं तु फलभागिनः ॥१३४॥
तच्छ्रुत्वा जातनिर्वेदो विचार्य पुनरागतः । मुनयो यत्र तिष्ठंति करुणापूर्णमानसाः ॥१३५॥
मुनीनां दर्शनादेव शुद्धांतःकरणोऽभवम् । धनुरादि परित्यज्य दंडवत्पतितोऽस्म्यहम् ॥१३६॥

निभाया । व्याधेका जीवन बितानेके पश्चात् मैं पन्नगीकी योनिसे कृणुका पुत्र होकर जन्मा । मैं उस समय किरातों ही में बढ़ा और उन्हींके साथ रहने लगा । केवल जन्म मेरा ब्राह्मणके वीर्यसे हुआ था । किन्तु कर्म मेरा सर्वथा शूद्रोचित था ॥ ११७-१२१ ॥ एक शूद्रासे मेरा विवाह हुआ और उससे कई पुत्र उत्पन्न हुए । कुछ दिनों बाद मैं चोरोंसे जा मिला और धनुष-बाण धारण करके संसारी जीवोंके लिए यमराज सदृश भयानक चोर हो गया । एक बार मैंने एक विकराल जङ्गलमें सप्त ऋषियोंको देखा ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ जलती हुई अग्नि तथा सूर्यके समान उनका प्रकाश था । उन्हें देखते ही उनके कपड़े-लत्ते छीननेके लिए मैं जोरोंसे दौड़ पड़ा और "ठहरो-ठहरो" कहकर चिल्लाने लगा । तब ऋषियोंने कहा—अरे द्विजाधम ! क्यों दौड़ा आ रहा है ? ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ मैंने उत्तर दिया कि आपसे कुछ लेनेके लिये । क्योंकि मेरे परिवारसे सब लोग भूखे बैठे हैं । उन्हींका पालन-पोषण करनेके लिए मैं वन-वन घूम रहा हूँ । तब सप्तर्षियोंने हमसे कहा—अपने कुटुम्बियोंसे जाकर पूछो कि मैं जो नित्य यह पापकी कमाई कर रहा हूँ । तुम लोग अलग-अलग बतलाओ कि उस पापका फल भी भोगोगे या नहीं ? ॥ १२६-१२८ ॥ यह विश्वास रक्खो कि जबतक तुम लौटकर नहीं आओगे, तब तक मैं यहाँ ही रहूँगा । जो पाप ब्रह्महत्या करनेमें और जो पाप मद्य पीनेमें लगते हैं, हमलोग उन्हीं पापोंके भागी हों, जो बिना तुम्हारे आये यहाँसे जायँ । जो पाप सोना चुराने या गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेमें होता है, हमलोग उन पापोंके भागी हों, यदि तुमसे बिना पूछे यहाँसे जायँ ॥ १२९-१३१ ॥ संसर्गजनित अथवा ब्राह्मणका धन हड़प लेनेसे जो पातक लगता हो, हम सब उस पापके भागी हों, यदि यहाँसे पीठ पीछे हटें ॥ १३२ ॥ इस तरह उनके विविध प्रकारकी कसमें खानेपर मुझे विश्वास हुआ और अपने घर गया । वहाँ जैसा उन ऋषियोंने कहा था, उसी तरह घरके लोगोंको इकट्ठा करके मैंने पुत्र-स्त्री आदिसे पूछा । उन्होंने उत्तर दिया कि तुम जो पाप कर रहे हो, उससे हमें कोई मतलब नहीं । हम तो केवल फल चाहते हैं ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ उनकी बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं लौटकर फिर वहीं आया, जहाँ दयासे परिपूर्ण हृदयवाले वे सप्तर्षि बैठे मेरा रास्ता देख रहे थे ॥ १३५ ॥ उन मुनियोंके दर्शन ही से मेरा हृदय पवित्र हो गया । तुरन्त धनुष-बाण आदि शस्त्रास्त्र फेंककर मैं उनके चरणोंमें दण्डवत् लोट गया ॥ १३६ ॥

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रक्षोघ्नं मां मुनिश्रेष्ठाः पतितं नरकार्णवे । इत्यग्रे पतितं दृष्ट्वा मामूचुर्मुनिसत्तमाः ॥१३७॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते सफलः सत्समागमः । उपदेक्ष्यामहे तुभ्यं किंचित्तेनैव मोक्ष्यसे ॥१३८॥
परस्परं समालोक्य दुर्वृत्तोऽयं द्विजाधमः । उपदेश्य एव सद्वृत्तस्तथापि शरणं गतः ॥१३९॥
रक्षणीयः प्रयत्नेन मोक्षमार्गोपदेशतः । इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम् ॥१४०॥
मुनयो मामुपदिदिशुर्मत्कृपापूर्णमानसाः । एकाग्रमनसाऽत्रैव मरेति जप सर्वदा ॥१४१॥
आगच्छामः पुनर्यावत्तावदुक्तं सदा जप । इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे मुनयो दिव्यदर्शनाः ॥१४२॥
अहं यथोपदिष्टस्तैस्तथाऽकरवमंजसा । जपन्नेकाग्रमनसा बाह्यं विस्मृतवानहम् ॥१४३॥
साक्ष्यर्थं तपसस्तत्र दंडोऽग्रे स्थापितो मया । एवं बहुतिथे काले गते निश्चलरूपिणः ॥१४४॥
सर्वसङ्गविहीनस्य वल्मीकोऽभून्ममोपरि । दण्डोऽग्रे स नगो रम्यो बभूव मत्तपोबलात् ॥१४५॥
ततो युगसहस्रांते ऋषयः पुनरागमन् । मामूचुर्निर्गमस्वेति तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थितः ॥१४६॥
वल्मीकान्निर्गतश्चाहं नीहारादिव भास्करः । मामप्याहुर्मुनिगणा वाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वरः ॥१४७॥
वल्मीकात्संभवो यस्माद्द्वितीयं जन्म तेऽभवत् । इत्युक्त्वा ते ययुर्दिव्यां गतिं रघुकुलोत्तम ॥१४८॥
अहं ते रामनाम्नश्च प्रभावादीदृशोऽभवम् । एकदा शम्भुवचसाऽयं विधिः श्रुतवांस्तव ॥१४९॥
चरितं वेदवाक्यैश्च कैलासे परमे शुभे । अनेन विधिना तच्च कथितं नारदाय हि ॥१५०॥
नारदः कथयामास वेदवाक्यैर्ममात्र तत् । ततः क्रौंचं हतं दृष्ट्वा व्याधेन तमसातटे ॥१५१॥
शोचन्तीं सांत्वयन्क्रौंचीं ममास्यान्निर्गतस्तदा । द्वात्रिंशदक्षरैः प्रोक्तः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥१५२॥

और कहने लगा–हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं नरकके महासमुद्रमें गिर गया हूँ, मेरी रक्षा करिए ॥ १३७ ॥ इस तरह मुझे आगे पड़ा देखकर उन्होंने कहा–"उठो ! उठो !! आज हम लोगोंका समागम तुम्हारे लिये बड़ा ही कल्याणकारी हुआ । हम तुम्हें कोई ऐसा उपदेश देंगे, जिससे तुम सब पापोंसे छूट जाओगे ।" इसके बाद उन लोगोंने परस्पर मंत्रणा करके कहा—नियम तो यह है कि सदाचारी मनुष्यको ही उपदेश देना चाहिये । यह ब्राह्मणाधम एक असाधारण दुराचारी है । फिर भी हमलोगोंकी शरण आया है । इसलिये इसे कोई उपदेश देकर इसकी रक्षा करनी चाहिये । इस प्रकार निश्चय करके हे राम ! उन्होंने आपके उलटे अक्षरोंके नाम (मरा) का उपदेश दिया और हमसे कहा कि तुम एकाग्र मनसे 'मरा' नामका जप करते रहो । जब तक हमलोग उधरसे लौटकर न आयें, तब तक तुम बराबर इस नामका जप करते रहना । ऐसा कहकर वे दिव्यदृष्टि ऋषिगण वहाँसे चले गये ॥ १३८–१४२ ॥ जैसा उन्होंने बतलाया था, ठीक उसी तरह मैं एकाग्र मनसे जप करने लगा । मेरा मन उस जपमें इतना रम गया कि मुझे अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रही ॥ १४३ ॥ साक्षीके लिए मैंने अपने सामने एक दण्ड गाड़ दिया था । इस तरह निश्चल भावसे भजन करते-करते बहुत दिन बीत गये और वल्मीकों (दीमकों) ने मेरे शरीरपर मिट्टीका ढेर लगा दिया । मेरे तपोबलसे वह सामनेका गड़ा हुआ दण्ड एक सुन्दर वृक्ष बन गया ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ एक हजार युग बीतनेके बाद वे सप्तऋषिगण फिर लौटे और मेरे बिमौटेके समीप खड़े होकर उन्होंने पुकारा और कहा कि "निकलो" । उसे सुनकर मैं तुरन्त उठ खड़ा हुआ । जिस समय बिमौटेके भीतरसे मैं निकला, उस समय मेरी शोभा वैसी ही थी, जैसी कि कुहरेके भीतरसे निकले हुए सूर्यनारायणकी होती है । तब मुझसे मुनियोंने कहा कि वल्मीक (बिमौटे) से तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है । इसलिये तुम मुनीश्वर वाल्मीकि हो गये हो ॥ १४६–१४८ ॥ इतना कहकर वे ऋषि दिव्य (आकाश) मार्गसे चले गये । आपके रामनामके प्रभावसे मैं ऐसा ऋषि हो गया । एक वार श्रीशिवजीके मुखसे इन ब्रह्माजीने वेदसे मथकर निकाले हुए आपके चरित्रको सुना था ॥ १४९ ॥ तब इन्हीं (ब्रह्मा) ने उसे अपने बेटे नारदको बताया और उन्होंने वह सारा चरित्र हमें सुनाया । कुछ समय बाद एक व्याधे द्वारा मारे गये क्रौंचके दुःखसे दुःखिता क्रौंचीको देखकर मुझे जो शोक हुआ, वही शोक बत्तीस अक्षरोंवाले श्लोकके रूपमें मेरे मुखसे निकल पड़ा (श्लोक यह है–मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ततोऽपि विधिनाऽनेन चरितं ते प्रवर्णितम् । समागत्य तु संक्षेपादर्पिता मे वरा अपि ॥१५३॥
ततोऽस्य ब्रह्मणो वाक्यात्कृतवांश्चरितं तव । आनन्ददायकं रम्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥१५४॥
एवं त्वया यथा पृष्टं तथा सर्वं निवेदितम् । एवं वाल्मीकिवाक्यैश्च सर्वं जानन्नपि प्रभुः ॥१५५॥
पृष्ट्वा श्रोतुं जनान्सर्वान् श्रावयामास राघवः । एतस्मिन्नन्तरे रामं वाक्पतिः प्राह सादरम् ॥१५६॥
राम किं चरितं गेयं तवानन्दस्वरूपिणः । यस्य नामाद्यवर्णैश्च शब्दमात्रोऽत्र गीयते ॥१५७॥
लौकिका वैदिका वापि अकाराद्यास्तु षोडश । स्वरास्तथैव वर्णाश्च चतुस्त्रिंशच्छुभावहाः ॥१५८॥
ककाराद्याः क्षकारांता मन्त्ररूपाः शुभावहाः । एवं वर्णाश्च पञ्चाशद्ये कीर्त्यंते नरैर्भुवि ॥१५९॥
ते त्व नामाद्यवर्णाश्च सर्वे ज्ञेया रघूत्तम । तव नामाद्यवर्णैश्च व्याप्तं सर्वं चराचरम् ॥१६०॥
चराचराणां सर्वेषां यानि नामानि तानि ते । तेषु वर्णपरत्वेन नामान्यद्य वदामि ते ॥१६१॥

संक्षेपाच्चैव पंचाशत्तानि श्रृण्वन्तु सज्जनाः ।
ओमनन्ता १ नन्दमय २ श्चेष्टापूर्तफलप्रदः ३ ॥१६२॥
ईश्वरश्च ४ तथोत्कृष्ट ५ श्चोर्ध्वरेता ६ ऋतंभरः ७ ।
ऋयुक्तश्च ८ लृशश्चैव ९ लॄपक १० श्चक ११ एव च ॥१६३॥
ऐश्वर्यद १२ श्चोजदश्च १३ तथैवौदार्यचंचुरः १४ ।
अंतरात्मा १५ चार्द्धगर्भ १६ स्तथैव करुणाकरः १७ ॥१६४॥
खड्गी च १८ गतिदश्चैव १९ घनश्याम २० स्तथैव च ।
ङणन २१ श्चमिताशेषदुष्कृतश्च २२ तथैव हि ॥१६५॥
छत्री २३ जगन्मय २४ श्चैव झषरूपी २५ ञटेश्वरः २६ ।
टणत्कारिधनु २७ ष्ठानबन्धो २८ डमरुसत्करः २९ ॥१६६॥
ढुणुल्लुनितपापश्च ३० णकर्णश्च ३१ तथैव हि ।
तपोरूप ३२ स्थव ३३ श्चैव दक्षो ३४ धन्वी ३५ तथैव च ॥१६७॥

शाश्वतीः समाः ॥ यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥) ॥ १५०–१५२ ॥ इसके अनन्तर इन ब्रह्माजीने आकर मुझे संक्षेपरूपसे आपका चरित्र सुनाया और वरदान भी दिया । तब इन्हींके कहनेसे मैंने सौ करोड़ श्लोकोंमें आपका चरित्र रचा ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ आपने जैसे पूछा, वह सब वृत्तान्त मैंने कह सुनाया । यद्यपि रामचन्द्रजी इन सब बातोंको जानते थे, किन्तु संसारके लोगोंको सुनानेके लिये उन्होंने वाल्मीकिजीसे इस प्रकारके प्रश्न किये थे । इसके बाद ब्रह्माजी बोले—॥ १५५ ॥ १५६ ॥ हे राम ! आप जैसे आनन्दस्वरूप-के चरित्रका कोई कहाँ तक गान करेगा । जिसके नामके पहसे ही अक्षरमें संसारके सारे शब्द आ जाते हैं । लौकिक तथा वैदिक अकारादि सोलह स्वर और ककारसे लेकर क्षकार पर्यन्त चौंतिस वर्ण ये पचास अक्षर, जिन्हें कि संसारी लोग जानते हैं । वे सब आपके नामके पहले ही अक्षरमें आ जाते हैं, आपके नामके पहले अक्षरसे सारा विश्व व्याप्त है ॥ १५७–१६० ॥ इस चराचर संसारमें जितने नाम लिये जाते हैं । उन्हें वर्णक्रमसे मैं आपको वतला रहा हूँ । संक्षेपमें वे पचास नाम हैं । उनको सज्जन लोग सुनते जायँ—अकारसे 'अनन्त' । आकारसे 'आनन्दमय' । इकारसे 'इष्टापूर्तफलप्रद' । ईकारसे 'ईश्वर' । उकारसे 'उत्कृष्ट' । ऊकारसे 'ऊर्ध्वरेता' । ऋकारसे 'ऋतंभर' । ॠकारसे 'ऋणमुक्त' । लृसे 'लृश' । लॄसे 'लॄपक' । एसे 'एक' । ऐसे 'ऐश्वर्यद' । ओसे 'ओजद' । औसे 'औदार्यचंचुर' । अंसे 'अंतरात्मा' । अःसे 'अर्द्धगर्भ' तथा कसे 'करुणाकर' ॥ १६१–१६४ ॥ खसे 'खड्गी' । गसे 'गतिद' । घसे 'घनश्याम' । ङसे 'ङणन' । चसे 'चमिताशेषदुष्कृत' । छसे 'छत्री' । जसे 'जगन्मय' । झसे 'झषरूपी' । ञसे 'ञटेश्वर' । टसे 'टणत्कारिधनु' । ठसे 'ठानबन्ध' । डसे 'डमरुसत्कर' ॥ १६५ ॥ ॥ १६६ ॥ ढसे 'ढणुल्लुनितपाप' । णसे 'णकर्ण' । तसे 'तपोरूप' । थसे 'थव' । दसे 'दत्त' । धसे 'धन्वी' ॥१६७॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नष्टोद्धरणधीरश्च ३६ तथैव परमेश्वरः ३७ ।
तथा फलप्रदश्चैव ३८ तथा बलिवरप्रदः ३९ ॥१६८॥
भगवान् ४० मधुघाती च ४१ तथा यज्ञफलप्रदः ४२ ।
रघुनाथश्च ४३ लक्ष्मीशो ४४ वशिष्ठश्च ४५ तथैव हि ॥१६९॥
शरण्यः ४६ षड्गुणैश्वर्यसंपन्नश्च ४७ तथैव हि ।
सर्वेश्वरो ४८ हयग्रीवः ४९ क्षमी ५० नामानि ते त्विति ॥१७०॥

पंचाशद्वर्णचिह्नानि चैभिर्वर्णैर्जगत्त्रयम् । व्याप्तं श्रीराम सर्वत्र घवर्णेन घटः स्मृतः ॥१७१॥
पवर्णेन पटो ज्ञेयस्त्वेवं वर्णात्मकं जगत् । एकैकस्य च वर्णस्य भेदैर्नामानि ते पृथक् ॥१७२॥
नाहं समर्थो व्याख्यातुं पञ्चास्योऽपि न च क्षमः । यत्र शेषः सहस्रास्यो वर्णने कुंठितस्त्वभूत् ॥१७३॥
एवं ते तद्दिमा राम कोऽत्र वर्णयितुं क्षमः । तथापि धन्यो वाल्मीकिर्येन ते चरितं कृतम् ॥१७४॥

शतकोटिमितं राम तवैव कृपया प्रभो ।

श्रीरामदास उवाच

इत्युक्त्वा स गुरुर्देवै राघवेणापि पूजितः ॥१७५॥

पृष्ट्वा रामं ययौ स्वर्गं सत्यलोकं ययौ विधिः । वाल्मीकिश्चापि प्रययौ चित्रकूटं निजाश्रमम् ॥१७६॥
तदारभ्य जनाः सर्वे चक्रुर्हास्यं मुदैव ते । मांगल्यकर्माण्युत्साहकर्माणि जगतीतले ॥१७७॥
चक्रुः सर्वे पूर्ववच्च नातिहास्यं प्रचक्रिरे । स्त्रीभिर्नराः सुसन्तुष्टाः क्रीडाहास्यादि चक्रिरे ॥१७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे वाल्मीकिजन्मतत्तन्मंत्रवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

नसे 'नष्टोद्धरणधीर' । पसे 'परमेश्वर' । फसे 'फलप्रद' । बसे बलिवरप्रद' । भसे 'भगवान्' । मसे 'मधुघाती' । यसे 'यज्ञफलप्रद' । रसे 'रघुनाथ' । लसे 'लक्ष्मीश' । वसे 'वशिष्ठ' । शसे 'शरण्य' । षसे 'षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न' । ससे 'सर्वेश्वर' । हसे 'हयग्रीव' । क्षसे 'क्षमी' ॥ १६८–१७० ॥ ये ही पचास नाम पचासों अक्षरोंके आधार हैं और इन्हींसे आकाश, पाताल, मृत्यु ये तीनों लोक व्याप्त हो रहे हैं । घवर्णसे घटका बोध होता है और पवर्णसे पट जाना जाता है । घट और पट इन दोनों शब्दोंके ही अन्तर्गत समस्त जगत् है । एक-एक वर्णके भेदसे सम्पूर्ण नामोंका वर्णन करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ मैं ही नहीं, यदि पंचास्य अर्थात् शिवजीको बतलाना पड़े तो वे भी असमर्थ ही रहेंगे । जिसकी महिमाका वर्णन करनेमें एक सहस्र मुखवाले शेषजी भी असमर्थ हो गये, उसका वर्णन कौन कर सकेगा । फिर भी वाल्मीकिजो धन्य हैं, जिन्होंने सौ करोड़ श्लोकोंसे आपके चरित्रका वर्णन किया है ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ हे प्रभो ! जो कुछ वाल्मीकिजीने किया है, सो सब आपकी कृपा है । श्रीरामदास कहते हैं कि इतना कहकर समस्त देवताओंके साथ देवगुरु बृहस्पति स्वर्गलोकको चले गये और ब्रह्माजी भी रामसे पूछकर अपने सत्यलोकको लौट गये । वाल्मीकिजी अपने आश्रम चित्रकूटको चल दिये ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ उसी समय सब लोग आनन्दके साथ हँसने-खेलने और संसारमें पहलेकी तरह मंगलमय तथा उत्साहमय सारे कार्य करने लगे । तबसे लोग प्रसन्नताके साथ परस्पर हँसी-दिल्लगी करने लगे । फिर भी अतिहास्य कोई नहीं करता था ॥ १७७ ॥ १७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पञ्चदशः सर्गः

(राम और रामराज्यकी विशेषतायें)

श्रीरामदास उवाच

रामराज्ये सदानन्दः सर्वानासीज्जनान्भुवि । नासीत्कुत्रापि कलहश्चौर्यं निंदाभयं तदा ॥ १ ॥
राज्यमासीदसापत्नं समृद्धबलवाहनम् । ऋषिभिर्हृष्टपुष्टैश्च रम्यं हाटकभूषणैः ॥ २ ॥
संजुष्टमिष्टापूर्तानां धर्माणां नित्यकर्तृभिः । सदा संपन्नशस्यं च सुचिरं क्षेत्रसंकुलम् ॥ ३ ॥
सुदेशं सुप्रजं सुस्थं सुतृणं बहुगोधनम् । देवतायतनानां च राजिभिः परिराजितम् ॥ ४ ॥
सुयूपा यत्र वै ग्रामाः सुतवित्तर्द्धिराजिताः । सुपुष्पकृत्रिमोद्यानाः सुसदाफलपादपाः ॥ ५ ॥
सुपद्मानीककासारा राजन्ते यत्र भूमयः । सदम्भा निम्नगाराजिर्यत्र सन्ति न मानवाः ॥ ६ ॥
कुलान्येव कुलीनानि न चान्यायधनानि च । विभ्रमो यत्र नारीषु न विद्वत्सु च कर्हिचित् ॥ ७ ॥
नद्यः कुटिलगामिन्यो न यत्र विषये प्रजाः । तमोयुक्ताः क्षपा यत्र बहुलेषु न मानवाः ॥ ८ ॥
रजोयुजः स्त्रियो यत्र न धर्मबहुला नराः । धनैरनन्धो यत्रास्ति जनो नैव च भोजनात् ॥ ९ ॥
अनयस्यास्पदं यत्र न च वै राजपूरुषः । दण्डः परशुकुद्दालवालव्यजनराजिषु ॥१०॥
आतपत्रेषु नान्यत्र क्वचित् क्रोधोऽपराधजः । अन्यत्राक्षिकवृन्देभ्यः क्वचिन्न परिदेवनम् ॥११॥
आक्षिका एव दृश्यन्ते यत्र पाशैकपाणयः । जाड्यवार्ता जलेष्वेव स्त्रीमध्या एव दुर्बलाः ॥१२॥

श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! रामचन्द्रजीके राज्यमें संसारके सब लोगोंको सदा आनन्द ही आनन्द रहता था। उस समय न कहीं चोरी होती, न लड़ाई-झगड़ा होता, न कोई किसीकी निन्दा करता और न कोई किसीसे डरता था ॥ १ ॥ राज्य भी उस समय शत्रुओंसे रहित और विविध प्रकारके वाहन तथा सेनासे परिपूर्ण था। रामराज्यमें ऋषिगण हृष्ट-पुष्ट थे और राज्यके रहनेवाले लोग सोने-चाँदीके गहनोंसे लदे रहते थे। इष्ट-आपूर्त आदि धार्मिक कृत्य होते रहते थे और सारे खेत धान्यसे परिपूर्ण रहा करते थे ॥ २ ॥ ३ ॥ भाव यह है कि उस समय समस्त देश सुखी था, प्रजा प्रसन्न थी और रहन-सहन उत्तम था। गौओंके चरनेको सुन्दर घास उपजती थी। गोधनकी अधिकता थी। सारा देश देवालयोंसे भरा पड़ा था ॥ ४ ॥ उस राज्यके सब गाँवोंमें यज्ञके सुन्दर यूप गड़े हुए थे। प्रजाके सब लोग धन-धान्यसे परिपूर्ण रहते थे और अच्छे-अच्छे फूलों तथा सदा फल देनेवाले कृत्रिम बगीचोंसे सारा राज्य भरा रहता था ॥ ५ ॥ सदा बहनेवाली कितनी ही नदियाँ राज्यकी भूमिपर बह रही थीं। ऐसे ही कुछ स्थान बचे थे, जहाँ कि मनुष्यों-का निवास नहीं था। बाकी सारी पृथ्वी मनुष्योंसे भरी थी ॥ ६ ॥ उस समयके सभी मनुष्य कुलीन थे। अन्याय नहीं होता था और धनकी कमी नहीं रहती थी। उस समय स्त्रियोंमें विभ्रम (लज्जा) दीखता था, किन्तु पण्डितोंमें विभ्रम (बड़ी भूल) नहीं रहता था ॥ ७ ॥ उस समय देशमें कुटिल (टेंढ़ी-वेंड़ी) बहनेवाली नदियाँ थी, किन्तु प्रजा कुटिलता (दुष्टता) से सर्वथा बची हुई थी। कृष्णपक्षकी रात्रिमें केवल तम (अंधकार) था, मनुष्योंमें तम (तामस गुण) नहीं दीखता था यानी सारे मनुष्य उस समय सात्त्विक थे ॥ ८ ॥ स्त्रियाँ रजोयुक्त (रजस्वला) होती थीं, पुरुष रजोयुक्त (राजस गुणयुक्त) नहीं थे। उस समय राज्यके लोग पैसेसे (अन्ध) अन्धे नहीं थे, किन्तु अन्ध (अन्न) से कोई अनन्ध नहीं था। अर्थात् सब लोग खाने-पीनेमें सुखी दीखते थे। उस समय राजपुरुषों (अधिकारियों) में अन्याय नहीं दीखता था। दण्ड केवल कुल्हाड़ी, कुदाल तथा पंखों ही में दीखता था। प्रजापर राजाको दण्डप्रयोगकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी ॥ ९ ॥ १० ॥ सन्ताप (घाम) केवल छतरियोंपर रहता था। रामराज्यकी प्रजामें सन्ताप (मानसिक दुःख) नहीं रहता था। केवल रथ हाँकनेवाले सारथियोंके हाथमें पाश (घोड़े या बैलकी रास) रहता था, किन्तु प्रजाके किसी मनुष्यको पाश (फाँसीका दण्ड) मिलता नहीं था। जड़ता (ठंढक) की बात केवल जलमें रहती थी।

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कठोरहृदया यत्र सीमन्तिन्यो न मानवाः । औषधेष्वेव यत्रास्ति कुष्ठयोगो न मानवे ॥१३॥
वेधोऽभ्यंतःसु रत्नेषु शूलं मूर्तिकरेषु वै । कंपः सात्त्विकभावोत्थो न भयात्क्वापि कस्यचित् १४॥
संज्वरः कामजो यत्र दारिद्र्यं कलुषस्य च । दुर्लभत्वं पातकस्य सुकृतं न च वस्तुनः ॥१५॥
इभा एव प्रमत्ता वै युद्धं वीच्योर्जलाशये । दानहानिर्गजेष्वेव द्रुमेष्वेव हि कण्टकाः ॥१६॥
जनेष्वेव विहारा वै न कस्यचिदुरःस्थली । बाणेषु गुणविश्लेषो बन्धोक्तिः पुस्तके दृढा ॥१७॥
दण्डत्यागः सदैवास्ति यत्र पाशुपते जने । दण्डवार्ता सदा यत्र कृतसंन्यासकर्मणाम् ॥१८॥
मार्गणाश्चापकेष्वेव भिक्षुका ब्रह्मचारिणः । यत्र क्षपणका एव दृश्यन्ते मलधारिणः ॥१९॥
प्रायो मधुव्रता एव यत्र चंचलवृत्तयः । इत्यादिगुणवद्देशे रामो राज्यं शशास सः ॥२०॥
धर्मेण राजा धर्मज्ञः सीतारामः प्रतापवान् । चकार राज्यं निर्द्वन्द्वमयोध्यायां सुनिश्चलम् ॥२१॥
विधाय राजधानीं तां विस्तृतां परिखान्विताम् । एधांचक्रे महाबुद्धिः प्रजा धर्मेण पालयन् ॥२२॥
ततापं सूर्य इव स दुर्हृदां हृदि नेत्रयोः । सोमवत्सुहृदामासीन्मानसेषु स्वकेष्वपि ॥२३॥
अखण्डमाखण्डलवत् कोदण्डं कलयन्रणे । पलायमानैरालोकि शत्रुसैन्यवलाहकैः ॥२४॥
स धर्मराजवद्राजा धर्माधर्मविवेचकः । अदण्ड्येऽदण्डयन्नामो दण्ड्यांश्च परिदण्डयन् ॥२५॥
पाशीव पाशयांचक्रे वैरिचक्रं विदूरगः । सोऽभूत्पुण्यजनाधीशो रिपुराक्षसवर्द्धनः ॥२६॥
जगत्प्राणसमानश्च जगत्त्राणनतत्परः । राजराजः स एवाभूत्सर्वेषां धनदः सताम् ॥२७॥

किसी मनुष्यमें जड़ता (मूर्खता) नहीं थी । केवल स्त्रियोंकी कमरमें दुर्बलता रहती थी, मनुष्योंके हृदयमें नहीं ॥११॥१२॥ कठोरता स्त्रियोंके स्तनमें रहती थी, पुरुषोंके हृदयमें नहीं । केवल औषधोंमें कुष्ठ (कूठ औषधिविशेष) का योग दीखता था, किसी मनुष्यमें कुष्ठरोग नहीं था ॥ १३ ॥ वेध (छिद्र) केवल रत्नोंमें रहता था । शूल (छीनी) केवल मूर्ति बनानेवाले कारीगरोंके हाथमें रहता था । केवल सात्त्विक भावके उदय होनेपर लोगोंको कम्प होता था–भयसे नहीं । दुर्लभता पातककी थी और सुकृतसे कोई वस्तु अलभ्य नहीं थी ॥ १४ ॥ १५ ॥ मतवाले हाथी होते थे, मनुष्य नहीं । युद्ध जलकी लहरोंमें ही देखा जाता था । दानहानि (मदके प्रवाहका रुक जाना) केवल हाथियोंमें थी । वृक्षोंमें ही कण्टक (काँटे) रहते थे ॥ १६ ॥ मनुष्योंमें विहार होता था, किन्तु किसीकी उरस्थली (छाती) ऐसी नहीं देखी गयी, जा विहार (हारसे रहित) हो । केवल बाणोंमें गुणविश्लेष (प्रत्यञ्चाका वियोग) था, दृढ़बन्धोक्ति (कठिन बन्धनकी बात) केवल पुस्तकोंके लिए थी ॥ १७ ॥ शिवभक्तोंके लिए केवल दण्डत्याग किया जाता था । यानी उनसे दण्ड नहीं लिया जाता था । केवल संन्यासियोंमें दण्डवार्ता (दण्डग्रहण-सम्बन्धी बातचीत) होती थी ॥ १८ ॥ मार्गण (बाण) केवल धनुषपर रहते थे, प्रजामें कोई मार्गण (भिखारी) नहीं था । केवल ब्रह्मचारी भिक्षुक थे । केवल क्षपणक (संन्यासी) लोग मल (चीवर वस्त्र) धारी थे ॥ १९ ॥ प्रायः भौंरोंमें चंचलता दीखती थी । इस प्रकारके गुणवान् देशमें रामचन्द्रजी राज्य करते थे ॥ २० ॥ धर्मका तत्त्व जाननेवाले प्रतापशाली रामचन्द्रजीने बहुत दिनों तक निर्द्वन्द्वभावसे राज्य किया । उन्होंने अनेक प्रकारकी खाइयोंसे सुसज्जित करके अयोध्याको अपनी राजधानी बनायी और धर्मपूर्वक प्रजापालन करते हुए प्रजाकी भलीभाँति उन्नति की ॥ २१ ॥ २२ ॥ वे शत्रुओंके हृदयमें सदा सूर्यकी भाँति तपते थे और मित्रोंके हृदयमें चन्द्रमाकी तरह ठंढक पहुँचाते थे । इन्द्रके समान समरांगणमें अपना धनुष चमकाते हुए शत्रुसेनारूपी मेघोंको भगा देते थे । ऐसा बराबर देखा गया है । महाराज रामचन्द्रजी धर्मराजकी तरह भलीभाँति धर्म-अधर्मकी विवेचना करके काम करते थे । जो दण्डके योग्य नहीं होता था, उसे दण्ड नहीं देते थे और जो दण्डके योग्य होता, उसे अवश्य दण्ड देते थे । शत्रुओंके समूहको यमराजकी तरह उन्होंने बाँध रक्खा था । रिपुरूपी राक्षसोंका भी उपकार करके रामचन्द्रजी संसारके सब महात्माओंसे ऊँचे पदपर पहुँच चुके थे ॥ २३–२६ ॥ जगत्की रक्षामें तत्पर रामचन्द्रजी जगत्के प्राण समान थे । अच्छे मनुष्योंको धनकी सहायता देकर वे स्वयं राजराज (कुबेर) हो रहे थे । शत्रुओंको भय दिखाकर रुद्र बन गये थे । यही कारण था कि जिससे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स एव रुद्रमूर्तिश्च प्रैक्षिष्ट रिपुभीषणे । विश्वेदेवास्ततस्तं तु स्तुवन्ति च भजन्ति च ॥२८॥
असाध्यः स हि साध्यानां वसुभ्यो वसुनाधिकः। ग्रहाणां विग्रहधरो दस्रतोऽजस्ररूपधृक् ॥२९॥
मरुद्गणानगणयंस्तुषितांस्तोषयन् गुणैः । सर्वविद्याधरो यस्तु सर्वविद्याधरेष्वपि ॥३०॥
अगर्वानिव गन्धर्वान्यश्चक्रे निजगीतिभिः । ररक्षुर्यक्षरक्षांसि तद्दुर्गं स्वर्गसोदरम् ॥३१॥
नागा नागांस्तिरश्चक्रुस्तस्य राज्ये बलीयसः । दनुजा मनुजाकारं कृत्वा तं तु सिषेविरे ॥३२॥
जाता गुह्यचरा यस्य गुह्यकाः परितो नृषु । संसेविष्यामहे राजन् सुरास्त्वां स्वस्ववैभवैः ॥३३॥
वयं ततस्त्वद्विषये सुरावासोऽपि दुर्लभः । इत्युक्त्वा रामचन्द्रं ते मघवाद्याः सिषेविरे ॥३४॥
अशिक्षयत्क्षितिपतेरिह यस्य तुरङ्गमान् । आशुगश्चाशुगामित्वं पावमाने पथि स्थितः ॥३५॥
अगजान्यस्य तु गजान्नगवर्ष्मसु वर्ष्मणः । अजस्रदानिनो दृष्ट्वाऽभवन्नन्येऽपि दानिनः ॥३६॥
सदोऽजिरे च बोद्धारो योद्धारश्च रणाजिरे । न शास्त्रैर्विजितः कश्चिन्न शस्त्रैः केनचित्क्वचित् ॥३७॥
न नेत्रविषये जाता विषये यस्य भूभृतः । सदा नष्टपदा द्वेष्यास्तथा नष्टापदः प्रजाः ॥३८॥
कलवानेक एवास्ति त्रिदिवेऽपि दिवौकसाम् । तस्य क्षोणीभृतः क्षोण्यां जनाः सर्वे कलालयाः ॥३९॥
एक एव हि कामोऽस्ति स्वर्गे सोऽप्यङ्गवर्जितः। साङ्गोपाङ्गाश्च सर्वेषां सर्वे कामा हि तद्भुवि ॥४०॥
तस्योपवर्तनेऽप्येको न श्रुतो गोत्रभित्क्वचित् । स्वर्गे स्वर्गसदामीशो गोत्रभित्परिकीर्तितः ॥४१॥
क्षयी च तस्य विषये कोऽप्याकर्णि न केनचित् । त्रिविष्टपे क्षपानाथः पक्षे पक्षे क्षयिष्यते ।४२॥
नाके नवग्रहाः संति देशास्तस्यानवग्रहाः । हिरण्यगर्भः स्वर्लोकेष्वेक एव प्रकाशते ॥४३॥
हिरण्यगर्भाः सर्वेषां तत्पौराणामिहालयाः । सप्ताश्व एकः स्वर्लोके नितरां भासतेंऽशुमान् ॥४४॥

सब विश्वेदेव उनकी स्तुति और भजन करते थे। वे साध्य (द्वादश देवताविशेष) के लिए भी असाध्य थे। वसु (धन) की अधिकतासे वे अष्टवसुओंसे भी श्रेष्ठ थे। नवग्रहोंके साक्षात् स्वरूप थे और अश्विनीकुमारके समान सदा सुन्दर रूप धारण किये रहते थे ॥ २७–२९ ॥ वे अपने असाधारण पराक्रमसे मरुद्गणोंसे भी श्रेष्ठ थे। कितने ही सद्गुणोंसे वे छत्तीस तुषितोंको प्रसन्न कर चुके थे। वे समस्त विद्याधरोंके शिरोमणि थे और अपने गीतके माधुर्यसे उन्होंने गन्धर्वोंका भी गर्व खर्व कर दिया था। संसारभरके यक्ष-राक्षस स्वर्गके समान कमनीय रामके किलेकी रक्षा करते थे॥ ३० ॥ ३१ ॥ स्वर्गलोकके हाथी रामके हस्तिसमूहसे पराजित हो गये थे। सारी दुनियाके दानव मनुष्यका वेष बना-बनाकर रामकी सेवा कर रहे थे ॥ ३२ ॥ उनके गुप्तचर राज्यके मनुष्योंमें घुसकर अपना मतलब सिद्ध करनेके लिए गुह्यकों (मणिभद्रादिकों) से भी बाजी मार चुके थे। इन्द्रादि देवता रामके समीप जाकर कहते थे—'राजन् ! हमारे पास जो कुछ वैभव है, वह सब लगाकर हम आपकी सेवा-शुश्रूषा करनेको प्रस्तुत हैं' ॥ ३३॥ ३४॥ इस संसारमें जिसके घोड़े वायु देवताको भी जल्दी चलना सिखाते थे, जिसके पर्वतके समान ऊँचे बड़े-बड़े हाथियोंकी अजस्रदानिता (सतत मदप्रवाह अथवा दानशीलता) देखकर संसारके कृपण मनुष्य भी दानी बन गये थे। जिसकी राजसभाके बुद्धिमान् पण्डित और सेनाके बड़े-बड़े योद्धा शास्त्र तथा शस्त्रसे कभी पराजित नहीं हुए थे॥ ३५–३७ ॥ उन रामके राज्यमें जैसे शत्रु कहीं नहीं दीखता था, वैसे ही प्रजामें कभी किसी प्रकारकी विपत्ति भी नहीं दिखायी देती थी ॥ ३८ ॥ देवताओंके स्वर्गं जैसे राज्यमें केवल एक कलावान् चन्द्रमा था, किन्तु रामके राज्यमें सब मनुष्य कलाके भण्डार थे। स्वर्गमें केवल एक कामदेव था, सो भी अनङ्ग (अर्थात् विना शरीरका)। किन्तु रामराज्यके सारे मनुष्य सांगोपांग कामदेव (जैसे सुन्दर) थे। रामके राज्यभरमें खोजनेपर भी कोई गोत्रभित् (जातिसे बहिष्कृत) मनुष्य नहीं मिल सकता था, किन्तु स्वर्गमें देवताओंके राजा स्वयं गोत्रभित् (इन्द्र) थे ॥ ३९–४१ ॥ राम-राज्यमें कोई क्षयी (क्षयरोगी) नहीं सुना गया, किन्तु स्वर्गमें चन्द्रमा पक्ष-पक्षमें क्षय होते रहते हैं ॥ ४२ ॥ स्वर्गमें नवग्रह रहते हैं, किन्तु रामका राज्य अनवग्रह (यानी आपसी

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सदंशुकाः प्रतिगृहं बह्वश्वास्तत्पुरौकसः । सदप्सरा यथा स्वर्भूस्तत्पुर्यपि सदप्सराः ॥४५॥
एकैव पद्मा वैकुण्ठे गीयते विष्णुवल्लभा । तत्पौराणां गृहेष्वासञ्छतपद्मा पृथक् पृथक् ॥४६॥
अनीतयश्चलद्धामा न राजपुरुषाः क्वचित् । गृहे गृहेऽत्र धनदा नाक एकोऽलकापतिः ॥४७॥
एवं रामो महान् श्रेष्ठः शौटीर्यगुणशोभनः । सौभाग्यशोभी रूपाढ्यः शौर्यौदार्यगुणान्वितः ॥४८॥
विजितानेकसमरः श्रीसमर्पितमार्गणः । सीतारंजितवामांग उग्रः परपुरंजयः ॥४९॥
अनेकगुणसंपूर्णः पूर्णचंद्रनिभद्युतिः । सततावभृथक्लिन्नमूर्धजः क्षितिपर्षभः ॥५०॥
प्रजापालनसपन्नः कोशप्रीणीतभूसुरः । पार्वतीकांतचरणयुगलध्यानतत्परः ॥५१॥
विश्वेश्वरकथालापपरिक्षिप्तदिनक्षपः । सीतासंक्षालितपदस्तत्क्रीडापरितोषितः ॥५२॥
शशास राज्यं धर्मेण बन्धुपुत्रसमन्वितः । रामे शासति साकेतपुर्यां राज्यं सुखेन वै ॥५३॥
हृष्टाः पुष्टाः प्रजाः सर्वाः फलवंतोऽभवन्नगाः । आसन्सदा सुकुसुमैर्विनम्राः सौख्यदा नृणाम् ॥५४॥
एकपत्नीव्रताः सर्वे पुमांसस्तस्य मण्डले । नारीषु काचिन्नैवासीदपतिव्रतधर्मिणी ॥५५॥
अनधीतो न विप्रोऽभून्न शूरो नैव बाहुजः । वैश्योऽनभिज्ञो नैवासीदर्थोपार्जनकर्मसु ॥५६॥
अनन्यवृत्तयः शूद्रा द्विजशुश्रूषणं प्रति । तस्य राष्ट्रे समभवन्सीतारामस्य भूपतेः ॥५७॥
अविप्लुतब्रह्मचर्यास्तद्राष्ट्रे ब्रह्मचारिणः । नित्यं गुरुकुलाधीना वेदग्रहणतत्पराः ॥५८॥

लड़ाई-झगड़ेसे रहित था । स्वर्गमें केवल एक हिरण्यगर्भ (विष्णुभगवान्) रहते हैं; किन्तु रामराज्यके प्रत्येक घर हिरण्यगर्भ थे अर्थात् उनमें सुवर्ण भरे हुए थे। स्वर्गमें केवल एक सप्ताश्व अंशुमान् (सूर्य) हैं, किन्तु रामके राज्यमें प्रत्येक व्यक्ति अंशुमान् (अच्छे कपड़े पहननेवाले) और सातको कौन कहे, कितने ही घोड़े बाँधनेवाले लोग विद्यमान थे। जिस तरह स्वर्गमें अच्छी-अच्छी अप्सराएँ हैं, उसी तरह रामके राज्यमें भी बहुत-सी अच्छी-अच्छी अप्सराएँ रहती थीं ॥ ४३-४५ ॥ ऐसा कहा जाता है कि स्वर्गमें केवल एक विष्णुकी प्रिया पद्मा (लक्ष्मी) हैं, किन्तु रामके राज्यमें सैकड़ोंसे भी अधिक पद्मपति (पद्मसंख्यक रुपये रखनेवाले) लोग थे। रामके राज्यमें कभी किसी प्रकारका अकाल नहीं पड़ा और ऐसे राजपुरुष नहीं थे, जो कान्तिविहीन रहे हों। स्वर्गमें केवल कुबेर धनद (लेन-देनके व्यवहारी) हैं, किन्तु रामके राजमें असंख्य धनद थे ॥ ४६ । ४७ ॥ इस तरह रामचन्द्र अनेक सद्गुणोंसे युक्त और सर्वश्रेष्ठ थे। रामचन्द्र सौभाग्य, रूप, शौर्य और औदार्य आदि गुणोंसे युक्त थे। अनेक युद्धोंमें उन्होंने विजय पायी थी और संसारकी दरिद्रताको उन्होंने लक्ष्मीके हाथों सौंप दिया था। उनके वामभागमें सीताजी बैठी रहती थीं। इस कारण उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। वे सबसे उग्र तथा शत्रुओंके नगरको विजय करनेमें सिद्धहस्त थे। अनेक गुणोंके एकत्रित होनेसे वे पूर्ण हो चुके थे और पूर्ण चन्द्रमाके समान उनकी कान्ति थी। सर्वदा अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान करनेसे उनके केश भींगे रहते थे और सब राजाओंमें श्रेष्ठ माने जा चुके थे ॥ ४८-५० ॥ प्रजाका पालन करनेमें वे पूर्णतया दत्तचित्त रहते थे और खजानेके धनसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न रखते थे। वे सदा शिवके ध्यानमें तत्पर रहते थे। वे सर्वदा शिवजीकी कथाएँ कहते-सुनते दिन-रात बिताते थे। सीता उनके पैर धोया करती थीं । उनके साथ विविध प्रकारकी क्रीड़ायें करनेसे राम प्रसन्न रहते थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उन्होंने भाइयों और पुत्रोंके साथ रहकर अच्छी तरह राज किया। रामके शासनकालमें प्रजा सुखी तथा हृष्ट-पुष्ट रहती थी और वृक्ष फल-फूलसे लदे रहनेके कारण झुके रहते और मनुष्योंको सुखी रखते थे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ उनके राजमें सब पुरुष एकपत्नीव्रती थे और स्त्रियोंमें भी कोई ऐसी नहीं थीं, जो अपने पातिव्रतधर्मका पालन न करती हो ॥ ५५ ॥ उस समय कोई ऐसा ब्राह्मण नहीं था, जो बिना पढ़ा हो और कोई क्षत्रिय भी ऐसा नहीं था, जो योद्धा न रहा हो। कोई ऐसा वैश्य नहीं था, जो धन कमानेकी कलासे अनभिज्ञ हो। राजा रामके शासनकालमें राज्य भरके शूद्र और किसी प्रकारकी वृत्ति न करके एकमात्र द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों) की सेवामें लगे रहते थे। उनके राज्यमें ब्रह्मचर्यकी रक्षा करते हुए

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अन्येऽनुलोमजन्मानः प्रतिलोमभवा अपि । स्वपारम्पर्यतो द्रष्टुं मनाग्वर्त्म न तत्यजुः ॥५९॥
अनपत्यो न तद्राष्ट्रे धनहीनस्तु कोऽपि न विरुद्धसेवी नो कश्चिदकालमृतिभाङ् च ॥६०॥
न शठा नैव वाचाटा वञ्चका नो न हिंसकाः । न पाखंडा नैव भंडा न रंडा नैव शौंडिकाः ॥६१॥
श्रुतिघोषो हि सर्वत्र शास्त्रवादः पदे पदे । सर्वत्र सुभगालापा मुदा मंगलगीतयः ॥६२॥
वीणावेणुप्रवादाश्च मृदंगमधुरस्वनाः । सोमपानं विनाऽन्यत्र पानगोष्ठी न कर्णगा ॥६३॥
मांसाशिनः पुरोडाश नैवान्यत्र कथंचन । न दुरोदरिणो यत्राधर्मिणो न च तस्कराः ॥६४॥
पुत्रस्य पित्रोः पदयोः पूजनं देवपूजनम् । उपवासो व्रतं तीर्थं देवताराधनं परम् ॥६५॥
नारीणां भर्तृपदयोः स्वर्चनं तद्वचःश्रुतिः । समर्चयति सततं निजमग्रजमादरात् ॥६६॥
समर्चयंति मुदिता भृत्याः स्वामिपदाम्बुजम् । हीनवर्णैरग्रवर्णो वर्ण्यते गुणगौरवैः ॥६७॥
वरिवस्यंति भूयोऽपि त्रिकाल भूमिदेवताः । सर्वत्र सर्वे विद्वांसः समर्चन्ते मनोरथैः ॥६८॥
विद्वद्भिश्च तपोनिष्ठास्तपोनिष्ठैर्जितेंद्रियाः । जितेंद्रियैर्ज्ञाननिष्ठा ज्ञानिभिः शिवलिंगिनः ॥६९॥
मंत्रपूतं महार्हं च विधियुक्तं सुसंस्कृतम् । वाडवानां मखाग्नौ च हूयतेऽहर्निशं हविः ॥७०॥
वापीकूपतडागानामारामाणां पदे पदे । शुचिभिर्द्रव्यसंभारैः कर्तारो यत्र भूरिशः ॥७१॥
तद्राष्ट्रे हृष्टपुष्टाश्च दृश्यन्ते सर्वजातयः । अनिन्द्यसेवासंपन्ना विना मृगयुसैनिकान् ॥७२॥
यस्य राज्ये पताकासु चंचला श्रीर्न राष्ट्रके । ऐरावतस्त्वेक एव शुभ्रः स्वर्गे गजो महान् ॥७३॥
चतुर्दन्तो रामराज्ये तद्वन्नागाः सहस्रशः । इन्दुसूर्यावुभावेव शोभेते गगनांगणे ॥७४॥
रामराज्येऽत्र नारीणां सीमंतस्था अनेकशः । वृषोऽस्त्येकः स कैलासे गीयते परमः सितः ॥७५॥

गुरुकुलमें रहकर वेदाध्ययन करते थे ॥ ५६-५८ ॥ अतुलोम जातिमें उत्पन्न लोगोंने यह कभी नहीं चाहा कि मैं अपने दर्जेसे ऊँचे पद रहूँ । रामके राजमें कोई सन्तानविहीन तथा निर्धन नहीं था और कोई ऐसा भी नहीं था, जो अपनी मर्यादाके विरुद्ध आचरण करनेवाला हो । उनके राजमें कोई अकाल मृत्युका ग्रास नहीं बन सका । उस समय न कोई शठ, न बकवादी, न वंचक, न हिंसक, न पाखण्डी, न भाँड़, न स्त्रीविहीन और न धूर्त ही था ॥ ५९-६१ ॥ पद-पदपर वेदध्वनि तथा शास्त्रसम्बन्धी बाद-विवाद सुनायी देता था । चारों ओर अच्छी-अच्छी बातें, हँसी-खुशीके मंगलगीत, वीणा-वंशी तथा मृदंगका मीठा स्वर सुनायी पड़ता था । सोमपानके सिवाय और किसी मादक वस्तुके खाने-पीनेकी वात नहीं सुनायी देती थी । यज्ञके अतिरिक्त दूसरे समयपर मांस खानेवाले मनुष्य, जुआड़ी, अधर्मी और चोर कहीं भी नहीं थे ॥ ६२-६४ ॥ पुत्रके लिए माता-पिताके पदपूजन हो देवपूजन, उपवास, व्रत, देवताराधन और तीर्थ था । नारीके लिए अपने पतिके चरण-पूजन और उनकी बातें वेदवाक्य सदृश मानना ही सबसे श्रेष्ठ धर्म माना जाता था । सदा छोटा भाई बड़े भाईकी पूजा करता था। सेवक प्रसन्न मनसे अपने मालिककी सेवा करते थे। नीच जातिका मनुष्य अपनेसे ऊँचे वर्णवालेका गुण-गौरव बखानता था ॥ ६५-६७ ॥ सब लोग ब्राह्मणोंकी पूजा करते और विद्वानोंके मनोरथ पूर्णकरनेको उद्यत रहते थे । विद्वान्से तपस्वी, तवस्वीसे जितेन्द्रिय तथा जितेन्द्रियसे भी ज्ञानी मनुष्य श्रेष्ठ माना जाता था और ज्ञानीसे भी संन्यासी उच्च पदपर माने जाते थे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ सदा मंत्रसे पवित्र किया हुआ हवि विप्रोंके मुखाग्निमें पड़ता रहता था ॥ ७० ॥ बावली, कूप, तड़ाग तथा पद-पदपर बगीचा लगवानेवाले और पवित्र द्रव्योंको एकत्र करके यज्ञादि शुभ कर्म करनेवाले कितने ही धर्मात्मा रहा करते थे ॥ ७१ ॥ रामके राजमें सब जातिके मनुष्य हृष्ट-पुष्ट दिखायी पड़ते थे। शिकारी तथा सैनिकोंके सिवाय सब लोग सराहनीय कामोंमें लगे हुए थे । उनके राज्यमें लक्ष्मीकी चंचलता केवल पताकामें रहती थी, राष्ट्रमें नहीं । स्वर्गमें केवल एक ऐरावत हाथी बड़ा, चतुर्दन्त और श्वेत वर्णका है । किन्तु रामके राज्यमें हजारों हाथी चार दाँतवाले तथा श्वेत वर्णके थे । स्वर्गमें केवल सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश करते हैं, किन्तु रामराज्य-की स्त्रियोंके केशोंमें (मणिके) वैसे-वैसे अनेक चन्द्रमा-सूर्य चमकते दिखाई देते थे ॥ ७२-७४ ॥ सुना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तद्वद्‌वृषा रामराज्ये कृषिकर्मणि योजिताः । एणोऽस्त्येकश्चंद्रलोके कृष्णवर्णो मनोरमः ॥७६॥
तद्वदत्र शिशूनां हि क्रीडार्थं संत्यनेकशः । अप्सरःसु वरा स्वर्गे गीयते सा तिलोत्तमा ॥७७॥
गेहे गेहे संति नार्यः सर्वास्त्वत्र तिलोत्तमाः । रुक्मभूषणभूषाढ्या गतिनूपुरनिःस्वनाः ॥७८॥
सहस्राक्षोऽस्त्येक एव महान्स्वर्गे प्रगीयते । रामराज्ये चामराणि सहस्राक्षीण्यनेकशः ॥७९॥
सुधापानं त्वेकमेव स्वर्गेऽस्ति परमं वरम् । तद्वन्नानारसानां च पानमत्र गृहे गृहे ॥८०॥
सुधापानेन संहृष्टा यथा स्वर्गसुरोत्तमाः । दयिताऽधरपानेन तथाऽत्र सुखिनो जनाः ॥८१॥
सागरेष्वेव सा दृष्टा मर्यादा सर्वदा नरैः । रामराज्येऽत्र बालेषु मर्यादा सर्वदेक्ष्यते ॥८२॥
विचरंति गजारूढाः श्रूयंते पार्थिवाः पुरा । पौरा जानपदाः सर्वे विचरंत्यत्र ते गजैः ॥८३॥
पूर्वं श्रुतं शिशूनां हि चुंबनं दिवसे मुहुः । रामराज्येऽनिशं नारीचुंबनानि मुहुर्मुहुः ॥८४॥
क्रीडा परिमलद्रव्यैः फाल्गुने सा श्रुता पुरा । क्रीडां परिमलद्रव्यैः पौराश्चक्रुः सदाऽत्र ते ॥८५॥
एवं तद्रामराज्यं हि महामंगलसंयुतम् । आसीदनुपमेयं च श्रवणान्मंगलप्रदम् ॥८६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे
उत्तरार्धे रामराज्यवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः

(रामका लव-कुश तथा भ्राताओंको राजनीतिक उपदेश)

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः श्रीमान्समाहूय कुशं लवम् । लक्ष्मणं भरतं चापि शत्रुघ्नं रहसि स्थितः ॥ १ ॥

जाता है कि कैलासपर एक ऐसा बैल है, जो अतिशय धवल वर्णका है। किन्तु रामराज्यमें वैसे-वैसे कितने ही बैल हल जोतनेका काम करते थे। चन्द्रलोकमें एक ऐसा मृग है, जो बड़ा सुन्दर ओर कृष्ण वर्णका है। किन्तु रामराज्यमें लड़कोंको खेलनेके लिए वैसे-वैसे कितने ही मृग रहा करते थे। सुनते हैं कि स्वर्गलोकमें कोई तिलोत्तमा नामकी बड़ी सुन्दरी अप्सरा है ॥ ७५–७७ ॥ किन्तु रामराज्यमें घर-घरको स्त्रियाँ तिलोत्तमाके समान सुन्दरी तथा सुवर्णके भूषणोंसे भूषित होकर चलते समय नूपुरका रुनझुन शब्द करती चलती थीं ॥ ७८ ॥ सुनते हैं कि स्वर्गमें केवल एक सहस्राक्ष (इन्द्र) है, किन्तु रामके यहाँ अनेकों सहस्राक्ष चमर चलते थे। स्वर्गमें केवल अमृत पान करनेकी वस्तु है और रामराजमें घर-घर विविध प्रकारकी रसमयी पेय वस्तुयें विद्यमान रहा करती थीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ जिस तरह अमृतको पीकर देवता स्वर्गमें प्रसन्न रहते हैं, उसी प्रकार स्त्रीके अधरोष्ठका पान करके अयोध्याके सब मनुष्य प्रसन्न रहते थे ॥ ८१ ॥ आजतक संसारी मनुष्योंने केवल समुद्रकी मर्यादा देखी थी (यानी वह अपनी सीमाके बाहर जाता नहीं देखा गया), किन्तु रामके राज्यमें छोटे-छोटे बच्चोंमें भी मर्यादा दिखायी देती थीं ॥ ८२ ॥ सुनते हैं कि पहले राजा ही लोग हाथियोंपर चढ़कर इधर-उधर घूमते-फिरते थे, किन्तु रामके राजमें सारे पुरवासी और देशवासी हाथियोंपर सवार होकर घूमते-फिरते दिखायी देते थे ॥ ८३ ॥ सुनते हैं कि पहले लोग बच्चोंको ही बार-बार चूमते थे, किन्तु रामके राजमें स्त्रियोंको भी लोग बड़े आनन्दके साथ दिन-रातमें अनेकों बार चूमते थे ॥ ८४ ॥ सुना जाता है कि पहले फाल्गुनके महीनेमें ही रङ्ग तथा सुगन्धित वस्तुएँ एक-दूसरेपर छोड़ते हुए लोग फाग खेलते थे, किन्तु रामके राजमें लोग सर्वदा वैसे खेल खेला करते थे ॥ ८५ ॥ इस प्रकार रामका राज्य महामङ्गलमय अनुपमेय और नाममात्र सुननेसे ही कल्याणदायक हो रहा था ॥ ८६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे पंचदशः सर्गः ॥१५॥

श्रीरामदासने कहा कि एक बार श्रीमान् रामने एकान्तमें लव, कुश, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नको

CC0. In Public Domain. Nilkant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजनीतिं विस्तरेण शिक्षयामास सादरम् । शृणु वत्स कुशाद्य त्वं यूयं सर्वे लवादिकाः ॥ २ ॥
शृणुतात्र स्वस्थचित्ता राजनीतिं वदाम्यहम् । कुश त्वं पृथिवीपालो भविष्यसि गते मयि ॥ ३ ॥
वैकुंठं शृणु तस्मात्त्वं सावधानमना भव । अनृतं नैव वक्तव्यं नृपेणा चिरजीविना ॥ ४ ॥
नातिकामी न वै क्रोधी राजा स सुखमर्हति । परदाररतिस्त्याज्या सर्वथा पार्थिवेन हि ॥ ५ ॥
सत्यं शौचं दया क्षांतिरार्जवं मधुरं वचः । द्विजगोयतिसद्भक्तिः सप्तैते शुभदा गुणाः ॥ ६ ॥
निद्रालस्यं मद्यपानं द्यूतं वारांगनारतिः । अतिक्रीडाऽतिमृगया सप्त दोषा नृपस्य च ॥ ७ ॥
पुत्रवत्पालनीयाश्च प्रजा नृपतिना भुवि । षष्ठांशः करभारश्च राज्ञा ग्राह्यः सदैव हि ॥ ८ ॥
ज्ञेयं चारैः सदा वृत्तं पृथिव्याः पार्थिवेन वै । परराष्ट्रे सदा दूता नानावेषविरूपिताः ॥ ९ ॥
पंच पंचाथवा द्वौ द्वौ प्रेषणीया नृपेण हि । न विश्वसेत्पारकीयजने दूते नृपोत्तमः ॥१०॥
दण्डो भेदस्तथा साम दानं कालोचितं चरेत् । स्वकार्यं साधयेद्युक्त्या काले प्राप्तं नृपोत्तमः ॥११॥
मनसा चिंतितं कार्यं कथनीयं न कस्यचित् । कृत्वा कार्यं दर्शनीयं जनान्मंत्रिजनानपि ॥१२॥
मासे मासे स्वकोशस्य परामर्शो नृपोत्तमैः । गृहणीयः सर्वदैव विश्वसेत्सेवकेषु न ॥१३॥
वर्षे वर्षे नगर्याश्च प्राकारस्य नृपोत्तमैः । परिखानां परामर्शः कार्यो मन्त्रिजनैः सह ॥१४॥
चतुर्मासेषु शस्त्राणां मार्गाणां पार्थिवोत्तमः । परामर्शः सदा कोष्ठागारादीनां प्रकारयेत् ॥१५॥
पक्षे पक्षे वारणानां तुरंगाणां तथाऽष्टभिः । दिवसैर्मासमात्रेण वस्त्राणां पार्थिवोत्तमैः ॥१६॥
परामर्शः सदा कार्यः पिकादीनां त्रिभिर्दिनैः । सीमाचारजनानां च षण्मासैश्च नृपोत्तमैः ॥१७॥
परामर्शः सदा कार्यस्तथा जानपदस्य च । मासे मासे स्वसैन्यस्य वापीनामयनेन हि ॥१८॥

बुलाया ॥ १ ॥ उन्हें विस्तारपूर्वक राजनीतिकी शिक्षा देते हुए कहने लगे—हे वत्स कुश तथा भरतादिक भ्राताओं ! तुम लोग स्वस्थचित्त होकर सुनो । मैं तुम्हें राजनीतिकी शिक्षा दे रहा हूँ । हे कुश ! मेरे बैकुण्ठ चले जानेपर तुम राजा होओगे । इसलिये तुम विशेष रीतिसे मेरी शिक्षाको सुन रक्खो । जिस राजाको चिरकाल तक इस संसारमें जीवित रहना हो, उसे चाहिये कि वह झूठ कभी न बोले ॥ २-४ ॥ जो राजा कामी और क्रोधी नहीं होता, वही सुखसे रह सकता है । राजाको चाहिये कि वह दूसरेकी स्त्रीसे प्रेम न करे ॥ ५ ॥ सत्य, शौच (पवित्रता), दया, क्षमा, स्वभावमें कोमलता, मीठी बातें, ब्राह्मण-गौ-सन्त तथा सज्जनोंपर श्रद्धा, ये सात गुण राजाके लिए परम कल्याणकारी हैं ॥ ६ ॥ निद्रा, आलस्य, मद्यपान, द्यूत (जुआ), वेश्याओंसे प्रेम, ज्यादा खेल-कूद और अधिक शिकार खेलना, ये राजाके सात दोष हैं ॥ ७ ॥ राजाको चाहिए कि वह राज्यकी प्रजाका पुत्रके समान पालन करे और उससे आयका षष्ठांश कर सर्वदा लेता जाय ॥ ८ ॥ राजाका यह कर्तव्य है कि वह गुप्तचरों द्वारा राज्य भरका समाचार मालूम करता रहे । दूसरे राजाके राज्यकी भी गति-विधि देखनेके लिए वेष बदलकर पाँच-पाँच या दो-दो दूत नियुक्त कर दे । अपने दूतोंके सिवाय किसी और व्यक्तिपर विश्वास न करे ॥ ९ ॥ १० ॥ समय-समयपर जैसा उचित समझे, साम-दान आदि नीतियोंका प्रयोग करता रहे । समय पाकर युक्तिके साथ अपना कार्य साधन करे ॥ ११ ॥ जो कार्य अपने मनमें सोचे, वह किसीसे न कहे । स्वयं चुपचाप करता रहे । नौकरोंके विश्वासपर राज-काज न छोड़ दे ॥ १२ ॥ महीने-महीने अपने खजानेकी देख-भाल स्वयं करे । नौकरोंके ही विश्वासपर न छोड़ दे ॥ १३ ॥ साल-सालभर बाद अपने मंत्रियोंके साथ नगरकी खाई आदिकी भी जांच करे ॥ १४ ॥ चार-चार महीनेमें अपने शस्त्रों, मार्गों तथा कोठार आदिका निरीक्षण करता रहे ॥ १५ ॥ एक पक्षमें या आठवें रोज हाथी-घोड़े आदि देखे । महीने-महीने कपड़ोंको देख-रेख करे ॥ १६ ॥ प्रति तीसरे दिन अपने यहाँ पाले हुए सुग्गे-कोयल आदि चिड़ियोंको देखे और हर छठवें महीने अपनी सीमापर नियुक्त अधिकारियोंकी निगरानी करे । सर्वदा अपने राजमें रहनेवाले मनुष्योंपर ध्यान रक्खे । महीने महीने सेनाकी देखभाल करे और छठवें महीने राज्यके कुएँ-बावली आदि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कार्यः पुष्पवाटिकानां मासे मासे नृपोत्तमैः । परामर्शः स्वयं गत्वाऽथ वा मन्त्रिजनोत्तमैः ॥१९॥
वर्षे वर्षे समुद्योगः षण्मासैरथवा त्रिभिः । मासैर्नृषेण स्वे राष्ट्रे कार्यः सैन्येन यत्नतः ॥२०॥
देवानां ब्राह्मणानां च गुरूणां यतिनां तथा । असंतोषो नैव कार्यः पार्थिवेन कदाऽपि हि ॥२१॥
द्रव्यादायं सदा पश्येत्स्वव्ययं तु निरीक्षयेत् । आदायस्य चतुर्थांशैर्व्ययः कार्यो नृपोत्तमैः ॥२२॥
तृतीयांशेन वा कार्यस्त्वर्धांशेन कदापि न । इष्टाः कार्या मन्त्रिणश्च नातिकोपं समाचरेत् ॥२३॥
नातिमान्या मन्त्रिणश्च वर्धनीयाः कदापि न । न विरोध्याः कदा राज्ञा दुर्गपालास्तथैव च ॥२४॥
आकराणां पट्टणानां दुर्गाणां गिरिवासिनाम् । अरण्यवासिनां सिंधावुपद्वीपनिवासिनाम् ॥२५॥
सिन्धुतीरस्थितानां च नानादेशनिवासिनाम् । वर्षान्तरस्थितानां च द्वीपांतरनिवासिनाम् ॥२६॥
द्वीपे द्वीपे पृथग्वर्षवासिनां पार्थिवोत्तमैः । परामर्शः सदा कार्यश्चारैः पक्षांतरेण हि ॥२७॥
परराष्ट्राद्गुप्तरूपैः काषायांबरधारिभिः । अवधूतादिवेषैश्च तथा कार्पटिकोपमैः ॥२८॥
वणिग्रूपधरैर्दूतैर्वृत्तं वेद्यं नृपोत्तमैः । तत्र तत्राधिपाः सर्वेऽब्देऽब्दे कार्यास्तु नूतनाः ॥२९॥
एक एव चिरं राज्ञा न स्थाप्यः सेवकः क्वचित् । परसैन्यानि वेद्यानि द्रष्टव्यं स्वबलं सदा ॥३०॥
परराष्ट्रागतो दूतः स्वीयराष्ट्रे विलोकयेत् । पृष्टश्चेन्नैव दण्ड्यः स परदूतं न शिक्षयेत् ॥३१॥
परदूतो मोचनीयः सम्मानेन नृपोत्तमैः । स्वसीमारक्षिणो दूताः शिक्षणीया मुहुर्मुहुः ॥३२॥
परदूतः कथं मुक्तः स्वीयराष्ट्रे पुरेऽथवा । अधारस्य सूक्ष्मदृष्ट्या द्रष्टव्यं चेति पार्थिवैः ॥३३॥
अग्रेसरं पार्श्वगौ च पश्चाद्भागस्य रक्षकम् । सेनापतिं मन्त्रिणं च स्वीयं प्रतिनिधिं तथा ॥३४॥
सूतं चामरहस्तं च दूतं निकटवर्तिनम् । दानमानैस्तोषयेच्च सदा राज्ञा सुबुद्धिना ॥३५॥
देशं कालं बलं कोशं निजोत्साहं नृपोत्तमैः । आदौ बुद्ध्या निरीक्ष्याथ रिपोश्चापि परीक्षयेत् ॥३६॥

देखे ॥ १७ ॥ १८ ॥ महीने-महीने बगीचोंमें स्वयं जाकर देखभाल करे या मन्त्रियोंको भेज दे ॥ १९ ॥ साल-साल भर बाद, छठें अथवा तीसरे महीने सेनाके साथ-साथ राजा अपने राज्यमें दौरा करे। इस बातका सदा ध्यान रक्खे कि देवताओं, ब्राह्मणों, यतियों तथा गुरुजनोंमें किसी प्रकारका असन्तोष न फैलने पाये ॥ २० ॥ २१ ॥ धनका आय-व्यय स्वयं देखे और आयका चतुर्थांशमात्र व्यय करे। किसी विकट समस्याके आ जानेपर आयका तृतीयांश खर्च करे, किंतु आयका आधा खर्च कभी भी न होने पाये। मन्त्रियोंको सदा प्रसन्न रक्खे। न विशेष क्रोध करे और न किसीसे विशेष प्रेम ही रक्खे। दुर्गकी रक्षा करनेवालोंके साथ कभी विरोध न करे ॥ २२–२४ ॥ खानोंके पास रहनेवाले, राजधानीसे दूर किसी नगरमें रहनेवाले, दुर्ग तथा पर्वतनिवासी, जंगलमें रहनेवाले, समुद्रके टापुओंमें निवास करनेवाले, समुद्र-तटपर रहनेवाले, विदेशोंमें रहनेवाले, द्वीपान्तरके निवासियों तथा किसी भी देशके रहनेवाले लोगोंकी प्रत्येक पक्षमें राजा देख-भाल करता रहे ॥ २५–२७ ॥ गुप्तरूपधारी, संन्यासीवेषधारी, अवधूत, वणिक् तथा नागाका वेश बनाकर दूसरेके राजमें घूमनेवाले गुप्तचरोंसे अन्य राष्ट्रका समाचार मालूम करता रहे। उन दूसरे-दूसरे देशोंमें प्रति वर्ष नये-नये अधिकारी बदलता जाय ॥ २८ ॥ २९ ॥ राजाको यह उचित है कि किसी प्रदेशका अधिकारी बनाकर किसी नौकरको ज्यादा दिनों तक उस प्रदेशमें न रहने दे। दूसरे राजाओंकी सेना तथा अपना सैन्यबल बराबर देखता रहे ॥ ३० ॥ यदि किसी दूसरे राष्ट्रका गुप्तचर अपने राष्ट्रमें दिखायी दे जाय तो उसे किसी प्रकारका दण्ड न दे। दूसरे राज्यके दूतको दण्ड न देना नीतिशास्त्रका नियम है। यदि दूसरे देशका दूत मिल जाय तो राजाको चाहिए कि उसे सम्मानपूर्वक छोड़ दे। अपने सीमाप्रांतमें रहनेवाले निजी दूतोंको बराबर शिक्षा देता रहे। यदि दूसरे राष्ट्रका दूत मिल जाय तो राजाको चाहिए कि सूक्ष्मदृष्टिसे इस बातपर विचार करे कि उस देशके राजाने किस लिए मेरे राष्ट्रमें अपना दूत भेजा है ॥ ३१–३३ ॥ जो अपने आगे चलनेवाले हों या पीछे चलते हों, उनकी तथा सेनापति, मंत्री, अपने प्रतिनिधि, सारथी, चमर डुलानेवाले तथा पास रहनेवाले लोगोंको दान-मानसे प्रसन्न रक्खे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ देश, काल,

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निजमित्रा नृपाः सर्वे तथा स्वसुहृदो नृपाः। सुहृदां सुहृदश्चापि मित्रमित्रान्परीक्षयेत् ॥३७॥
निजमित्रबलं दृष्ट्वा मित्रमित्रबलं तथा। बलं स्वसुहृदां चापि स्वसुहृत्सुहृदां बलम् ॥३८॥
आदौ नृपैः परीक्ष्याथ रिपोश्चैव निरीक्षयेत्। के स्वीयाः पार्थिवा राष्ट्रे पारकाया नृपाश्च के ॥३९॥
सुहृदः स्वनृपाणां च बलं तेषां निरीक्षयेत्। द्रष्टव्या रिपवः स्वीया रिपूणां रिपवस्तथा ॥४०॥
दृष्ट्वा रिपूणां रिपुभिः कार्या राज्ञा हि मैत्रिकी। परस्य शत्रुः पाल्यो न पाल्यश्चेत्त पराक्षयेत् ॥४१॥
पाल्यं शत्रुबलं दृष्ट्वा शत्रुमित्रबलं तथा। पाल्यं शत्रुसुहृत्सैन्यं दृष्ट्वा पाल्यं सुरक्षयेत् ॥४२॥
परराष्ट्रे चारनेत्रैर्नद्यो दुर्गाणि पर्वताः। अरण्यानि दुष्टमार्गाश्चोरमार्गा जलाशयाः ॥४३॥
ज्ञातव्याः स्वपुरे पूर्वमुद्योगश्च ततश्चरेत्। परराष्ट्रेऽपि बुद्ध्या हि गन्तव्यं पार्थिवैः सुखम् ॥४४॥
यत्राग्रे गमनं स्वीयं केषां वाच्यं न तत्कदा। पूर्वे गन्तुं निजेच्छा चेन्निक्षिपेदुत्तरे ध्वजम् ॥४५॥
उत्तराभिमुखः कार्यः सेनावासो नृपेण हि। अग्रेसर चोत्तरं हि नृपेणाज्ञाप्य सादरम् ॥४६॥
क्रोशार्द्धान्ते गतं दृष्ट्वा गच्छेत्पूर्वे स्वयं नृपः। एवं ध्वजः कदा याम्ये पश्चिमे वा पराग्दिशि ॥४७॥
परराष्ट्रे रोपणीयश्चारैर्वृत्तं तु वेदयेत्। स्वराष्ट्रे गमनं यस्यां दिशि तस्यां नृपोत्तमैः ॥४८॥
रोपणीयो ध्वजः प्रोच्चैः सेनावासस्तथाचरेत्। यन्त्राणामायुधानां च वाहनानां बलस्य च ॥४९॥
राज्ञा वृद्धिः सदा कार्या कार्यो धान्यादिसंग्रहः। राष्ट्रे दुर्गे पुरे स्वीये पत्तने निर्जले वने ॥५०॥
जलाशयाः शुभाः कार्याः कृत्वा कोशव्ययं बहु। प्राकारार्थेऽथ दुर्गार्थेऽथ जलार्थे यो व्ययः कृत ॥५१॥
न ज्ञेयः स व्ययो राज्ञा ज्ञेयं रक्षणमात्मनः। धर्मार्थे यो व्ययो जातः सोऽग्रे ज्ञेयस्तु संग्रहः ॥५२॥
आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि। आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥५३॥
पादमुद्रामितं द्रव्यं राज्ञा दायो निरीक्षयेत्। नावलोक्यं यथाकालं व्यये तत्कोटिसंमितम् ॥५४॥

बल, कोश और अपना उत्साह देखकर अच्छी तरह विचारे और शत्रुके भी बल आदिका निरीक्षण-परीक्षण करे। फिर अपना बल, मित्रबल, मित्रके मित्रका बल और अपने सुहृद्के सुहृदोंका बल देखकर राजाको चाहिये कि अपने शत्रुका बलाबल देखे। तब इस बातपर विचार करे कि कौन राजे अपना साथ देनेवाले हैं और कौन शत्रुका ॥ ३६-४० ॥ इसके बाद उसे चाहिए कि शत्रुओंके शत्रुसे मित्रता करे। दूसरेके शत्रुकी पहले तो रक्षा ही न करे और यदि रक्षा करे भी तो खूब अच्छी तरह देख-भालकर ॥ ४१ ॥ यदि शत्रुकी सेना किसी प्रकार अपने पास आ ही जाय तो उसकी रक्षा करे। शत्रुके मित्रकी सेना एवं शत्रुके सुहृद्का सेनाकी भी रक्षा करे ॥ ४२ ॥ दूसरेके राष्ट्रमें गुप्तचरोंको नियुक्त करके वहांके पर्वतों, नदियों, वनों, दुष्टोंके रास्तों, गुप्तचरोंके रास्तों तथा जलाशय आदिपर दृष्टि रखकर अच्छी तरह समझ ले। पहले अपने राज्यकी रक्षाका पूर्ण प्रबन्ध करके ही किसी दूसरेके राज्यपर चढ़ाई करे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जहाँ अपनेको जाना हो, वह सच्ची बात कभी किसीको भी न बताये। यदि पूर्वको ओर यात्रा करनी हो तो उत्तरकी तरफ झण्डा भेजे और सेनाके ठहरनेका शिबिर आदि भी उत्तरकी ओर ही बनवाये। सेना भी उत्तरकी ओर ही चले, किन्तु आधा कोस आगे जाकर पूर्वकी ओर मुड़कर राजाको जहाँ जाना हो, वहाँ जाय। इसी तरह कभी झण्डेको दक्षिणकी ओर तथा कभी पश्चिम दिशाकी ओर भेजे ॥ ४५-४७ ॥ किसी दूसरे राजाके राष्ट्रमें झण्डेको गाड़कर गुप्तचरों द्वारा वहांका हाल-चाल मालूम करे। अपने राज्यमें उसी ओर झण्डा गाड़े, जिस ओर अपनेको जाना हो ॥ ४८ ॥ शिबिर आदि भी उसी तरफ बनवाये। राजाको चाहिये कि अपने यहाँ तोप-बन्दूक आदि यन्त्र तथा अन्य आयुध, वाहन और सेनाको सदा बढ़ाता हुआ धन-धान्य आदिका भी भली प्रकार संग्रह करता रहे। अपने राष्ट्र, किलाओं, बाजारों, अपनी खास राजधानी तथा निर्जल वनोंमें प्रचुर धन खर्च करके बड़े-बड़े जलाशय बनवा दे। जो धन आस-पासकी खाई, किले, जलाशय आदिमें खर्च हो, उसे खर्च न समझे। उसे तो अपनी रक्षाका साधन माने। धर्मकार्यमें जो व्यय हो, उसे आगेके लिए संग्रह माने ॥ ४९-५२ ॥ आपत्तिसे बचनेके लिए धनकी रक्षा करे, धनसे भी श्रेष्ठ समझकर स्त्रीकी रक्षा

CC0. In Public Domain. Kamlakant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

न सेनारहितं राज्ञा गंतव्यं स्वपुराद्बहिः । नैकाकी विचरेद्ग्रामे नैकाकी क्वापि संविशेत् ॥५५॥
नैकाकी क्वापि वै स्थेयं न पद्भ्यां विचरेद्बहिः । न गच्छेत्परगेहेषु वारं वारं नृपोत्तमः ॥५६॥
न विश्वसेद्द्वारपालं जलदं रजकं तथा । धौतवस्त्राणि बुद्ध्या हि नृपः सम्यक् परीक्षयेत् ॥५७॥
तांबूलवीटिका ग्राह्यांतरा दृष्ट्वा परार्पिता । परदत्तं जलं ग्राह्यं राज्ञाऽक्षिभ्यां विलोक्य च ॥५८॥
फलानि परदत्तानि परीक्षेत्पार्थिवोत्तमः । दूरस्थितैर्नृपैर्भाव्यं न तेषां निकटे चरेत् ॥५९॥
सभा राज्ञा प्रगंतव्यं द्विवारं त्वेकदाऽथवा । अर्धयामं सभामध्ये स्थेयं राज्ञा न वै चिरम् ॥६०॥
स्वद्वेष्टा नगराद्राष्ट्राद्बहिः कार्यो नृपोत्तमैः । पादौ प्रसार्य न स्थेयं सभायां नृपसत्तमैः ॥६१॥
न बाहुबन्धनं जान्वोः कृत्वा स्थेयं नृपोत्तमैः । नातिस्मितं कदा कार्यं सभायां पार्थिवोत्तमैः ॥६२॥
सभायां समलैर्वस्त्रैर्न गन्तव्यं कदा नृपैः । गणिका गणका वैद्या गायका वन्दिनो नटाः ॥६३॥
पण्डिता धर्मशास्त्रज्ञास्तार्किका वैदिका द्विजाः । सदा पाल्या नृपैणैते दानमानैरहर्निशम् ॥६४॥
न विश्वसेन्नापिताय तोषयेत्तं धनादिभिः । प्रजानां गौरवं कार्यं दण्डयेन्न वृथा प्रजाः ॥६५॥
क्लेशयुक्ताः प्रजाः सर्वा नैव कार्याः कदाचन । राज्यद्वारस्थितैर्दूतैः सर्वैः ते पार्थिवोत्तमाः ॥६६॥
मुक्तकंचुकबन्धाश्च विमुक्तकटिबन्धनाः । सम्यग्दृष्ट्वा न्यस्तशस्त्राः प्रेषणीया नृपोत्तमम् ॥६७॥
राजाज्ञया नृपं नत्वाऽऽसने चोपविशेत्क्रमात् । नृपैर्माण्डलिकैः सर्वैः स्थातव्यं पुरतोऽथवा ॥६८॥
संमील्य हस्तौ पादौ च राजन्यस्तविलोचनैः । न हसेद्राजपुरतो न जृम्भेन्न क्षुवेन्मुहुः ॥६९॥
तथा न ष्ठीवनं कार्यं सर्वैर्माण्डलिकैर्नृपैः । आगमे गमने सर्वैर्वन्दनीयो नृपो मुहुः ॥७०॥
नात्युच्चैः संवदेद्राजसान्निध्ये पार्थिवेतरैः । कंचुकेन विना राजा सभायां नोपसंविशेत् ॥७१॥

करे और स्त्री तथा धनसे भी बढ़कर अपनी रक्षा करनी चाहिए ॥ ५३ ॥ अपनी आयमेंसे एक चवन्नी भी किसीसे पाना हो तो लेकर छोड़े । किन्तु समय पड़नेपर यदि करोड़ोंके खर्चकी आवश्यकता पड़ जाय तो खर्च कर दे, रुपयेका मुँह न देखे । अपने नगरके बाहर बिना सेनाके कहीं न जाय । अपने ग्राममें भी अकेला न घूमे-फिरे और न कहीं अकेला बैठे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ कहीं अकेला न ठहरे, न पैदल चले और बार बार किसीके घर न जाय । द्वारपाल, पानी देनेवाले सेवक और धोबी इनपर कभी भी विश्वास न करे । कपड़ा धुलकर आये तो राजाको चाहिए कि अपनी बुद्धिसे खूब अच्छी तरह उसकी परीक्षा करके ही पहने । पानका बीड़ा खानेको आये तो पहले उसे किसी दूसरेको खिलाकर स्वयं दूसरा बीड़ा खाय । पानी पीनेको आये तो अच्छी तरह उसकी परीक्षा करके अपना आँखों देखकर पिये ॥ ५६-५८ ॥ दूसरेके दिये फलोंकी भी भली भाँति परीक्षा कर ले । जो राजे मिलने आयें, उनसे दूरसे ही बातचीत करे । न स्वयं उनके पास जाय और न उन्हें अपने पास आने दे । प्रतिदिन एक या दो बार सभामें जाय और आधे पहरसे अधिक वहाँ न ठहरे । अपनेसे द्वेष करनेवालोंको नगरसे बाहर कर दे । सभामें कभी पैर फैलाकर न बैठे और न घुटनोंको सिकोड़कर ही बैठा करे । राजाको चाहिये कि सभामें कभी ज्यादा न हँसे ॥ ५९-६२ ॥ सभामें कभी मैले कपड़े पहिनकर न जाय । गणिका, गणक (ज्योतिषी), वैद्य, गायक, बन्दीजन, नट, पंडित, धर्मशास्त्री, सैनिक, वैदिक तथा ब्राह्मण इनका दान-मान आदिसे सदा सम्मान करता रहे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ नाईपर कभी भी विश्वास न करे । उसे हमेशा रुपये-पैसे देकर प्रसन्न रक्खे । सब लोगोंका सम्मान करता हुआ प्रजाको व्यर्थ दंड न दे ॥ ६५ ॥ इस बातका सदा ध्यान रक्खे कि प्रजाके लोगोंको किसी प्रकारका क्लेश न होने पाये । राजद्वार-पर रहनेवाले दूतोंको चाहिये कि जो राजे मिलने आयें, उनके लबादे उतरवाकर परतले खुलवा दे । जो कुछ अस्त्र-शस्त्र उनके पास हों, उन्हें अलग रखवा दे । फिर अच्छी तरह देख-भालकर राजासे मिलनेको भीतर जाने दे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जो कोई राजासे मिलने जाय, वह राजाको प्रणाम करके संकेतित आसनपर बैठे । जो माण्डलिक राजे हों, उनके लिये राजाके सामने कुर्सी डाली जाय । वे राजाके सामने हाथ-पैर समेटकर राजाकी ओर निहारते हुए बैठें । राजाके सामने न हँसे, न जम्हाई ले और न बार-बार छींके ॥६८॥ न बार-बार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मृगयायां वारणेंद्रो नैव हन्यो नृपोत्तमैः । नांतर्वत्नी मृगी राज्ञा हन्तव्या विपिने कदा ॥७२॥
न निद्रितश्च हन्तव्यः पिबन्नीरं वनेचरः । तथा स्वशरणं प्राप्तो विश्वस्तो वा कदाचन ॥७३॥
क्रीडासक्तो वने प्राणी नैव हन्यो नृपोत्तमैः । सीमाचारानष्टदिक्षु संस्थाप्य मृगयां चरेत् ॥७४॥
रात्रौ मित्रेण सहितस्तूष्णीमेव नृपोत्तमः । आत्मानं कंबलेनैव समाच्छाद्य बहिश्चरेत् ॥७५॥
पुरद्वारस्थितानां च ह्यर्गलादि निरीक्षयेत् । जनानां भाषितं सर्वं श्रोतव्यं हि शुभाशुभम् ॥७६॥
एवं स्वयं प्रगंतव्यमथवा प्रेषयेद्धितम् । रात्रौ रात्रौ पुरे बुद्ध्या श्रोतव्यं सकलेरितम् ॥७७॥
न कार्यः कलहो गेहे गृहकृत्यं सभास्थितैः । न वाच्यमणुमात्रं हि न तूष्णीं ष्ठीवनं चरेत् ॥७८॥
न कंडूयेच्च शिरो राजा सभायां स्वकरेण वै । श्रुत्वा रिपूणामुत्कर्षं न त्यजेद्धैर्यमात्मनः ॥७९॥
पलायनं न संग्रामाद्राज्ञा कार्यं कदाचन । न रिपूणां निजा पृष्ठिर्दर्शनीया कदाचन ॥८०॥
नोडुपेन तरेद्राजा नदीं मुख्यां कदापि हि । सेतुं विना नदी राज्ञा नोत्तीर्या हि कदाचन ॥८१॥
नोत्तीर्या नौकया राज्ञा नदी क्वापि सुतादिभिः । कार्या नैव जलक्रीडा नौकायां स्वसुतैः सह ॥८२॥
न स्थेयं हट्टमध्ये हि तथा चैव चतुष्पथे । न ताडयेन्निजां पत्नीं तथा पुत्रं न ताडयेत् ॥८३॥
स्वमुद्राङ्कितपत्रेण विना केषां पुराद्बहिः । न निर्गमः प्रकर्तव्यस्तथैवागमनं नृणाम् ॥८४॥
कर्तुमाज्ञापनीयं न मुद्रापत्रांकितं विना । नारण्ये लुण्ठनं चौरैः पथि कार्यं नृपोत्तमैः ॥८५॥
न कार्यं मुण्डनं राज्ञा विना तीर्थं कदाचन । पर्वकाले गृहे नैव स्नातव्यं पार्थिवोत्तमैः ॥८६॥
न पादेन स्पृशेच्चापं न पादेन शरं स्पृशेत् । नातिक्रीडेत्सारिकाभिर्द्विजैर्वादं न वै चरेत् ॥८७॥
न तिष्ठेद्द्वारदेशे वै न स्थातव्यं नृपैर्भुवि । राज्ञा मार्गे न वै स्थेयं न खेदं नृपतिर्भजेत् ॥८८॥
तोयानयनमार्गे हि स्त्रीणां स्तेयं नृपेण न । धान्यं समर्धं कर्तुं वै दण्डयेद्व्यवसायिनः ॥८९॥

थुके। जब राजाके सामने जाय और लौटे, तब बरावर राजाको प्रणाम करे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ राजाके सामने जोर-जोरसे बात न करे। राजाको चाहिए कि वह सभामें कवच धारण किये बिना न बैठे। जब शिकार खेलने जाय तो वहाँ हाथी तथा गर्भिणी मृगीका शिकार कभी न करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जो जीव पानी पी रहा हो, जो सोया हो और जो भाग करके अपनी शरण आया हो, ऐसे जीवोंका शिकार कभी न करे। शिकार खेलने जाय, तब आठों दिशाओंमें कुछ लोगोंको नियुक्त करके शिकार खेलें। रात्रिके समय अपने किसी मित्रके साथ कम्बल ओढ़कर महलसे बाहर निकले ॥ ७३–७५ ॥ पुरद्वारके फाटकोंमें लगे हुए अर्गला-दण्ड आदि देखे। रात्रिमें लोग जो अटपटी बातें कर रहे हों, उन्हें सावधान मनसे सुने। इस प्रकार प्रत्येक रात्रिको स्वयं जाय या अपने विश्वासपात्र मित्रको भेज दिया करे, जो हर रात्रिमें लोगोंकी बातें सुनता रहे। घरमें लड़ाई-झगड़ा न करे। सभामें कोई घरेलू काम-काज न करे। घरसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई बात भी न करे। सभामें चुपचाप बैठे और थूके नहीं। सभामें सिर न खुजलावे। शत्रुका उत्कर्ष सुनकर धैर्य न छोड़े। राजाको चाहिए कि कभी संग्रामभूमिसे भागे नहीं और शत्रुको कभी अपनी पीठ न दिखाये ॥ ७६–८० ॥ राजाको चाहिए कि कभी अपने बालबच्चोंके साथ नौकापर चढ़कर नदी न पार करे। अपने लड़कोंके साथ नौकापर बैठकर जलक्रीड़ा न करे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ बाजारमें या किसी चौराहेपर न बैठे। अपनी स्त्री और पुत्रको न धमकाये। राज्यका मुहर लगा पत्र देकर लोगोंको अपने नगरसे बाहर जाने दे। यही नियम नगरके भीतर आनेवालोंके लिए भी रक्खे। वनों तथा रास्तोंमें चोरी करनेवालोंको ऐसा मौका न मिलने पाये, जिससे वे चोरी कर सकें ॥ ८३–८५ ॥ तीर्थके सिवाय किसी दूसरी जगह राजा मुण्डन न कराये। कोई पर्वकाल आ पहुँचे तो घरमें स्नान न करे, बल्कि किसी तीर्थको चला जाय। धनुष और बाणको पैरसे न छुए। चौपड़-पचीसी आदि न खेले। ब्राह्मणोंके साथ ज्यादा वाद-विवाद न करे। अपने द्वारपर तथा खाली जमीनपर न बैठे। रास्तेमें भी कभी न बैठे और किसी तरहका खेद न करे ॥ ८६–८८ ॥ जिस रास्तेसे स्त्रियाँ पानी भरने आती हों, वहाँ कभी न बैठे। अन्नोंको सस्ते भावसे

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दृष्ट्वा किंचिन्महर्घं तु स्वीयराष्ट्रे हि भूभृता । न्यूनः कार्यः करभारः किंचिद्देशसुखाय च ॥९०॥
नातिशाठ्यं कदा कार्यमौदार्यं दर्शयेज्जनान् । द्रव्यं गृहीत्वा राज्ञा हि मोचनीया न तस्कराः ॥९१॥
मुखं दृष्ट्वा न वै कार्यो राज्ञा न्यायः कदापि हि । न न्यायश्च परैः कार्यः स्वयमेव प्रकारयेत् ॥९२॥
अर्तानां सकलं वृत्तं श्रोतव्यं सादरं नृपैः । आर्त्त आकारणीयो हि निकटे कृपया नृपैः ॥९३॥
आत्मानं मानयेन्नैव वैद्यं च गणकं नटम् । पण्डितं वैदिकं वीरं गायकं कृतधर्मिणम् ॥९४॥
यज्ञो दानं जपो होमः सन्ध्या ध्यानं शिवार्चनम् । स्नानं पुराणश्रवणं भक्त्या कार्यं नृपोत्तमैः ॥९५॥
न मादकं वस्तु सेव्यं न कृच्छ्रादिकमाचरेत् । न यात्रा स्वपदा कार्या सप्तद्वीपाधिपेन हि ॥९६॥
फलाहारश्च कर्तव्यो राज्ञा ह्येकादशीदिने । निर्जलश्चोपवासश्च न कार्यः पृथिवीभृता ॥९७॥
येन यद्याचितं राज्ञे भूसुरेणार्पयेच्च तत् । तस्मै विप्राय राज्ञा हि नृपा भूसुरदेवताः ॥९८॥
उत्साहे बन्धनान्मोच्या ये ये क्रोधात्सुरक्षिताः । निजाज्ञाभंगतां दृष्ट्वा ज्ञेयं स्वीयं हृतं शिरः ॥९९॥
स्वीयदूतापमानो यः स स्वीयश्चिंतयेन्नृपः । स्वीयदूतस्य सम्मानो राज्ञा ज्ञेयः स आत्मनः॥१००॥
एवं कुश मया प्रोक्ता राजनीतिः सविस्तरा । दिनचर्या मया यद्वत्क्रियते त्वं तथा कुरु ॥१०१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकांडे राजनीतिशिक्षणं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

(कुशकी पुत्री हेमाका स्वयम्वर)

श्रीरामदास उवाच

एकदा कुशकन्याया हेमायाश्च स्वयंवरम् । अयोध्यायां चकाराथ रामश्चातिमहोत्सवैः ॥ १ ॥
समाहूता नृपाः सर्वे नानाद्वीपांतरस्थिताः । समाजग्मुः सुवेषाश्च सभायां तस्थुरासने ॥ २ ॥

बिकवानेके लिए बनियोंको दण्ड देता रहे। यदि अपने राष्ट्रमें मँहगी बढ़ जाय तो राजाको चाहिये कि देशको सुखी रखनेके लिए करभार कुछ हल्का कर दे ॥ ८९ ॥ ९० ॥ कभी अतिशठता न करे और रुपये लेकर चोरोंको न छोड़े। राजाको यह उचित है कि मुँहदेखा न्याय न करे। न्याय करनेका भार दूसरोंके ऊपर न डालकर स्वयं करे। यदि कोई दुखी राजाके पास अपना दुःख सुनाने पहुँचे तो राजाको चाहिये कि दुखियोंके सारे दुःख आदरपूर्वक सुने। दुखिया मनुष्यसे किसी प्रकारकी घृणा न करके उसे अपने पास बुलाये और उसकी दुःखमयी कहानी सुने। किसी तरहका घमण्ड न करे। वैद्य, ज्योतिषी, नट, पण्डित, वैदिक, बीर, गायक और धर्मात्मा इनका आदर करे। यज्ञ, दान, जप, होम, सन्ध्या, शिवार्चन, स्नान और पुराणश्रवण आदि शुभ कार्य भक्तिपूर्वक करता रहे ॥ ९१–९५ ॥ राजाको चाहिये कि प्रत्येक एकादशीको केवल फलाहार करके रहे और कभी भी निर्जल उपवास न करे। राजाके समीप पहुँचकर ब्राह्मण जो माँगे, सो दे। क्योंकि ब्राह्मण देवताके समान होता है। क्रोधवश जिन-जिन लोगोंको जेलमें डाल दिया गया हो, कोई उत्साहका समय आनेपर उन्हें छोड़ दे। यदि किसीके द्वारा आज्ञा भंग हो रहा हो तो अपना सिर कट गया समझे। अपने दूतका अपमान अपना अपमान और अपने दूतका सम्मान अपना सम्मान जाने। हे कुश ! इस प्रकार मैंने तुम्हें सारी राजनीति बतला दी। रह गयी दिनचर्याकी बात, सो मैं जैसा करता हूँ वैसे ही तुम भी करते चलो ॥ ९६–१०१ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते राज्यकांडे उत्तरार्द्धे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—रामने एक समय कुशकी पुत्री हेमाका स्वयंवर बड़े धूमधामके साथ ठाना। उसमें द्वीप-द्वीपान्तरके अनेक राजे अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणसे सुसज्जित होकर आये और सुन्दर-सुन्दर

CC-0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ययुर्देवाः सगन्धर्वा मुनयोऽपि समाययुः ॥ ३ ॥
तदा सभायामानीता हेमालङ्कारभूषिता । आरुह्य शिबिकायां तु रुक्ममय्यां वरानना ॥ ४ ॥
नवरत्नमयीं मालां बिभ्रती सा स्वयम्वरा । ददर्श नृपतीन्सर्वान्नृपपुत्रान्सविस्तरम् ॥ ५ ॥
तद्भ्रूचापविनिर्मुक्तैस्तत्कटाक्षपतत्रिभिः । संभिन्नास्ते नृपाः सर्वे के वयं न विदुस्तदा ॥ ६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्रावन्तिनाथसुतो महान् । चित्रांगदो सभायाश्च तां जहार कुशात्मजाम् ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा कार्यान्तरव्यग्रान्रामादीन्वेगवत्तरः । मोहनास्त्रेण सकलान्वीरान् कृत्वातिमोहितान् ॥ ८ ॥
रथे निवेश्य तां हेमां हेमाभां वेगवत्तरः । चित्रांगदो बहिर्गत्वा क्रोशमात्रे स्थितोऽभवत् ॥ ९ ॥
किं तूष्णीं चौरवन्नेया मयेयं कुशबालिका । इति निश्चित्य मेधावी तस्थौ चित्रांगदो महान् ॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे पुर्यां हाहाकारो महानभूत् । नीता हेमा चोग्रबाहोः पुत्रेणातिबलीयसा ॥११॥
नृपाः सर्वे समुत्तस्थुः सभायां खिन्नमानसाः । उपसंहरिते तेन मोहनास्त्रेऽतिसम्भ्रमात् ॥१२॥
चित्रांगदेन योद्धुं ते स्वसैन्यैर्निर्ययुर्नृपाः । बहिः साकेतनगरात् क्रोधादारक्तलोचनाः ॥१३॥
तूष्णीमेवोग्रबाहुः स ददर्श पुत्रकौतुकम् । एतस्मिन्नन्तरे सर्वे तद्रथं पार्थिवोत्तमाः ॥१४॥
संवेष्ट्य कोटिशः शस्त्रैर्ववर्षुश्चोग्रबाहुजम् । तदा चित्रांगदो वीरो वायव्यास्त्रेण पार्थिवान् ॥१५॥
गगने भ्रामयामास वाहनाद्यैः समन्वितान् । ततो रामाज्ञया सप्त लवाद्या निर्ययुः पुरात् ॥१६॥
उत्सवार्थं समायाताः स्वस्वराज्यात्तु बालकाः । अङ्गदाद्या निजैः सैन्यैः सलवाः सङ्गरं ययुः ॥१७॥
तदा बभूव तुमुलं युद्धं तल्लोमहर्षणम् । चित्रांगदं ववर्षुस्ते नानाशस्त्राणि राघवाः ॥१८॥
चित्रांगदः स्वबाणौघैर्भित्त्वा शस्त्राणि तानि हि । निजबाणैर्यूपकेतुं चकार विरथं क्षणात् ॥१९॥
तथा चकार विरथं सुबाहुं पुष्करं तथा । तक्षकं चित्रकेतुं च ह्यङ्गदं बलवत्तरः ॥२०॥

आसनोंपर बैठे । यह बात राजाओं ही तक नहीं थी, बल्कि देवता, गन्धर्व, ऋषि-मुनि, विद्याधर, नाग, किन्नर भी आ-आकर उस उत्सवमें सम्मिलित हुए थे । इन सबके आ जानेपर एक सुवर्णकी पालकीमें बैठी सुमुखी सुन्दरी हेमा हाथोंमें नवरत्नोंसे बनी माला लिये आ पहुँची । सभाके प्राङ्गणमें पहुँचकर उसने वहाँपर बैठे हुए समस्त राजाओं तथा राजपुत्रोंकी ओर ध्यानसे देखा ॥ १-५ ॥ हेमाकी भौंहरूपी धनुषसे छूटे हुए कटाक्ष-रूपी बाणोंसे घायल होकर सबके सब राजे अपने आपको भूल गये । उनको यह भी ज्ञान न रहा कि हम कौन हैं । उसी समय अवन्तिदेशके राजा अग्रबाहुका पुत्र चित्रांगद कुशकी पुत्रीका हरण करके ले भागा । उसने देखा कि राम आदि बड़े-बूढ़े अपने कर्मोंमें व्यस्त हैं । बस, उसने एक मोहनास्त्र छोड़ा । जिससे वहाँ निमन्त्रणमें आये हुए राजे मोहित हो गये । तब वह सुवर्णके समान तेजस्विनी हेमाको रथपर बिठाकर भगा ले गया और वहाँसे एक कोसकी दूरीपर जाकर रुका । उसने अपने मनमें सोचा कि चोरोंकी तरह हेमाको लेकर भाग जाना ठीक नहीं है । इसलिए वहाँ वह ठहर गया ॥६-१०॥ उधर सारी पुरीमें यह हाहाकार मच गया कि राजा उग्रबाहुका पुत्र चित्रांगद हेमाका हरण कर ले गया ॥ ११ ॥ चित्रांगदके द्वारा मोहनास्त्रका संवरण हो जानेपर सब राजे होशमें आकर उठे और अपनी-अपनी सेना लेकर क्रोधसे लाल-लाल आँखें किये अयोध्यासे बाहर निकले ॥ १२ ॥ १३ ॥ वहाँपर ही बैठा हुआ राजा उग्रबाहु अपने पुत्रका कौतुक देख रहा था । उसी समय सब राजे चित्रांगदके पास पहुँचे और उसका रथ चारों ओरसे घेरकर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे । तब चित्रांगदने वायव्य अस्त्र चलाया । जिससे सब राजे अपनी सेना तथा वाहनके साथ आकाशमण्डलमें उड़ने लगे । इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे लव आदि सातों बेटे नगरसे निकल पड़े । उनके अतिरिक्त उत्सव-में आये हुए राजकुमार भी अपनी-अपनी सेना लेकर लड़नेको चल दिये । उस समय चित्रांगदके साथ रोंगटे खड़े कर देनेवाला तुमुल युद्ध होने लगा । रघुवंशके वे बालक चित्रांगदपर विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र चलाने लगे ॥ १४–१८ ॥ अपने बाणोंसे प्रहार बचाते हुए चित्रांगदने अपने शस्त्रोंसे क्षणभरमें यूपकेतुका रथ ध्वस्त कर डाला । उस वीर बालकने थोड़ी ही देरमें सुबाहु, पुष्कर, तक्षक, चित्रकेतु तथा अंगदको भी विरथ कर

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तद्दृष्ट्वा कौतुकं तस्य ज्ञात्वा तत्तपसः फलम् । लवश्चिच्छेद बाणौघैस्तद्धनुर्दिव्यमुत्तमम् ॥२१॥
ततो लवः स्वबाणौघैरुग्रबाहुसुतं मुदा । चकार व्याकुलं शीघ्रं तद्दृष्ट्वा लवचेष्टितम् ॥२२॥
उग्रबाहुर्ययौ योद्धुं लवेन वेगवत्तरः । लवस्तमपि बाणौघैश्चकार विरथं क्षणात् ॥२३॥
उग्रबाहुस्तदा वीरोऽन्ये रथे चारुरोह सः । ववर्ष निशितैर्बाणैर्मूर्छयामास तं लवम् ॥२४॥
लवं विमूर्छितं दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् । तदा ययौ कुशो योद्धुमुग्रबाहुनृपेण वै ॥२५॥
कुशमागतमाज्ञाय ह्यङ्गदाद्यास्तदा पुनः । रथस्था युयुधुस्तेन उग्रबाहुनृपेण वै ॥२६॥
पुनस्तानङ्गदादींश्च चकार विरथान्नृपः । तदा कुशः स्वबाणौघैरुग्रबाहुं नृपं क्षणात् ॥२७॥
चकार विरथं वीरश्चिच्छेद तस्य कार्मुकम् । उग्रबाहुस्तदा व्यग्रो बभूव चकितस्तदा ॥२८॥
तं घृत्वा स कुशस्तोषाद्वादयामास दुन्दुभीम् । अथोग्रबाहुं ससुतं निन्ये श्रीरामसन्निधिम् ॥२९॥
रामस्तं मोचयामास मत्वा तं सुहृदं वरम् । तदा रामो विजयिने कङ्कणं मुनिनाऽर्पितम् ॥३०॥
ददौ कुशाय प्रीत्या स पुरतः कुम्भजन्मनः । कुशस्तदाऽतिशुशुभे वरकंकणमण्डितः ॥३१॥
तदा कुशो मुनिं प्राह नत्वा तं कुम्भसम्भवम् । त्वया लब्धं कुतश्चेदं कङ्कणं वद मां मुने ॥३२॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वाऽगस्तिः प्राह कुशं मुदा । पुरेन्द्ररिपवो वत्स बहवः सागरेण हि ॥३३॥
कृताः स्वांतर्निवासाश्च तदाऽहं नाकपार्थितः । कृत्वा स्वचुलुकेऽब्धि तं पीतवाँल्लीलयैव हि ॥३४॥
ततो लुप्तां द्वीपयोर्हि मर्यादां मध्यवर्तिनीम् । दृष्ट्वा पुनर्नाकिपेन प्रार्थितो हतशत्रुणा ॥३५॥
मूत्रवत्सागरं भीमं सजीवं मुक्तवानहम् । तदाऽब्धिनाऽर्पितं मह्यं कुश तत्कङ्कणं वरम् ॥३६॥
नानारत्नविचित्रं च रवितेजोविराजितम् । तद्रामायार्पितं पूर्वं मया तेन तवार्पितम् ॥३७॥

दिया। इस कौतुकको देखकर लवने समझ लिया कि यह सब चमत्कार उसकी तपस्याका है। यह विचार-कर लवने अपनी बाणवर्षासे चित्रांगदके उस उत्तम धनुषको काट डाला और इतनी शीघ्रतासे बाणवर्षा की कि चित्रांगद व्याकुल हो गया ॥ १९–२२ ॥ ऐसी अवस्थामें उग्रबाहु (चित्रांगदका पिता) स्वयं लवके साथ युद्ध करनेके लिये रणमें उतर पड़ा, किन्तु लवने थोड़ी ही देरमें उसका भी रथ ध्वस्त कर दिया। तब उग्रबाहु तुरन्त एक दूसरे रथपर बैठकर युद्ध करने लगा और अपने तीखे बाणोंकी मारसे लवको मूर्छित कर दिया। उसे मूर्छित देखकर संग्रामभूमिमें हाहाकार मच गया। तभी उग्रबाहुसे युद्ध करनेके लिए रामका दूसरा पुत्र कुश भी आ पहुँचा। कुशको आया देखकर वे अङ्गद आदि रघुवंशी राजकुमार रथोंपर बैठ-बैठकर उत्साहपूर्वक उग्रबाहुसे युद्ध करने लगे। किन्तु उग्रबाहुने अपने युद्धकौशलसे थोड़ी ही देरमें अङ्गद आदि सभी राजकुमारोंके रथोंको नष्ट कर डाला। उधर अपने भ्राताओंपर प्रहार करते देखकर कुशने उग्रबाहुको क्षणभरमें विरथ कर दिया और उसका धनुष काट डाला। उग्रबाहु उस समय आश्चर्यके साथ व्यग्र हो उठा ॥ २३–२७ ॥ तब कुशने झटपट उन बाप-बेटोंको बन्दी बना लिया और अपनी विजयदुन्दुभी बजवा दी। चित्रांगद तथा उग्रबाहुको अपने साथ लेकर कुश रामचन्द्रजीके सामने गये। वहाँ पहुँचनेपर उग्रबाहुको अपना मित्र समझ-कर रामने छुड़ा दिया और विजयी कुशको अगस्त्य ऋषिके समक्ष अगस्त्यका ही दिया हुआ कङ्कण दिया। उस कङ्कणके पहिननेसे कुशकी शोभा और भी बढ़ गयी ॥ २८–३१ ॥ इसके बाद कुशने अगस्त्यऋषिसे कहा—हे मुने ! आपने यह कङ्कण कहाँ पाया था ? सो हमसे कहिए ॥ ३२ ॥ कुशकी बात सुनकर अगस्त्यने कहा—हे वत्स ! आजके बहुत समय पहले इन्द्रके बहुतेरे शत्रु समुद्रके भीतर घर बनाकर रहा करते थे। इन्द्रके प्रार्थना करनेपर मैंने समुद्रको चुल्लूमें भरकर पी लिया। जब इन्द्रने अपने सारे शत्रुओंको मार डाला, तब दो द्वीपोंके मध्यकी सीमाको नष्ट देखकर इन्द्रने मुझसे समुद्रको फिर पूर्ववत् बना देनेकी प्रार्थना की ॥३३–३५॥ तब मैंने मूत्रके मार्गसे फिर समुद्रको सजीव करके बहा दिया। उसी समय समुद्रने मुझे उपहारके रूपमें यह कङ्कण दिया था ॥ ३६ ॥ अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित तथा सूर्यके तेजकी नाईं तेजोमय यह कङ्कण मैंने रामको दे

CC0. In Public Domain. Kirtiram Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा कुशस्तं प्राह वै पुनः । लवस्य जीवनोपायं वद मामद्य भो मुने ॥३८॥
कुशस्य वचनं श्रुत्वाऽगस्तिस्तं प्राह सादरम् । विमूर्च्छितो यदा पूर्वं भरतः पथि पार्थिवैः ॥३९॥
मूर्छितः पतितश्चासित रणे रिपुशरैर्हतः । मुद्गलाश्रमतो वल्ल्यस्तदाऽऽनीताः शुभावहाः ॥४०॥
सौमित्रिणा तदाऽद्य त्वं मुद्गलाश्रमतः पुनः । महौषधी समानीय जीवयैनं लवं जवात् ॥४१॥
अथवा त्वं हनूमंतं प्रेषयस्वाश्रमं मुनेः । एवं यावच्च स मुनिः कथयामास तं कुशम् ॥४२॥
तावत्तद्वचनं श्रुत्वा मुनेर्मारुतिना क्षणात् । समानीयाश्रमाद्वल्लीर्मुद्गलस्य तपोनिधेः ॥४३॥
ताभिस्तं जीवयामास लवं सैन्यसमन्वितम् ।

विष्णुदास उवाच

गुरो तस्यैव च मुनेर्मुद्गलस्याश्रमे कथम् ॥४४॥
मृतसंजीवनीवल्ल्यादिका वल्ल्योऽत्र निर्गताः । कथं ता हि समीपस्था विस्मृत्य द्रोणपर्वतम् ॥४५॥
प्रेषितोऽञ्जनिपुत्रः स तेन जांबवता पुरा । अमुं मत्संशयं छिंधि कृपां कृत्वा मुनीश्वर ॥४६॥

श्रीरामदास उवाच

यदा मातुर्विमोक्षार्थममृतस्य खगाधिपः । कलशं स्वमुखे धृत्वा नाकलोकात्समानयत् ॥४७॥
तदा तत्कलशाद्वेगाद्बिंदुस्तत्रापतत्पुरा । तद्धेतोर्मुद्गलस्यापि मुनेस्तपःप्रभावतः ॥४८॥
आसन् वल्ल्यश्च तस्यैव ह्याश्रमे हि द्विजोत्तम । नैता वेद शुभा कल्लीर्जांबवान्स वनेचरः ॥४९॥
द्रोणाचलं त्वतस्तेन प्रेषितो वायुनन्दनः । इति त्वया यथा पृष्टं तथा ते विनिवेदितम् ॥५०॥
इदानीं शृणु शिष्य त्वं शुभां तां प्राक्तनीं कथाम् । ततो लवादिकाः सर्वे ययुस्ते स्वपुरीं मुदा ॥५१॥
नत्वा मुनिं च रामादींस्तस्थुः श्रीराघवाग्रतः । तता महोत्सवश्चासीत्पुर्यां तल्लवदर्शनात् ॥५२॥
ततो दृष्ट्वा लवं रामो जीवितं वायुजेन हि । समालिंग्य दृढं प्रेम्णा परं तोषमवाप सः ॥५३॥

दिया और रामने इसे आज तुम्हें दिया है ॥ ३७ ॥ मुनिकी बात सुनकर कुशने कहा—अब हमें कोई ऐसा उपाय बतलाइए, जिससे लव जीवित हो जाय ॥ ३८ ॥ वह इस समय शत्रुओंके अस्त्रोंसे घायल होकर रणभूमिमें पड़ा हुआ है। कुशकी प्रार्थना सुनकर अगस्त्यने कहा—उस समय जब कि जनकपुरके मार्गमें राजाओंने भरतको मूर्छित कर दिया था, तब मुद्गल ऋषिके आश्रमसे कल्याणदायिनी लताएँ लक्ष्मण द्वारा आयी थीं। उसी प्रकार आज तुम मुद्गलके आश्रमसे वह लता लाकर लवको भी जीवित कर लो ॥३९-४१॥ अथवा हनुमान्‌जीको भेज दो। ये ही वह लता ले आयेंगे। मुनिकी बात सुनते ही हनुमान्‌जी चल पड़े और थोड़ी ही देरमें मुद्गलऋषिके आश्रमसे वह लता लाकर रख दी और उन्हीं लताओंसे कुशने क्षणमात्रमें सेना समेत लवको जीवित कर लिया। इतनी कथा सुनकर विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! वे मृतसञ्जीवनी लताएँ मुद्गल ऋषिके आश्रमपर आकर कैसे उग गयीं। फिर जब वे इतनी समीप थीं, तब लक्ष्मणकी मूर्छाके समय जाम्बवान्‌ने हनुमान्‌जीको द्रोणाचलपर क्यों भेजा—हे मुनीश्वर ! मेरे ऊपर कृपा करके मेरी इस शंकाका समाधान कीजिये ॥ ४२-४६ ॥ श्रीरामदासने कहा—जिस समय अपनी माताको छुड़ानेके लिए गरुड़ स्वर्गसे चोंचमें अमृतकलश लेकर चले तो मुद्गल ऋषिके आश्रमपर जाते ही कलशमेंसे अमृतकी एक बूँद वहाँ गिर पड़ी। इसीलिए और ऋषिके तपोबलसे उसी स्थानपर वे मृतसञ्जीवनी बल्लरियाँ उग गयीं। वनचर जाम्बवान् इस स्थानकी लताओंको जानते ही नहीं थे। इसी कारण हनुमान्‌जीको द्रोणाचलपर भेजा था ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ जैसा तुमने प्रश्न किया, मैंने उसका उत्तर दे दिया। अच्छा, अब अपनी पुरानी कथापर आ जाओ—उसे सावधान मनसे सुनो। उस औषधिसे जीवित लव आदि वीर लौटकर सहर्ष अपनी अयोध्यापुरीमें आ गये ॥ ४९-५१ ॥ रामकी सभामें पहुँचकर लव आदिने वसिष्ठजीको प्रणाम किया और रामके सामने बैठ गये। लवको देखनेसे उस रोज पुरीभरमें बड़ा उत्साह था। जब रामने देखा कि हनुमान्‌जीके पुरुषार्थसे लव जीवित होकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ततो रामो वायुजाय कंकणे रत्नमंडिते । ददौ परमसंतुष्टस्ताभ्यां स शुशुभे कपिः ॥५४॥
ततो लवाय श्रीरामस्त्वपरं कंकणं वरम् । ददावगस्तिना दत्तं पूर्वं यद्रत्नमंडितम् ॥५५॥
लवस्तेनातिशुशुभे वरकंकणमण्डितः । लवस्तदा मुनिं प्राह नत्वा तं कुम्भसम्भवम् ॥५६॥
त्वया लब्धं कुतश्चेदं कंकणं वद मां मुने । ततस्तद्वचनं श्रुत्वाऽगस्तिः प्राह लवं मुदा ॥५७॥
एकदा दंडकारण्येऽहं स्नातुं हि गतः सरः । तस्मिन्स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा तत्र स्थितः क्षणम्॥५८
एतस्मिन्नंतरे तत्र खात्स्वर्गी समुपागतः । दिव्यं विमानमारूढः शतस्त्रीपरिवेष्टितः ॥५९॥
दिव्यमाल्यांबरधरो दिव्यगन्धादिचर्चितः । स स्वर्गी खात्समायातो यावत्तावत्सरोवरात् ॥६०॥
शवं विनिर्गतं श्रेष्ठं स्फुरितं हि भयंकरम् । दुर्गन्धसहितं दुष्टं प्राप्तं तत्सरसस्तटम् ॥६१॥
अवरुह्य विमानाग्र्यात्स स्वर्गी तच्छवं ययौ । छित्त्वा तच्छवमांसं वै भक्षयामास सादरम् ॥६२॥
ततः पीत्वा जलं स्वर्गी विमानं चारुरोह सः । निमग्नं तच्छवं चापि पुनस्तस्मिन्सरोवरे ॥६३॥
स्वर्गिणं गंतुकामं तं दृष्ट्वाऽहं चातिविस्मितः । अब्रुवं मधुरं वाक्यं रे रे दिव्यस्वरूपधृक् ॥६४॥
क्षणं तिष्ठोत्तरं देहि कौतुकं ते मयेक्षितम् । ईदृशस्ते शवाहारः कथं स्वर्गनिवासिनः ॥६५॥
इति मद्वचनं श्रुत्वा स स्वर्गी प्राह मां तदा । सम्यक् पृष्टं त्वया ब्रह्मन् शृणु सर्वं मयोच्यते ॥६६॥
सुदेवाख्यो हि वैदर्भो नृपतिश्चाभवत्पुरा । तत्पुत्रौ श्वेतसुरथौ श्वेतोऽहं पार्थिवोऽभवम् ॥६७॥
नैव दानं मया तस्मिन् जन्मन्यत्र कृतं कदा । स्वीयराज्यमदोद्धूतः पापकर्मरतः सदा ॥६८॥
ततोऽपुत्री त्वहं राज्ये कृत्वा तं सुरथानुजम् । वार्धके तु वनं प्राप्तस्तपस्तीव्रं समाचरम् ॥६९॥
एकदा स्नातुमुद्युक्तो निमग्नोऽहं सरोवरे । ततो मृतो दिवं प्राप्तस्त्वहं स्वीयतपोबलात् ॥७०॥

सामने बैठे हैं तो प्रेमपूर्वक मारुतिको छातीसे लगा लिया और बड़े प्रसन्न हुए ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इसके बाद रामने हनुमान्‌जीको रत्नोंसे खचित दो कंकण दिये। जिन्हें पहननेसे हनुमान्‌जी बहुत सुन्दर दीखने लगे। फिर रामजीने एक दूसरा कंकण जिसे अगस्त्यजीने दिया था, वह लवको दे दिया। उस बहुमूल्य कंकणको पहिननेसे लव भी अतिशय सुशोभित हुए। तब लवने अगस्त्यजीको प्रणाम करके कहा—॥ ५४—५६ ॥ हे मुनिराज! यह कंकण आपको कहाँ मिला था? सो हमें बतलाइए। इस प्रकार लवका प्रश्न सुनकर अगस्त्य परम प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—॥ ५७ ॥ एक बार मैं दण्डकारण्यमें एक सरोवरपर स्नान करने गया। वहाँ स्नान-नित्यकर्म आदि कर लेनेपर थोड़ी देरके लिए बैठ गया ॥ ५८ ॥ इसी बीच आकाशमार्गसे एक स्वर्गीय प्राणी सैकडों स्त्रियोंसे घिरा हुया दिव्य विमानपर आरूढ़ होकर वहाँ आया ॥ ५९ ॥ वह दिव्य माल्य आदि धारण किये हुए दिव्य गन्धसे चर्चित था। उस स्वर्गीके आते ही सरोवरसे एक भयानक दूषित तथा दुर्गन्धपूर्ण शव निकलकर तटपर आ लगा ॥ ६० ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर वह स्वर्गीय प्राणी अपने विमानसे उतरकर उस शवके पास पहुँचा और उसके मांसको उसके बड़े प्रेमसे खाया। फिर जल पिया और अपने विमनपर जा बैठा। उधर शव फिर डूब गया। उस गमनोन्मुख स्वर्गीके पास पहुँचकर मैंने उससे कहा—हे दिव्यस्वरूपधारिन्! थोड़ी देरके लिए रुककर मेरी बातोंका उत्तर देते जाओ। तुम्हारे इस कार्यको देखकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ है। अच्छा, हमें यह बताओ कि इस प्रकार स्वर्गीय प्राणी होकर भी तुम मुर्दा क्यों खाते हो? ॥ ६२-६५ ॥ मेरी बात सुनकर उसने उत्तर दिया—हे ब्रह्मन्! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। सुनो, मैं सब बतलाता हूँ पूर्वसमयमें विदर्भ देशके अधिपति सुदेव नामके एक राजा थे। उनके श्वेत और सुरथ नामके दो पुत्र थे। जिनमें श्वेत मैं था और राज्य भी मेरे ही हाथोंमें था ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उस जन्ममें राज्यमदसे मत्त होकर मैंने कोई दान नहीं किया। हमेशा पापकर्ममें रत रहा ॥ ६८ ॥ मेरे कोई सन्तति नहीं थी। इसलिए वृद्धावस्थामें अपने छोटे भाई सुरथको मैंने राज्यासनपर बिठा दिया और जंगलमें जाकर कठोर तपस्या करने लगा। एक बार स्नान करनेके लिए एक सरोवरमें डुबकी लगायी तो वहीं डूबकर मर गया। मरनेके बाद अपनी तपस्याके प्रभावसे मैं स्वर्गलोकमें पहुँचा। तपस्याके फलस्वरूप वहाँ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तपसश्च फलैस्तत्र ममासन्सर्वसंपदः । अदृष्टा भक्षितुं किञ्चिन्मया पृष्टः सुराधिपः ॥७१॥
वर्तन्ते विविधास्तत्र मम भोगाः सुदुर्लभाः । कथं नासीद्भक्षणार्थं कथं मेऽत्र सुखं भवेत् ॥७२॥
इति मद्वचनं श्रुत्वा मामिंद्रः प्राह सस्मितः । नैव दानं त्वया भूमौ कृतं राज्यमदेन हि ॥७३॥
अदत्तं लभ्यते नैव नृप पुण्यैः कदेतरैः । अतस्त्वं प्रत्यहं गत्वा विमानेन सरोवरम् ॥७४॥
भक्षयस्व शवं पुष्टं मिष्टान्नैः पोषितं च यत् । चिरकालं भवेत्तच्चे क्षयं यास्यति नैव तत् ॥७५॥
इतीन्द्रवचनं श्रुत्वा स पृष्टश्च पुनर्मया । दिव्यान्नानि कथं चाहं प्राप्नुयां तद्वदस्व माम् ॥७६॥
इति मद्वचनं श्रुत्वा तदेंद्रः प्राह मां पुनः । अधुना दण्डकारण्यं वर्तते हीनमानुषम् ॥७७॥
विंध्यवृद्धिनिषेधार्थमगस्तिः सुरयाचितः । यदा यास्यति पत्न्या वै मुक्त्या काशीं हि दण्डकम् ७८॥
सरस्यस्मिंस्तदा स्नात्वा स्थितं पश्यसि तं मुनिम् । तदा तस्मै कंकणं स्वं देहि तोयैः परिप्लुतम् ॥७९॥
तेन कंकणदानेन दिव्यांधः प्राप्स्यसे नृप । इतींद्रवचनं श्रुत्वा तदारभ्य चिरं मुने ॥८०॥
अत्रागत्य शवाहारः क्रियते वै सदा मया । एतावत्कालपर्यंतं नात्र कश्चिन्मयेक्षितः ॥८१॥
मया दृष्टस्त्वमेवात्र वेद्मि त्वां कुम्भसंभवम् । अद्य त्वया तारितोऽहं दानं स्वीकुरु मे त्विदम् ॥८२॥

अगस्त्य उवाच

इत्थं स्वर्गी स मामुक्त्वा ददौ कंकणमुज्ज्वलम् । मह्यं सार्द्रं ततः स्वर्गं ययौ स्वर्गी मुदा युतः ॥८३॥
तदारभ्य शवं तोयात्तद्बहिस्तन्न ययौ कदा । दिव्यान्नानि तु संप्राप नाकलोके यथासुखम् ॥८४॥
इति यत्कंकणं लब्धं मया लव पुरा वने । अर्पितं राघवायेदं तेन तच्चापि तेऽर्पितम् ॥८५॥

श्रीरामदास उवाच

इत्यगस्त्यवचः श्रुत्वा लवः पप्रच्छ तं पुनः । किमर्थं दण्डकारण्यं तद्ब्रूव विजनं वद ॥८६॥

अगस्त्य उवाच

इक्ष्वाकुवंशसंभूतोऽभून्नृपो विंध्यदक्षिणे । नाम्ना दण्डकेति ख्यातः पापकर्मरतः सदा ॥८७॥

सब चीजें तो विद्यमान थीं, लेकिन खानेके लिए कुछ नहीं था। तब मैने इन्द्रसे कहा—हे देवेन्द्र! यहाँ मेरे भोगनेके लिए तो और सब कुछ है, किन्तु खानेके लिए कुछ भी नहीं दीखता। बताइए, इस तरह मैं क्योंकर सुखी रह सकूँगा ॥ ६९-७२ ॥ मेरी बातको सुनकर मुस्कराते हुए इन्द्र कहने लगे—तुमने राज्यमद वश पृथ्वीपर कोई दान नहीं किया था। बिना दिये कुछ भी नहीं मिलता। इसलिए तुम प्रतिदिन विमानसे जाकर उस मिष्टान्नसे परिपुष्ट अपने शरीरको खा आया करो। वह बहुत दिनों तक नष्ट न होकर ज्योंका त्यों बना रहेगा ॥ ७३-७५ ॥ इस प्रकार इन्द्रकी बात सुनकर मैंने कहा—यह बतलाइये कि मुझे स्वर्गीय अन्न किस तरह प्राप्त होंगे? मेरी बात सुनकर इन्द्रने उत्तर दिया कि अभी तो दण्डकारण्य मनुष्यविहीन है। जब विन्ध्य पर्वतकी वृद्धि रोकनेके लिए अगस्त्यजी देवताओंके प्रार्थना करनेपर काशी छोड़कर दण्डकारण्यको जायँ, तब तुम उसी सरोवरमें स्नान करके अपना कंकण उन ऋषिको दे देना ॥७६-७९ ॥ उस कंकणके दानसे तुम्हें स्वर्गीय अन्न मिलने लगेगा। अतएव इंद्रके आज्ञानुसार मैं बहुत दिनोंसे आकर यह शव खाया करता हूँ। इतने दिन बीत गये, किन्तु यहाँ मुझे कोई नहीं दिखायो पड़ा ॥ ८० ॥ ८१ ॥ आज तुम्हीं दीख रहे हो। इससे ज्ञात होता है कि तुम अगस्त्य ऋषि ही हो। आज तुमने मेरा उद्धार कर दिया। अब कृपा करके मेरे दानको स्वीकार करो ॥ ८२ ॥ अगस्त्यने कहा कि इस तरह कहकर उस स्वर्गीय प्राणीने अपने कंकण उतारकर हमें दे दिये और प्रसन्न मनसे विमानपर सवार होकर स्वर्गलोकको चला गया। तबसे वह शव उस सरोवरमें कभी नहीं उतराया और वह स्वर्गी स्वर्गलोकमें दिव्य अन्नोंको पाने लगा। हे लव! मैंने जिस कङ्कणको उस समय दण्डकारण्यमें पाया था, उसे रामको दिया और रामने आज आपको दे डाला है। श्रीरामदासने कहा—तब लवने अगस्त्यसे पूछा कि उस वनका नाम दण्डक यह नाम क्यों पड़ा? अगस्त्य कहने

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma, Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एकदा स वनं यातो मृगयार्थं स्वसेनया। ततो दृष्ट्वा मृगं राजा मृगपृष्ठे प्रदुद्रुवे ॥८८॥
एकाकी हयमारूढो देशाद्देशान्तरं ययौ। एवं हि गच्छतस्तस्य मृगोऽदृश्योऽभवत्तदा ॥८९॥
ततः सोऽतितृषाक्रांतः प्रययौ वै जलाशयम्। तत्र पीत्वा जलं स्वच्छं स राजा सरसस्तटे ॥९०॥
अज्ञात्वा स्वगुरोश्चेति भृगोराश्रममाययौ। तत्र तातविहीनां तामरजस्कां भृगोः सुताम् ॥९१॥
दृष्ट्वा चन्द्राननां राजा सोऽभूत्कामविमोहितः। ततस्तां प्रार्थयामास रत्यर्थं साऽब्रवीन्नृपम् ॥९२॥
स्ववशा नृप नैवाहं ताताधीनाऽस्मि सांप्रतम्। बहिर्भृगुस्तव गुरुर्गतस्त्वां वेद्म्यहं नृपम् ॥९३॥
यदि मामिच्छसि त्वं हि तर्हि तं स्वगुरुं भृगुम्। प्रार्थयित्वा भज सुखं मां पत्नीं त्वं विधाय च ॥९४॥
इत्युक्तोऽपि तया राजा दंडस्तां कामपीडितः। भुक्त्वा सुखं बलादेव जगाम नगरीं निजाम् ॥९५॥
ततोऽरजस्का सा बाला दृष्ट्वा तातं समागतम्। शोचन्ती सकलं वृत्तं श्रावयामास विह्वला ॥९६॥
तद्वृत्तं स मुनिः श्रुत्वाऽञ्जलौ कृत्वा जलं क्रुधा। अब्रवीत्स्वसुतां बालां सांत्वयन् रक्तलोचनः ॥९७॥
दंडेन सह दंडस्य राज्यं वै शतयोजनम्। भवत्वद्य क्षणाद्दग्धं मद्वाक्याच्च समंततः ॥९८॥
हीनोदकं तथा चास्तु तथा नष्टचराचरम्। इति तच्छापमाकर्ण्य तातं सम्प्रार्थ्य बालिका ॥९९॥
प्रार्थयामास शापस्य सवाऽवधिं विनयान्विता। ततो भृगुः सुतामाह यदा यास्यति कुंभजः ॥१००॥
मुनिः काश्यास्त्वमुं देशं तदाऽयं सजलो भवेत्। देशस्तथाऽत्र वासं हि करिष्यंति मुनीश्वराः ॥१०१॥
अरण्यं दंडहेतोर्हि जातं तस्मात्सदा नराः। अमुं देशं वदिष्यन्ति दंडकारण्यमेव हि ॥१०२॥
यदा भविष्यत्यग्रेऽत्र रामागमनमुत्तमम्। भविष्यन्ति तदाऽग्रेऽत्र नानाक्षेत्राणि दण्डके ॥१०३॥
रामप्रसादात् क्षेत्राणि भविष्यन्ति ततो जनाः। रामक्षेत्रमिति सदा वदिष्यन्ति हि दण्डकम् ॥१०४॥
मुनिरामप्रसादाच्च देशोऽयं पूर्ववत्पुनः। भविष्यत्युत्तमः पुण्यः सौख्यदश्च मनोरमः ॥१०५॥

रुगे—इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न दण्डक नामका एक बड़ा पापी राजा था। वह सदा पापकममें रत रहा करता था ॥ ८३-८७ ॥ एक बार वह शिकार खेलनेके लिए अपनी सेनाके साथ वनमें गया। वहाँ एक मृगके पीछे राजाने अपना घोड़ा दौड़ाया। वह अकेला ही उस मृगके पीछे-पीछे भागता हुआ देशान्तरमें जा पहुँचा और वहाँ वह मृग गायब हो गया। इसके बाद बहुत प्यासा वह राजा एक जलाशयके तटपर गया। वहाँ जल पिया, किन्तु उसे यह नहीं ज्ञात हुआ कि मैं अपने गुरु भृगुके आश्रमपर पहुँच गया हूँ। वहाँ भृगुकी कन्या थी। जिसको कि अभी रजोधर्म नहीं हुआ था। उस चन्द्रमाके सदृश मुखवाली (चन्द्रानना) कन्याको देखकर राजा काममोहित हो गया और उसके समीप जाकर रतिके लिए प्रार्थना की। कन्याने उत्तर दिया कि हे राजन्! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। इस समय मेरे ऊपर पिताका अधिकार है और भृगु (मेरे पिता) इस समय कहीं बाहर गये हुए हैं। मैं आपको जानती हूँ ॥ ८८-९३ ॥ यदि आप मुझे चाहते हों तो अपने गुरु (भृगु) से जाकर कहें और मुझे अपनी पत्नी बनाकर आनन्दके साथ भोग करें। उसके ऐसा कहनेपर भी राजाने एक न सुनी और हठात् उसके साथ भोग करके अपनी नगरीको लौट गया। इसके अनन्तर जब उसके पिता भृगु घर आये तो विलाप करती हुई उस अरजस्का कन्याने सारा समाचार कह सुनाया। इस वृत्तान्तको सुनते ही भृगु मारे क्रोधके लाल हो गये और अञ्जलीमें जल भरकर कन्याको सान्त्वना देते हुए उन्होंने शाप दिया कि दण्डकके साथ-साथ उसका सौ योजन राज्य चारों ओरसे जलकर भस्म हो जाय ॥ ९४-९८ ॥ उतनी जगहपर जल भी न रहे और न कोई जीव ही निवास करे। इस प्रकार शाप सुनकर कन्याने विनयपूर्वक प्रार्थना की कि अपने इस शापकी अवधि भी नियत कर दीजिये। कन्याके प्रार्थना करनेपर भृगुने कहा कि जब अगस्त्य ऋषि काशी छोड़कर विन्ध्यके उस पार चले जायँगे। उस समय वह स्थान सजल हो जायगा और वहाँ बड़े-बड़े ऋषि निवास करेंगे। राजा दंडकके दुराचारसे उस देशकी ऐसी दशा हुई है। इसीलिए लोग उसे दण्डकारण्य कहा करेंगे ॥९९-१०२॥ आगे चलकर जब रामचन्द्रजी उस देशमें जायेंगे तो उसमें कितने ही क्षेत्र बन जायँगे और तबसे लोग उसी दण्डकको रामक्षेत्रके नामसे पुकारेंगे ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ अगस्त्य

CC-0. In Public Domain. Pratibha Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देशेभ्यः सकलेभ्यश्च सुपुण्यं दण्डकं भवेत् । दण्डकेन समो देशो न भूतो न भविष्यति ॥१०६॥
इति तां बालिकामुक्त्वा भृगुस्तप्तुं हिमालयम् । ययौ तां मुनये दत्त्वा विधिना मुनिसंवृतः ॥१०७॥
भृगोः शापाच्च दण्डेन दग्धं तद्राज्यमुत्तमम् । शतयोजनमानं तदभवद्धि समंततः ॥१०८॥
मद्रामागमनाभ्यां च ततः स्वस्थं बभूव तत् । पूर्ववद्दंडकारण्यं चराचरासमाकुलम् ॥१०९॥
इति त्वया यथा पृष्टे तथा लव मयोदिते । कंकणस्य दण्डकस्य विचित्रे त्वां कथानके ॥११०॥

श्रीरामदास उवाच

इत्यगस्तिमुखाच्छ्रुत्वा लवस्तुष्टोऽभवत्तदा । नत्वा मुनिं च श्रीरामसेवायां तत्परोऽभवत् ॥१११॥
अथ रामश्चोत्सवेन तस्मै चित्रांगदाय ताम् । हेमां ददौ विवाहेन महामंगलपूर्वकम् ॥११२॥
पारिबर्हं ददौ कोटिसंमितं वारणादिकम् । महान्महोत्सवश्चासीदयोध्यायां प्रभोर्गृहे ॥११३॥
ततो विसर्जयामास चोग्रबाहुं नृपं प्रभुः । मुनयः पार्थिवाश्चापि ययुः स्वं स्वं स्थलं प्रति ॥११४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे बाल्मीकीये राज्यकांडे उत्तरार्धे
हेमास्वयंवरो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः

(राम द्वारा ब्राह्मणोंको रामनाथपुर राज्यका दान)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामस्त्वयोध्यायां रंजयामास जानकीम् । जुगोप मेदिनीं कृत्स्नां सप्तसागरमेखलाम् ॥ १ ॥
राममुद्रां विना कस्य साकेते शस्त्रधारिणः । नैवासीत्सुप्रवेशश्च रामराज्ये कदाचन ॥ २ ॥
नैवासीन्निर्गमश्चापि विना मुद्रां कदा बहिः । राममुद्रांकितं पत्रं गृहीत्वा ते नृपोत्तमाः ॥ ३ ॥
गमनागमने चक्रुर्भूम्यां कुत्राप्यकुण्ठिताः । राममुद्रास्वरूपं च ते वदामि शृणुष्व तत् ॥ ४ ॥

मुनि तथा रामचन्द्रकी कृपासे वह देश फिर ज्योंका त्यों हो जायगा और वहांके लोग सुखी हो जायँगे। फिर वहाँ सुन्दरता दिखायी देने लगेगी। वह पृथ्वीके समस्त देशोंसे पवित्र देश माना जाने लगेगा ॥ १०५ ॥ उस बालिकासे भृगुने कहा–भविष्यमें लोग कहेंगे कि दण्डकारण्यके समान न कोई देश हुआ है और न होगा ॥१०६॥ ऐसा कहकर भृगुने उसे एक मुनिको सौंप दिया और स्वयं बहुतसे ऋषियोंके साथ तपस्या करनेको हिमालय-पर्वतपर चले गये। इस प्रकार भृगुके शापसे दण्डकका सौ योजन राज्य जल-भुनकर राख हो गया ॥ १०७ ॥ ॥ १०८ ॥ हमारे और रामके आगमनसे वह फिर पूर्ववत् हो गया और उसमें विविध प्रकारके जीव-जन्तु आकर निवास करने लगे। इस प्रकार हे लव ! तुमने हमसे जो प्रश्न किये, सो दण्डकारण्य तथा इस कंकण-विषयक कथानक कह सुनाया ॥ १०९ ॥ ११० ॥ श्रीरामदासने कहा–इस तरह अगस्त्यकी बात सुनकर लव परम प्रसन्न हुए और अगस्त्यजीको प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रकी सेवामें लग गये ॥ १११ ॥ इसके अनन्तर रामने उत्सवके साथ उस हेमा कन्याका विधिवत् ससमारोह विवाह करके चित्राङ्गदको दे दिया। उन्होंने कन्याके विवाहमें दहेजस्वरूप बहुतसे हाथी-घोड़े आदि करोड़ोंकी सम्पत्तिका दान दिया। इसके बाद महाराज उग्रबाहुको विदा किया और निमंत्रणसे आये हुए राजे तथा ऋषिगण अपने-अपने स्थानको लौट गये ॥ ११२–११४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'-भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

श्रीरामदास बोले—इसके बाद रामचन्द्र सीताको प्रसन्न करते हुए सप्तसागर मेखलावाली पृथ्वीकी रक्षा करते रहे। रामके राज्यमें कोई भी शस्त्रधारी मनुष्य बिना रामुद्रा-अंकित पत्र लिये नहीं आता था और बिना मुद्राके कोई बाहर भी नहीं जाने पाता था। राममुद्रासे चिह्नित पत्र लेकर संसार भरके राजे जहाँ चाहते

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तिर्यगूर्ध्वं पञ्चदश रक्ता रेखाः प्रकल्पयेत् । पीता प्रथमिका पंक्तिश्चतुर्दिक्षु प्रकारयेत् ॥ ५ ॥
पंक्तिर्द्वितीया शुभ्रैव ज्ञातव्या च तथाऽष्टमी । ततश्चेशदिगारभ्य तृतीयायां प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥
वक्ष्यमाणपदान्येव कृष्णानि हि समाचरेत् । आरंभश्चोत्तरस्यां हि समाप्तिर्दक्षिणे स्मृता ॥ ७ ॥
पश्चिमाभिमुखा स्थाप्या मुदा तत्रात्मसम्मुखा । पूर्वास्येन सदा स्थेयं तदा कर्त्रा विनिश्चयात् ॥ ८ ॥
प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठसप्तमे । अष्टमं नवमं चैव तथैकादशमुच्यते ॥ ९ ॥
तमश्चतुर्थ्यां पंक्तौ हि चतुर्थं षष्ठसप्तमे । तथैकादशमं ज्ञेयं पञ्चमायाः क्रमोऽधुना ॥१०॥
प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठसप्तमे । नवमैकादशे चापि षष्ठायाश्च क्रमोऽधुना ॥११॥
प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठमुत्तमम् । नवमैकादशे चापि सप्तमी सकलाऽसिता ॥१२॥
नवम्याः प्रथमं कृष्णं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठं हि सप्तमं चापि नवमं दशमं स्मृतम् ॥१३॥
तथैव द्वादशं चापि दशम्याश्च क्रमोऽधुना । चतुर्थं च तथा षष्ठं सप्तमार्के तथाऽसिते ॥१४॥
एकादश्याश्च प्रथमं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठाष्टनवमान्येव दशमार्के तथाऽसिते ॥१५॥
द्वादश्याः प्रथमं कृष्णं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठं च सप्तमं चापि ह्यष्टमं नवमं तथा ॥१६॥
दशमार्के तथा प्रोक्ता कृष्णा कृत्स्ना त्रयोदशी । एवं बुद्ध्या पूरयित्वा राजा रामेति वै स्फुटम् ॥१७॥
सितवर्णं रामनाममुद्रायां हि निरीक्षयेत् । एवं राममुद्रिकायाः स्वरूपं ते मयोदितम् ॥१८॥
एवं मुद्रांकितां रामः शिलां विप्रेभ्य आदरात् । ददौ साद्यापि भूम्यां हि रामनाथपुरेऽस्ति हि ॥१९॥

विष्णुदास उवाच

किमर्थं भूसुरेभ्यश्च राघवेण समर्पिता । रामनाथपुरे पूर्वं स्वीयमुद्रांकिता शिला ॥२०॥
तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्वाद्य मां गुरो । आश्चर्यं च त्वया प्रोक्तं श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् ॥२१॥

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवं श्रुत्वा विप्रा वांछितदायिनम् । हर्षाद्ब्रह्मपुरस्थास्ते दाक्षिणात्या द्विजोत्तमाः ॥२२॥

आते-जाते, कहीं भी उन्हें रोक नहीं थी । अब मैं तुम्हें राममुद्राका स्वरूप बताता हूँ, सो सुनो ॥ १-४ ॥ लाल रंगकी खड़ी-बेड़ी पन्द्रह रेखाएँ खींचे । उसमें चारों ओरकी पहली पंक्ति पीले रङ्गसे रंगे ॥ ५ ॥ दूसरी और आठवीं पंक्ति सफेद ही रहने दे । इसके बाद ईशानकोणसे लेकर तीसरी रेखातक आगे कही जानेवाली पंक्तियाँ काले रंगसे लिखे । लिखावट उत्तरकी तरफसे प्रारम्भ करके दक्षिणमें समाप्त करनी चाहिए ॥६॥७॥ मुद्राका मुख सदा सामने अर्थात् पश्चिमाभिमुख बनाये और स्वयं पूर्वको ओर मुख करके बैठे ॥ ८ ॥ पहली, दूसरी, चौथी, छठवीं, सातवीं, आठवीं, नवीं, ग्यारहवीं और पाँचवीं रेखाकी चौकियाँ तथा पहली, दूसरी, चौथी, छठवीं, नवीं, ग्यारहवीं तथा सातवीं चौकी यह सब काले रङ्गकी रहेंगी । फिर नवीं रेखाकी पहली, दूसरी, चौथी, छठीं और सातबीं चौकी भी काले रङ्गकी रहेगी ॥ ९-११॥ फिर ग्यारहवीं रेखाकी पहली, दूसरी, चौथी, छठीं, आठवीं, नवीं तथा दसवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहेगी । बारहवीं रेखाकी पहली, तीसरी, दूसरी, चौथी, छठीं, सातवी, आठवीं, नवीं, दसवीं, बारहवीं तथा तेरहवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहेगी । इस प्रकार अपनी बुद्धिमें उपर्युक्त कोष्ठकोंको पूर्ण करनेसे "राजा राम" यह शब्द साफ साफ सफेद वर्णोंमें लिख जायगा ॥ १२-१७ ॥ इस तरह मैंने तुम्हें रागमुद्राका स्वरूप बतलाया । इसी प्रकारकी मुद्रासे चिह्नित शिला रामने ब्राह्मणोंकी दानस्वरूप दी थी, जो आज भी रामनाथपुरमें रहनेवाले बाह्मणोंके पास विद्यमान है ॥१८॥१९॥ विष्णुदासने पूछा कि रामने रामनाथपुरवाले उन ब्राह्मणोंको वह अपनी मुद्रासे अङ्कित शिला किस लिये दी थी ? यह सब कथा विस्तारपूर्वक हमें बतलाइये । आपने यह आश्चर्यभरी बात कह दी । इसका पूरा विवरण मैं आपके ही मुखसे सुनना चाहता हूँ ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रीरामदास कहने लगे कि एक समय रामचन्द्रकी यह

CC-0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ययुस्ते राघवं द्रष्टुमयोध्यायां मुदान्विताः ॥२३॥
गन्धर्वराजगेहे स भोजनं कर्तुमुद्यतः । स्नात्वा तत्र सुहृद्गेहे सीतया बन्धुभिः सुखम् ॥२४॥
पुत्राभ्यां भोजनं कर्तुमासने संस्थितोऽभवत् । गन्धर्वराजः श्रीरामं पूजयामास सादरम् ॥२५॥
परिवेषितानि पात्राणि सुहृत्स्त्रीभिस्तदा जवात् । दिव्यान्नैर्मधुरैश्चित्रैः पक्वान्नैर्विविधैरपि ॥२६॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा रामनाथपुरस्थिताः । सुहृद्गेहे गतं रामं श्रुत्वा तत्र ययुर्मुदा ॥२७॥
गन्धर्वराजद्वारस्थैर्दूतैः श्रीराघवाय हि । भूसुराणामागमनं तदा शीघ्रं निवेदितम् ॥२८॥
तद्दूतवचनं श्रुत्वा राघवश्चातिसम्भ्रमात् । प्रत्युद्गम्य स्वयं विप्रान्ननाम शिरसा प्रभुः ॥२९॥
गन्धर्वराजगेहे तान्नीत्वा दत्त्वाऽऽसनानि हि । स्नातुमाज्ञापयत्सर्वान् भोजनार्थं रघूत्तमः ॥३०॥
तदा ते मन्त्रयामासुर्विप्राः सर्वे परस्परम् । भोजनात्पूर्वमेवैनं याचनीयं स्ववांछितम् ॥३१॥
केचिदूचुस्तदा विप्रा निर्बंध च रघूत्तमे । नोपेक्षाऽस्ति सदैवायं ददाति द्विजवांछितम् ॥३२॥
व्रतमेवास्य रामस्य द्विजवांछितपूरणम् । एवं तान्मन्त्रयमाणांश्च रामो दृष्ट्वाऽब्रवीद्वचः ॥३३॥
ज्ञातं मयाऽभिलषितं युष्माकं मुनिपुङ्गवाः । राज्येच्छया समायाताः किमर्थं श्रमिता द्विजाः ॥३४॥
कथं न प्रेषितः शिष्यस्तद्वाक्येनैव वै मया । वांछाऽभविष्यद्युष्माकं पूरिता क्षणमात्रतः ॥३५॥
एवं तान्ब्राह्मणानुक्त्वा लक्ष्मणं प्राह राघवः । मया ब्रह्मपुरस्याद्य विप्रेभ्यो राज्यमर्पितम् ॥३६॥
शिलायां लिख मन्नाम दानं दत्तमिदं त्विति । तथेति रामवाक्येन लक्ष्मणश्चातिसम्भ्रमात् ॥३७॥
दृषत्कारान्समाहूय शिलामानीयतामिति । शीघ्रमाज्ञापयामास ते जग्मुर्वेगवत्तराः ॥३८॥
एतस्मिन्नंतरे विप्राः प्रोचुस्ते राघवं मुदा । कृत्वाऽशनं लेखनीया शिला पश्चाद्रघूत्तम ॥३९॥
किमर्थं क्रियते राम त्वरा लेखनकर्मणि । परिवेषितानि पात्राणि वयं चापि क्षुधार्दिताः ॥४०॥

प्रशंसा सुनकर कि वे ब्राह्मणोंकी कामना पूर्ण करते हैं। दक्षिण देशके रहनेवाले बहुतसे ब्राह्मण हजारोंकी संख्यामें एकत्रित होकर रामसे मिलने गये। उधर राम प्रसन्न मनसे गन्धर्वराजके भवनमें भोजन करने गये हुए थे। सीता तथा भ्राताओंके साथ उन्होंने वहाँ ही स्नान किया था और अपने दोनों बेटोंके साथ चोकोपर भोजन करने बैठे थे। गन्धर्वराजने सादर रामका पूजन किया ॥ २२–२५ ॥ गन्धर्वराजके घरकी स्त्रियों तथा मित्रोंने शीघ्रतासे दिव्यान्न तथा विविध प्रकारके पकवान आदि परोसना प्रारम्भ किया ॥ २६ ॥ इसी समय रामनाथपुरके निवासी विप्रगण रामके द्वारपर आये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि राम अपने सम्बन्धीके घर गये हैं। बस, वे लोग भी गन्धर्वराजके यहाँ जा पहुँचे और द्वारपालोंने रामको यह खबर दी कि रामनाथपुरके ब्राह्मण आये हैं। दूतकी बात सुनकर स्वयं राम तुरन्त उठे और उन लोगोंके पास जाकर प्रणाम किया और उन्हें गन्धर्वराजके घरमें ले गये। आसनपर बिठाकर उनसे स्नान-भोजन करनेके लिये कहा ॥ २७–३० ॥ उस समय उन सबोंने मंत्रणा करके निश्चय किया कि भोजन करनेके पहले ही हम लोग अपनी माँग उपस्थित कर दें। उनमेंसे कुछने कहा कि इतनी जल्दी क्या है, राम कभी याचकोंकी उपेक्षा नहीं करते। बल्कि वे सदा ब्राह्मणोंकी याञ्चा पूरी करनेको तैयार रहते हैं। इन रामका यही व्रत है कि ब्राह्मणोंकी माँगें पूर्ण किया करें। इस प्रकार परस्पर सलाह करते हुए ब्राह्मणोंको देखकर रामने कहा कि हम आप लोगोंकी इच्छाको जान गये हैं। आप लोग राज्यकी इच्छासे मेरे पास आये हैं। सो इसके लिए आपने इतना परिश्रम क्यों किया ? ॥ ३१–३४॥ आप अपने किसी शिष्यको ही भेज दिये होते तो मैं क्षणभरमें आपकी इच्छा पूर्ण कर देता ॥ ३५ ॥ इस तरह उन ब्राह्मणोंसे कहकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि आज मैंने ब्रह्मपुरका राज्य ब्राह्मणोंको दान दे डाला है। एक शिलापर मेरा नाम लिखाओ और उसमें यह भी लिखवा दो कि मैंने ब्राह्मणोंको ब्रह्मपुरका राज्य दान दे दिया हे। "बहुत अच्छा" कहकर लक्ष्मणने तुरन्त पत्थर खोदनेवाले सन्तरासोंको बुलवाया और एक बड़ी शिला मँगवायी। दूत लक्ष्मणके आज्ञानुसार तुरन्त चल पड़े ॥ ३६–३८ ॥ तब उन विप्रोंने रामसे

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तत्तेषां वचनं श्रुत्वा फलभारान्विचित्रितान् । पुरस्तात्स्थापयामास विप्राणां वरमादरात् ॥४१॥
उवाच मधुरं वाक्यं राघवः स्मितपूर्वकम् । फलानीमानि भो विप्रा भक्षयध्वं यथासुखम् ॥४२॥
लेखयित्वा शिलायां हि यदा मुद्रां करोम्यहम् । तदाऽशनादिकं कर्म सर्वमन्यत्करोम्यहम् ॥४३॥
क्षणं वित्तं क्षणं चित्तं क्षणिकं च स्वजीवितम् । यमोऽतिनिर्घृणः सोऽस्ति धर्मं शीघ्रमतश्चरेत् ॥४४॥
शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत् । लक्षं त्यक्त्वा तु दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा शिवं भजेत् ४५
कोटिविघ्नानि गीतायां दशकोटीनि जाह्नवीम् । शतकोटीनि जायन्ते दाने विघ्नानि भूसुराः ॥४६॥
अतः कार्या त्वरा दाने सर्वदा तु नरोत्तमैः । निद्रायाः पूर्वकाले तु निद्रायाः परतस्तथा ॥४७॥
भोजनात्पूर्वकाले तु भोजनात्परतस्तथा । क्षणे क्षणे मतिर्भिन्ना जायतेऽत्र द्विजोत्तमाः ॥४८॥
तस्मात्कार्या त्वरा दाने मतिर्या प्रथमे क्षणे । कृता क्षणेनापरे साऽस्त्येतदेव मतं मम ॥४९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दृषत्कारैः शिला वरा । समानीता गण्डकीजा नवहस्ता समन्ततः ॥५०॥
तस्यान्ते लेखयामासुर्दृषत्काराः स्फुटाक्षरैः । सूर्यवंशोद्भवेनाथ सप्तद्वीपेश्वरेण हि ॥५१॥
त्रेतायां दाशरथिना रामराज्ञा द्विजोत्तमान् । मया ब्रह्मपुरस्यैव राज्यदानं कृतं मुदा ॥५२॥
यावत्तपति खे भानुर्यावदस्त्यत्र मे कथा । यावत्प्रवर्तते वायुस्तावद्दानं ममास्त्विदम् ॥५३॥
सम्मान्योऽयं धर्मसेतुर्द्विजानां काले काले पालनीयो भवद्भिः ।
सर्वानेतान् भाविनः पार्थिवेंद्रान् भूयो भूयो याचते रामचन्द्रः ॥ ५४ ॥
एवं विलेख्य श्रीरामः शिलायां निजमुद्रिकाम् । रामनामांकितां वायुपुत्रेणास्पर्शयत्तदा ॥५५॥
आंजनेयस्य भारेण शिला जाता तदङ्किता । राजारामेति तस्यान्ते ददृशुश्च स्फुटाक्षरम् ॥५६॥

कहा कि आप पहले भोजन कर लीजिये, तब शिलालेख लिखवाइयेगा। हे राम! आप लिखनेको इतनी जल्दी क्यों कर रहे हैं? पात्रोंमें सामग्रियाँ परोसी जा चुकी हैं और हम लोग भी भूखे हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उनकी बात सुनी तो रामने बोझके बोझ विविध प्रकारके फल मँगवाकर उनके सामने रखवा दिये और कहा–हे विप्रगण! आप लोग सुखसे यह फल खाइए। हम तो शिला लिखवाकर और उसपर अपनी मुहर अंकित कर देनेके बाद ही भोजन करेंगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ धन क्षणस्थायी है, चित्तवृत्ति क्षणिक है, अपना जीवन भी क्षणभंगुर है और यमराज बड़ा निर्दयी है। इसलिये जितने शीघ्र हो सके, धार्मिक काम पूर्ण कर डाले ॥ ४४ ॥ सौ काम सामने हों तो उन्हें त्यागकर पहले भोजन करना चाहिए, सहस्र कामोंको त्यागकर पहले स्नान करना चाहिए, लाख कामोंको त्याग करके पहले दान करना चाहिए एवं करोड़ों कामोंको छोड़कर पहले शिवका भजन करना चाहिए ॥ ४५ ॥ हे विप्रो! गीताका पाठ करते समय करोड़ विघ्न, गंगास्नानमें दस करोड़ विघ्न और दान-कर्ममें सौ करोड़ विघ्न आकर उपस्थित होते हैं ॥ ४६ ॥ इसलिये सज्जनोंको चाहिए कि दानमें सर्वदा शीघ्रता करें। निद्राके पूर्वकालमें, निद्रासे उठनेके बाद, भोजनके पहले और भोजनके बाद क्षण क्षणमें बुद्धि बदला करती है। इसीलिए प्रथम क्षणमें जैसी अपनी बुद्धि हो गयी हो, उसके अनुसार दानकर्म शीघ्र कर डालना चाहिये। यह मेरा निजी मत है ॥ ४७–४९ ॥ उसी समय संतरासोंने नौ हाथकी लम्बी-चौड़ी गण्डकी नदीकी एक अच्छी-सी शिला लाकर रामके सामने रख दी ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर सन्तरासोंने साफ-साफ अक्षरोंमें उस शिलापर खोदकर लिखा कि "सूर्यवंशमें उत्पन्न और सप्तद्वीपके अधीश्वर महाराज दशरथका पुत्र मैं राजा राम प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मपुरका राज्य दान करके ब्राह्मणोंको दे रहा हूँ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ जब तक कि आकाशमें सूर्य देवता तपते रहें, जब तक संसारमें मेरा नाम रहे और जब तक कि पवन चलता रहे, तब तक मेरा यह दान दान माना जाय ॥ ५३ ॥ मेरे आगे जो राजे होनेवाले हैं, उनसे मैं राम बार-बार यही भीख माँगता हूँ कि "ब्राह्मणोंके इस धर्मसेतुकी आप लोग सदा रक्षा करते रहिएगा" ॥ ५४ ॥ इस प्रकार लिखवाकर रामने हनुमानजीके द्वारा उसपर अपनी रामनामांकित मुहर लगवा दी ॥ ५५ ॥ हनुमानजीके भारसे शिलापर रामकी मुहर छप गयी और उसमें "राजा राम" यह शब्द साफ-

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रामनाथेन यद्दत्तं पुरदानं द्विजोत्तमान् । रामनाथपुरं चेति तदारभ्य प्रथां गतम् ॥५७॥
तस्य ब्रह्मपुरमिति नाम प्राथमिकं स्मृतम् । रामनाथपुरं चेति तस्यैवाख्याऽपरा स्मृता ॥५८॥
शिलाभारमितं द्रव्यं दक्षिणार्थं निधाय सः । तां शिलां पूज्य विप्रेभ्यः श्रीरामः सीतया ददौ ॥५९॥
ततोऽब्रवीद्वायुपुत्रं भोजनानन्तरं त्वया । विमानेन शिला नेया रामनाथपुरं द्विजैः ॥६०॥
कंबुकण्ठं ततः पत्रं लेखयामास राघवः । ब्राह्मणानां त्वया कार्यं साहाय्यं सर्वदेति वै ॥६१॥
ततस्तुष्टा द्विजाः सर्वे ददुराशीः सहस्रशः । चकार भोजनं रामस्ततस्तैः परिवेष्टितः ॥६२॥
ततः सर्वे विमानेन ययुर्विप्राः पुरं प्रति । तान्पृष्ट्वा मारुतिश्चापि विमानेन ययौ पुनः ॥६३॥
एवं चकार दानानि सप्तद्वीपांतरेषु हि । सहस्रशो रामचन्द्रस्तेषां संख्या न विद्यते ॥६४॥
रामनाथपुरस्थास्ते विप्राः कालांतरेण वै । दुष्टराज्यभयादग्रे तां शिलां भयविह्वलाः ॥६५॥
तटाके प्रक्षिपिष्यन्ति ततः कष्टं भजन्ति ते । मर्तुकान् द्विजान्दृष्ट्वा तटाकान्मारुतिः पुनः ॥६६॥
बहिर्निष्कासयति शिलामग्रे कालान्तरेण हि ।

विष्णुदास उवाच

किं कष्टं भूसुरानग्रे भविष्यति स्वजीविते ॥६७॥
यतस्ते त्यक्तुकामाश्च भविष्यन्ति वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

अग्रे कश्चिद्दुष्टराजा भविष्यत्यवनीतले ॥६८॥
स तान्निबध्य विप्रांश्च तद्राज्यहरणेच्छया । वदिष्यति कलौ राजा युष्माकं दानमर्पितम् ॥६९॥
यदि रामेण तद्दानपत्रं मे दृष्टिगोचरम् । करणीयं न चेच्छीघ्रं यावत्कालं पुरोद्भवम् ।७०॥
युष्माभिर्वसु यद्भुक्तं तत्सर्वं दीयतां मम । नोचेत्सर्वान्वधिष्यामि भूसुराणां यमस्त्वहम् ॥७१॥
ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे श्रुत्वेदं नृपतेर्वचः । भयभीता मंत्रयित्वा नृपं प्रोचुस्त्वरान्विताः ॥७२॥

साफ दिखायी देने लगा ॥ ५६ ॥ रामने ब्राह्मणोंको वह पुर दान दिया था, इसीसे उसका रामनाथपुर नाम पड़ गया ॥ ५७ ॥ पहले उसका ब्रह्मपुर नाम था । जबसे रामने उसको दान दे दिया, तभीसे रामनाथपुर उसकी संज्ञा हुई ॥ ५८ ॥ उस शिलाके तौल भर द्रव्य दक्षिणाके निमित्त रखकर सीताके साथ रामने उन विप्रोंकी पूजा की और वह शिला उनको दे दी ॥ ५९ ॥ इसके बाद रामने हनुमान्‌जीसे कहा कि भोजन कर लेनेके बाद इन ब्राह्मणोंके साथ जाकर यह शिला रामनाथपुरमें पहुँचा आना ॥ ६० ॥ इसके बाद रामने कम्बुकण्ठको एक पत्र लिखवाकर उन ब्राह्मणोंको दिया । जिसमें लिखा था कि आप सदा इन ब्राह्मणोंकी सहायता करते रहें ॥ ६१ ॥ तदनन्तर प्रसन्न मनसे विप्रोंने आशीर्वाद दिया और रामने उन सबके साथ बैठकर भोजन किया ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर वे सब विप्र पुष्पक विमानपर बैठकर अपने आश्रमको चले और रामसे पूछकर हनुमान्‌जी भी विमानपर बैठकर उनके साथ-साथ गये ॥ ६३ ॥ इस तरह सातों द्वीपोंमें रामने हजारों दान किये । ठीक तरहसे जिनकी सही संख्या नहीं जानी जा सकती ॥ ६४ ॥ रामनाथपुरमें रहनेवाले वे विप्र भविष्यमें दुष्ट राजाओंके भयसे उस शिलाको तालाबमें फेंक देंगे, जिससे उनको बड़ा कष्ट प्राप्त होगा । जब वे मरनेपर उतारू हो जायँगे तो हनुमान्‌जी उस शिलाको फिर निकालेंगे ॥६५॥ विष्णुदासने पूछा कि ब्राह्मणोंको आगे चलकर अपने जीवनमें कौन-सा कष्ट उठाना पड़ेगा ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जिसके लिये उन्हें वह शिला त्यागनी पड़ेगी, सो कहिये । श्रीरामदासने कहा कि पृथ्वीतलमें आगे चलकर एक कोई दुष्ट राजा होगा ॥ ६८ ॥ वह कलियुगी राजा उन ब्राह्मणोंको मारकर उनका राज्य छीननेकी इच्छासे कहेगा कि यदि रामने तुमको यह राज्य दान करके दिया है तो वह दानपत्र दिखाओ । नहीं तो इतने दिनों तक इस राज्यकी जितनी आय तुम लोगोंने ली है, वह सब लाकर दे दो । नहीं तो मैं सबको मार डालूँगा । क्योंकि ब्राह्मणोंके लिए मैं

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मासेनैकेन पत्रं ते दर्शयिष्यामहे वयम् । ततो मुमोच तान्राजा तेऽपि तूष्णीं पुरं ययुः ॥७३॥
तटाकस्य तटं भित्त्वा प्रवाहाः शतशस्ततः । मोचयामासुः सर्वत्र नांतं तस्य जलस्य ते ॥७४॥
ददृशुः सकला विप्रास्ततस्ते प्राणसंकटम् । ज्ञात्वा तत्र निराहारा निषेदुः सरसस्तटे ॥७५॥
राघवं परमात्मानं चिंतयामासुरादरात् । एवं मासे त्वतिक्रान्ते वधं ज्ञात्वात्मनो नृपात् ॥७६॥
भयात्प्राणांस्त्यक्तुकामा ह्यासंस्तस्मिन् जलाशये । तदा तेषां स्त्रियः पुत्राश्चक्रुः कोलाहलं भृशम् ॥७७॥
तान्सर्वान्सांत्वयामासुर्नानानीत्युत्तरैर्द्विजाः । स्वयं स्नात्वा द्विजाः सर्वे ददुर्दानान्यनेकशः ॥७८॥
चक्रुः प्रदक्षिणाः सप्त तटाकायोत्तराननाः । ऊचुर्दीर्घस्वरेणैव प्रबद्धकरसंपुटाः ॥७९॥
हे राम जानकीकांत त्वद्दानादीदृशी गतिः । जाताऽस्माकं मृतान्नस्त्वं सर्वान्पश्य रघूत्तम ॥८०॥
पुरोद्भवं तु यद्द्रव्यं पूर्वजैर्भुक्तमेव तत् । एतावत्कालपर्यन्तमस्माभिश्चाधुना कुतः ॥८१॥
तत्त्वदेयमसंख्यातमतस्त्यक्ष्याम जीवितम् । इत्युक्त्वा ब्राह्मणाः सर्वे निमील्य नयनानि ते ॥८२॥
चिंतयामासुः स्वीयेष्टां देवतां मरणोत्सुकाः । एतस्मिन्नंतरे तत्र देवागारे हनूमतः ॥८३॥
पाषाणमूर्तेः प्रकटः संबभूवाञ्जनासुतः । दीर्घस्वरेण तान् प्राह भूसुरान्संभ्रमाद्धरिः ॥८४॥
यूयं मा जीवितान्यद्य त्यजध्वं ब्राह्मणोत्तमाः । आगतो राघवस्याहं दासोऽञ्जनिसमुद्भवः ॥८५॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा द्विजास्ते विस्मयान्विताः । उन्मील्य नयनान्यग्रे ददृशुर्वायुनन्दनम् ॥८६॥
दीर्घबाहुं महाघोरं पिंगकेशविराजितम् । जरठं पर्वताकारं रामनामप्रभाषिणम् ॥८७॥
तं दृष्ट्वा ते द्विजाः सर्वे प्रणेमुर्हृष्टमानसाः । कथयामासुस्तं सर्वं स्वीयं वृत्तं सविस्तरम् ॥८८॥
ततः स मारुतिर्वेगात्सरसस्तां शिलां बहिः । निष्कास्य विप्रवर्यैस्तैः शिलां धृत्वा स्वयं कपिः ।८९॥

यमराज हूँ ॥ ६९–७१ ॥ राजाकी ऐसी बात सुनकर ब्राह्मण भयभीत हो तथा परस्पर सलाह करके उससे बोले कि एक महीनेमें मैं आपको वह दानपत्र खोजकर दिखाऊँगा। यह सुनकर राजाने ब्राह्मणोंको छोड़ दिया और वे चुपचाप लौटकर अपने-अपने घर चले गये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस तालाबका बाँध तोड़ दिया। जिससे सैकड़ों सोते वह निकले और चारों ओर फैलकर बहनेपर भी तड़ागका जल नहीं चुका। जब ब्राह्मणोंने देखा कि अब प्राण सङ्कटमें आ गया है तो सबके सब उसीके एक ऊँचे कगारपर उपवास करते हुए बैठ गये और परमात्मा रामचन्द्रजीका ध्यान करने लगे। इस प्रकार एक महीना बीत जानेपर जब उन विप्रोंने सोचा कि अब वह दुष्ट राजा हमको मार डालेगा तो भयसे अपने प्राण त्यागनेके लिए तैयार हो गये। उस समय उनके घरकी स्त्रियाँ तथा बच्चे अत्यधिक दुःखित होनेके कारण सबके सब चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे ॥ ७४–७७ ॥ तब उन्होंने स्त्रियों-बच्चोंको अनेक प्रकारकी नीतिमयी बातें सुनाकर सान्त्वना दी। स्वयं उन विप्रोंने स्नान करके नाना प्रकारके दान दिये। फिर उन्होंने उस तालाबकी सात परिक्रमा की और उत्तरकी ओर मुख करके खड़े हो गये। हाथ जोड़कर ऊँचे स्वरसे वे कहने लगे–हे राम ! हे जानकीकान्त !! तुम्हारे दिये हुए दानसे आज हमारी यह दुर्दशा हो रही है। हे रघूत्तम ! अब तुम हम लोगोंको मरा हुआ समझो ॥ ७८–८० ॥ पूर्वकालमें हमारे पूर्वजोंने जो धन इस राज्यसे पाया, वह सब उन्हीं लोगोंने खर्च कर दिया। अब हम कहाँसे असंख्य धन लाकर इस राजाको दें। उतना धन जुटाना हमारी शक्तिके बाहर है। अतएव हम अपने शरीरको त्याग देंगे। इतना कहकर उन मरणोन्मुख विप्रोंने नेत्र मूँद लिये और अपने इष्टदेवका ध्यान करने लगे। उसी समय पासके देवालयमें पाषाणमयी मूर्तिसे हनुमान्जी प्रकट हुए और जोर-जोरसे चिल्लाकर कहने लगे —॥ ८१–८४ ॥ हे ब्राह्मणों ! तुम लोग अपने प्राण मत त्यागो। रामचन्द्रजीका सेवक अञ्जनीपुत्र मैं हनुमान् आगया। इस प्रकार उनकी बात सुनकर विस्मित भावसे उन सबोंने नेत्र खोलकर हनुमान्जीको देखा ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ उस समय उन हनुमान्जीका लम्बा तथा भयानक हाथ था, पीले-पीले केश थे, बूढ़ी अवस्था थी, पर्वताकार शरीर था और वे निरन्तर रामनामका उच्चारण करते जाते थे ॥ ८७ ॥ उनको देखते ही प्रसन्न चित्तसे उन ब्राह्मणोंने प्रणाम किया और विस्तारपूर्वक अपने

CC-0. In Public Domain. Kritikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जगाम दुष्टराजानं दर्शयामास तां शिलाम् । राममुद्रांकितां दृष्ट्वा लिपिं राजाऽतिविस्मितः ॥९०॥
तं तदा रोपयामास शूलाग्रे वायुजो नृपम् । तस्मिन्नेव तटाके हि यत्र विप्राः स्थिताः पुरा ॥९१॥
नृपं मोचयितुं ये ये राजदूताः समाययुः । तान्सर्वान्मर्दयामास पुच्छेनैव स मारुतिः ॥९२॥
द्विजहृत्तापशमनाद्धृत्तापशमनं सरः । बभूव नाम्ना तत्पुण्यं तत्र श्रीवायुसूनुना ॥९३॥
राज्यदानेन रामस्यौदार्यं लोकान्प्रदर्शितुम् । उदारराघवेशाख्यः शम्भुः संस्थापितः शुभः ॥९४॥

उदारराघवश्रेति नाम्ना मूर्तिः प्रतिष्ठिता ।
स्नानादिना तत्सरसि नृणां तापत्रयं न हि ॥९५॥

ततः प्राह पुनर्विप्रान्हनूमांस्तुष्टमानसान् । भूम्यां कृत्वा गुहां श्रेष्ठां तत्रेयं स्थाप्यतां शिला ॥९६॥
न भयं वोऽस्तु भो विप्रा युष्माकं सन्निधस्त्वहम् । सर्वदाऽस्मि न भेतव्यं स्मरध्वं रघुनन्दनम् ॥९७॥

इत्युक्त्वा गुप्तरूपोऽभूत्स्वीयमूर्त्यां द्विजाग्रतः ।
तां शिलां स्थापयामासुर्भूम्यामेवातियत्नतः ॥९८॥

ततस्तुष्टा द्विजाः सर्वे जग्मुः स्वं स्वं गृहं प्रति । तदाऽऽरभ्य न केनापि तेषां राज्यं हृतं कदा ॥९९॥
एवं शिष्य मया प्रोक्ता कथा भावी तवाग्रतः । पूर्वमेव ज्ञानदृष्ट्या कौतुकार्थं सविस्तरा ॥१००॥

अद्यापि तत्र तैर्विप्रैस्तद्राज्यं भुज्यते सदा ।
ये ये जाता नृपा भूम्यां रामाज्ञां मानयन्ति ते ॥१०१॥

एवं नाना कौतुकानि राघवेण कृतानि हि । पुत्राभ्यां सीतयाऽयोध्यापुर्यां बंधुजनैः सह ॥१०२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे
रामनाथपुरराज्यप्रदानं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ८८ ॥ इसके अनन्तर हनुमान्‌जीने वह शिला उस तालाबसे निकालकर उनके आगे रख दी और ब्राह्मणोंने उसे उस दुष्ट राजाके पास ले जाकर दिखाया। राममुद्राके चिह्नसे चिह्नित उस शिलाको देखकर राजा बहुत चकराया ॥ ८९ ॥ ९० ॥ तभी हनुमान्‌जी उस राजाको पकड़कर उसी सरोवरके तटपर ले गये और शूलीपर चढ़ा दिया। राजाको छुड़ानेके लिए जो सिपाही उनके पास आये, हनुमान्‌जीने अपनी लम्बी पूँछके प्रहारसे ही उन सबको मार डाला ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ब्राह्मणोंका सन्ताप हनुमान्‌जीने उसी सरोवरपर हरण किया था, इसलिए उस सरोवरका 'हृत्तापशमन' नाम पड़ गया ॥ ९३ ॥ राज्यदानसे रामकी उदारता संसारको दिखानेके लिए उसी स्थानपर हनुमान्‌जीने उदारराघवेश नामक शिवलिंगकी स्थापना की ॥ ९४ ॥ उस सरोवरमें स्नान करनेसे मनुष्योंके दैहिक, दैविक और मानसिक ये तीनों ताप दूर हो जाते हैं ॥ ९५ ॥ इसके बाद हनुमान्‌जीने उन प्रसन्नचित्त विप्रोंसे कहा—पृथ्वीमें एक गुफा बनाकर उसीमें यह शिला रख दो ॥ ९६ ॥ हे विप्रो ! तुमको किसी प्रकारका भय नहीं है। मैं सदा तुम्हारे पास रहूँगा। तुम सब सर्वदा भगवान् रामका स्मरण करते रहो। इतना कहकर सबके समक्ष हनुमान्‌जी अपनी उसी पाषाणमयी प्रतिमामें लीन हो गये। जैसा कि हनुमान्‌जीने बतलाया था, विप्रोंने गुफा खोदकर बड़े यत्नसे वह शिला उसीके भीतर रख दी ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्न मनसे वे ब्राह्मण लौटकर अपने-अपने घरोंको चले गये। तबसे किसी राजाने उनके राज्यका हरण नहीं किया। श्रीरामदास कहते हैं—हे शिष्य ! मैंने भावी वृत्तान्त तुम्हें कह सुनाया। आज भी वे ही ब्राह्मण उस राज्यका उपभोग कर रहे हैं। पृथ्वीतलपर जितने राजे हुए, वे बराबर रामकी आज्ञाको मानते आये हैं। इस प्रकार अयोध्यामें राम अपने पुत्रों, सीता तथा भाइयोंके साथ नाना प्रकारके कौतुक करते रहे ॥ ९९–१०२ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एकोनविंशः सर्गः

(रामकी दिनचर्या)

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य वदाम्यद्य रामराज्ञः शुभावहा । दिनचर्या राज्यकाले कृता लोकान् हि शिक्षितुम्॥ १ ॥
प्रभाते गायकैर्गीतैर्बोधितो रघुनन्दनः । नत्रवाद्यनिनादांश्च सुखं शुश्राव सीतया ॥ २ ॥
ततो ध्यात्वा शिवं देवीं गुरुं दशरथं सुरान् । पुण्यतीर्थानि मातॄश्च देवतायतनानि च ॥ ३ ॥
नानाक्षेत्राण्यरण्यानि पर्वतान्सागरांस्तथा । नदांश्चैव नदीः पुण्यास्ततः सीतां ददर्श सः ॥ ४ ॥
प्रणमन्तीं समुत्थाप्य धृत्वा सीताकरं प्रभुः । मञ्चकादवतीर्याथ दासीभिः परिवेष्टितः ॥ ५ ॥
बहिः कक्षां शनैर्गत्वा सम्पाद्यावश्यकं प्रभुः । ययौ पुनः स दासीभिः क्रीडाशालां रघूत्तमः ॥ ६ ॥
कृत्वा शौचविधिं रामो दन्तशुद्धिं चकार सः । ततः स्नानं कदा गेहे सरय्वां वाऽकरोत् प्रभुः ॥ ७ ॥
आरुह्य शिबिकायां स भूसुरैर्यानसंस्थितैः । वेष्टितः सरयूं गत्वा यानं मुक्त्वा तटे प्रभुः ॥ ८ ॥
पद्भ्यामेव शनैर्गत्वा सरयूं प्रणिपत्य च । सरय्वाः पुरतः स्थाप्य नारिकेलं सदक्षिणम् ॥ ९ ॥
सतांबूलं पुनर्नत्वा स्तुत्वा सम्यक् प्रसाद्य च । स्नात्वा यथाविधानेन ब्रह्मघोषपुरःसरम् ॥१०॥
प्रातः सन्ध्यां ततः कृत्वा ब्रह्मयज्ञं विधाय च । दत्त्वा दानान्यनेकानि ययौ गेहं रथेन हि ॥११॥
रुक्मबन्धैर्वेष्टितेन रौप्यरत्नमयेन च । सुस्नातसूततुरगयुक्तेन ध्वनितेन च ॥१२॥
हुत्वा होमं विधानेन शिवं सम्पूज्य सादरम् । कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च समर्चयत् ॥१३॥
कामधेनुं कल्पवृक्षं पारिजातं तु पुष्करम् । चिंतामणिं कौस्तुभं च पूज्य सीतायुतो हरिः ॥१४॥
मुनिवृक्षं वटं बिल्वमश्वत्थं तुलसीं तथा । शमीं पलाश दूर्वां च राजवृक्षमपूजयत् ॥१५॥
भानुं सम्पूज्य तं नत्वा सम्पूज्य द्वारदेवताम् । गोवृषाश्ववारणांश्च रथं शस्त्राणि भूसुरान् ॥१६॥
कोष्ठागाराणि कोशांश्च पाकशालामपूजयत् । सिंहासनं तथा छत्रं चामरे व्यजने तथा ॥१७॥

श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! सुनो, अब मैं रामचन्द्रजीकी दिनचर्या बताता हूँ। जिसे वे सबको शिक्षा देनेके लिए किया करते थे। राम प्रतिदिन प्रातःकाल गायकोंके गीत तथा बाजोंके मीठे स्वर सुनकर सीताके साथ जागते थे। इसके अनन्तर शिव, देवी, गुरु, देवताओं, दशरथ, पवित्र तीर्थों, माताओं, देवमन्दिरों, अनेक प्रकारके क्षेत्रों, अरण्यों, पर्वतों, सरोवरों, नदों और नदियोंका स्मरण करके सीताको देखते थे ॥१-४॥ प्रणाम करती हुई सीताको उठाकर राम उनका हाथ पकड़े हुए मंचसे उतरते थे। फिर बहुत-सी दासियोंसे घिरे हुए जाते और आवश्यक कार्योंका संपादन करते थे। इसके बाद दासियोंके साथ-साथ क्रीड़ाशालाको जाते और वहाँ शौचविधि करनेके पश्चात् दन्तशुद्धि करते थे। इसके अनन्तर कभी घरपर और कभी सरयूमें जाकर स्नान करते थे ॥ ५-७ ॥ जब सरयूस्नानको जाते तो पालकीपर सवार हो तथा बहुतसे ब्राह्मणोंसे परिवेष्टित होकर जाते और तटपर पहुँचते ही पालकीसे उतर जाते एवं पैदल चलकर सरयूके आगे पानदक्षिणायुक्त नारियल रखकर प्रणाम और प्रार्थना करते थे। फिर ब्राह्मणोंके वेदघोषके साथ स्नान करते थे। इसके बाद प्रातःकालीन सन्ध्या तथा ब्रह्मयज्ञ करके ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दान देते और रथपर सवार होकर महलोंको लौटते थे ॥ ८-११ ॥ उस रथमें स्थान-स्थानपर सुवर्णसूत्रके बन्धन लगे रहते और श्वेतवर्णके वस्त्र लटकते रहते थे। सरयूमें सारथी तथा घोड़े नहाये रहते थे और उस रथमेंसे एक प्रकारकी ध्वनि निकलती रहती थी ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर विधानपूर्वक हवन करके राम सादर शिवजीका पूजन करते और कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयीकी पूजा करते थे ॥ १३ ॥ फिर कामधेनु, कल्पवृक्ष, पारिजात, पुष्पकविमान, चिंतामणि, कौस्तुभ आदिकी सीताके साथ-साथ राम पूजा करते थे। पश्चात् अगस्त्य, वट, बिल्व, पीपल, तुलसी, शमी, पलाश, दुर्वा, राजवृक्ष तथा सूर्यभगवान्‌की पूजा करके द्वारदेवताको नमस्कार और पूजन करते थे। तदनन्तर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संपूज्य मुकुटं रामः पूजयामास मञ्चकम् । दीपिकां दर्पणं पूज्य पुस्तकादीनपूजयत् ॥१८॥
पुनः संपूज्य स्वगुरुं पूर्वं विप्रेषु पूजितम् । उच्चासनस्थितं नत्वा कथां शुश्राव तन्मुखात् १९॥
पुत्राभ्यां बन्धुभिः पत्न्या पण्डितैः परिवेष्टितः । ततः संप्रार्थितो रामः सीतया स मुहुर्मुहुः ॥२०॥
विप्रादिभिश्चोपाहारं चकार स्वस्थमानसः । कामधेनूद्भवैश्चान्नैः कल्पवृक्षसमुद्भवैः ॥२१॥
मणिद्वयनिर्मितैश्च वह्नौ सीताकृतैरपि । ततो भुक्त्वा हि तांबूलं विभ्रद्वासांसि राघवः ॥२२॥
बद्ध्वा कटिं दिव्यवस्त्रैः शस्त्राण्यपि दधार सः । एतस्मिन्नतरे पूर्वं समाहूतो ययौ भिषक् ।।२३॥
गणकोऽपि राघवेण प्रत्युद्गम्यातिमानितौ । निषेदतू राघवाग्रे पूजयामास तौ प्रभुः ॥२४॥
ततो भिषक् सुखं स्थित्वा राघवाग्रे तदाज्ञया । ददर्श दक्षिणकरे नाडीं रामस्य सादरम् ॥२५॥
रत्नमुद्राकंकणाद्यैः शोभितस्योज्ज्वलस्य च । करस्यांगुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी ॥२६॥
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञायते च भिषग्वरैः । अतस्तां वैद्यवर्यः स सूक्ष्मबुद्ध्या व्यलोकयत् ॥२७॥
रामकर्णे विहस्याह रात्रावाचरितः श्रमः । तद्वैद्यवचनं श्रुत्वाऽकरोद्रामः स्मिताननम् ॥२८॥
ततो वैद्याय तांबूलं ददौ रामः सदक्षिणम् । ततः स गणकः प्राह विस्तार्य सुस्फुटाक्षरम् ॥
पञ्चाङ्गपत्रं चित्रं च राघवाग्रे स्थितः सुधीः ॥२९॥

विघ्नेश्वरो ब्रह्महरीश्वराः सुरा भानुः शशी भूमिसुतो बुधः शुभः ।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहा मंगलदा भवंतु ते ॥३०॥

लक्ष्मीः स्यादचला तिथिश्रवणतो वारात्तथाऽऽयुश्चिरं नक्षत्रं कृतपापसंचयहरं योगो वियोगापहः ।
सर्वाभीष्टकरं तथैव करणं पंचांगमेतत्स्फुटं श्रोतव्यं प्रतिवासरे द्विजमुखाच्छ्रेयस्करं संग्रहम् ॥३१॥
स्वस्ति श्रीराघवाद्यास्ति तिथिश्च दशमी सिता । भानुवारः सुनक्षत्रं पुष्याख्यं त्वद्य वर्तते ॥३२॥

वृष, अश्व, हाथी, रथ, शास्त्र, ब्राह्मण, कोठार, कोश, पाकशाला, सिंहासन, छत्र, चमर, व्यजन, मुकुट, मञ्च, दीपिका और दर्पणकी पूजा करके पुस्तकादिकोंका पूजन करते थे ॥ १४–१८ ॥ फिर ऊँचे आसनपर बैठे अपने गुरुकी पूजा और नमस्कार करके उनके मुखसे कथा सुनते थे ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर अपने भ्राताओं, पुत्रों और पण्डितोंके साथ बार-बार सीताके प्रार्थना करनेपर ब्राह्मणोंके सङ्ग स्वस्थ मनसे कामधेनु, कल्पवृक्ष और दोनों मणियोंसे उत्पन्न तथा अग्निपर बनाये अन्नका भोजन करके पान खाते थे। तदनन्तर सुन्दर कपड़े पहिन तथा दिव्य वस्त्रसे कमर कसके भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे। इसके बाद पहलेसे ही बुलाये हुए वैद्य तथा ज्योतिषी आते। उनको आते देखकर राम उठ खड़े होते और दो पग आगे बढ़कर स्वागत करके उन्हें लाते एवं अतिशय सम्मान करते थे। वे आकर सामने बैठ जाते और राम उनकी पूजा करते थे ॥२०–२४॥ इसके बाद वैद्य आनन्दपूर्वक बैठकर रामके आज्ञानुसार रत्न, मुद्रा तथा कंकण आदिसे सुशोभित उनके दाहिने हाथकी नाड़ी देखता था। हाथके अंगूठेकी नीचेवाली जो जीवसाक्षिणी नामकी नाड़ी है, उसे देखकर वैद्यगण प्राणीके सुख दुःख जान लिया करते हैं। इसलिए वह वैद्य अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे देखता और कानमें कहता कि 'रातको ज्यादा मेहनत किये हैं न ?' वैद्यकी बात सुनकर नाम मुस्करा देते थे ॥ २५–२८ ॥ इसके बाद राम दक्षिणाके साथ वैद्यजीको पान देते थे। तदनन्तर ज्योतिषीजी स्वच्छ अक्षरों और चित्रोंसे सुसज्जित पञ्चांग फैलाकर रामके सामने बैठते और इस प्रकार मङ्गलाचरण तथा पञ्चांग-श्रवणका माहात्म्य सुनाते थे। विघ्नेश्वर (गणेशजी), ब्रह्मा, महेश, समस्त देवता, सूर्य, शनि, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, राहु, केतु आदि सारे ग्रह आपके मंगलदाता हों ॥ २९ ॥ ३० ॥ तिथिके सुननेसे लक्ष्मी अचल होती है, वारके श्रवणसे आयु बढ़ती है, नक्षत्रश्रवण पुराकृत पापोंके समूहको नष्ट करता है, योग अपने प्रियजनके वियोगसे बचाता तथा करण सब प्रकारकी मनःकामना पूर्ण करता है। अतएव ब्राह्मणके मुखसे प्रतिदिन इनका श्रवण करना चाहिए। क्योंकि यह प्राणियोंका सब प्रकारसे कल्याण करता है ॥ ३१ ॥ स्वस्तिश्री रामचन्द्रजी ! आज शुक्लपक्षकी दशमी तिथि है, रविवासर है, पुष्यनामक सुनक्षत्र है,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऐंद्रयोगो महानद्य वनाख्यं करणं शुभम् । कर्कस्थितोऽद्य चन्द्रोऽस्ति द्वितीयस्ते रघूत्तम ॥३३॥
मासोऽयं चैत्रमासोऽस्ति वसंताख्य ऋतुस्त्वयम् । सुखं कुरुष्व राज्यं त्वं चिरं तिष्ठावनीतले ॥३४॥
सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः । सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ।३५।
एवं ज्योतिर्विदा गीतं पञ्चाङ्गं रघुनन्दनः । श्रुत्वा तं दक्षिणां दत्त्वा सतांबूलां ननाम सः ॥३६॥
ततो रामं ययौ वेगान्मालाकारो मनोहरान् । रामाग्रे वंशपात्रस्थान्पुष्पहारान्न्यवेदयत् ॥३७॥
रामस्तान्सकलेभ्यश्च दत्त्वाऽबिभ्रत्स्वयं ततः । पुत्राभ्यामवतंसांश्च नत्वाऽबिभ्रत्स्वयं करे ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे रामं नापितः प्रययौ जवात् । मुकुरं दर्शयामास रुक्मबन्धनरंजितम् ॥३९॥
तत्रादर्शे ददर्शाथ स्वमुखं रघुनन्दनः । चन्द्रोपमं सुस्मितं च कंजलोचनशोभितम् ॥४०॥
ऋजुनासं मांसलं च श्मश्रुयुक्तं सुवर्तुलम् । वरकुण्डलमुक्तानां वरदीप्त्याऽतिभासुरम् ॥४१॥
प्रोच्चगण्डस्थलं सुभ्रु त्रिबलीभालमण्डितम् । रुक्मरत्नसमुद्भूतमुकुटेनातिशोभितम् ॥४२॥
एवं मुखं निरीक्ष्याथ तुतोष नितरां प्रभुः । ततो ययौ धूपपाणिर्धूपं स्थाप्य प्रभोः पुरः ॥४३॥
नत्वा रामं दूतमध्ये तस्थिवान्राघवाग्रतः । ततो रामः शिबिकायां स्थित्वा गेहाद्बहिर्ययौ ॥४४॥
ददर्श मागधादींश्च बहिःकक्षस्थितान् प्रभुः । ततस्ते मागधा रामं नत्वा दीर्घस्वरेण वै ॥४५॥
सूर्यवंशभवान्सर्वान्नृपान्संवर्णयंस्तदा । ततस्ते वन्दिनः सर्वे तुष्टुवू रघुनन्दनम् ॥४६॥
नानातत्कृतचारित्रै रावणादिवधादिकैः । ततस्ते चारणा गानं प्रचक्रुर्मुदिताननाः ॥४७॥
नटा वेश्याश्च ननृतुर्नानावाद्यपुरःसरम् । अन्ये चक्रुर्विनोदांश्च यैः सन्तुष्येत्स राघवः ॥४८॥
ततो निनेदुर्वाद्यानि नववाद्यस्वना अपि । ततस्तृतीयकक्षायां ददर्श नृपनन्दनः ॥४९॥
वारणेंद्रांश्च तुरगान् शिबिकाश्च रथांस्तथा । नानालंकारयुक्तांश्च वरवस्त्रैः समन्वितान् ॥५०॥

ऐन्द्रयोग है और कर्क राशिमें बैठा चन्द्रमा आपकी राशिसे दूसरे स्थानपर है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यह चैत्रका महीना है, वसन्त ऋतु है, आप आनन्दपूर्वक राज्य करें और बहुत दिनोंतक इस पृथ्वीतलपर रहें। सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब लोग मङ्गलमय दिन देखें और कोई किसी प्रकारका दुःख न देखे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस प्रकार ज्योतिषीके कहे पञ्चांगको सुन और उसे ताम्बूल-दक्षिणा देकर विदा करते थे ॥ ३६ ॥ इसके बाद वेगके साथ माली बाँसकी टोकरीमें फूलोंकी मालाएँ लाकर रामको नजर करता था ॥ ३७ ॥ उन मालाओंको वहाँ उपस्थित सब लोगोंमें बाँटकर राम स्वयं भी पहनते थे ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर नाई आता। वह सुवर्णके चौखटेसे सुसज्जित दर्पण रामको दिखाता था ॥ ३९ ॥ शीशेमें राम चन्द्रमाके समान सुन्दर, मुस्कराहट युक्त और कमलके समान नेत्रोंवाला अपना मुख देखते थे ॥ ४० ॥ वह मुख छोटी-सी नासिकासे युक्त, भरा हुआ, गोलाकार, अच्छे-अच्छे कुण्डलों तथा मोतियोंके गुच्छोंसे अतिशय शोभायमान एवं तेजोमय था ॥ ४१ ॥ दोनों कपोल ऊँचे थे, सुन्दर-सी त्रिवली अर्थात् तीन लकीरें माथेमें पड़ी थीं। वे सुवर्ण और रत्नोंसे सुशोभित मुकुट मस्तकपर धारण किये थे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार अपना मुखमण्डल देखकर राम बहुत प्रसन्न होते थे। इसके पश्चात् एक सेवक आता, जिसके हाथोंमें सुलगती हुई धूप रहती थी। वह धूपदानी रामके सामने रख तथा नमस्कार करके दूतोंके बीचमें प्रभुके सामने बैठ जाया करता था। इसके अनन्तर शिबिकामें बैठकर राम घरसे बाहर निकलते थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ बाहरके आँगनमें बन्दीजन खड़े रहते थे, उन्हें राम देखते थे और जब रामको वे देखते तो प्रणाम करके ऊँचे स्वरसे रामके पूर्वपुरुषोंका यश गाने लगते और फिर रामकी स्तुति करते थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वे उनके किये रावणवध आदि चरित्रोंका विशद वर्णन करते थे। तदनन्तर चारणगण प्रसन्नमुख होकर गाना गाते और नट तथा वेश्यायें नाना प्रकारके बाजोंके तालपर नाचने लगती थीं। कितने ही लोग विनोद करने लगते, जिससे कि राम प्रसन्न हों ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इसके बाद कितने ही प्रकारके बाजे बजने लगते थे। तब राम दूसरे आँगनसे तीसरेमें पहुँचते थे ॥ ४९ ॥ वहाँ पहुँचकर हाथी, घोड़े, पालकियाँ और

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बुलन्दशहर

ततश्च रथकक्षायां नृपान्पौरान्सुहज्जनान् । समागतान्दर्शनार्थं ददर्श रघुनन्दनः ॥५१॥
ततः पञ्चमकक्षायां पुष्पकं पुष्पवाटिकाः । दूतान्ददर्श श्रीरामः शस्त्रहस्तान्सहस्रशः ॥५२॥
ततः स षष्ठकक्षायामश्वारूढान्सहस्रशः । वीरान्ददर्श श्रीरामः प्रबद्धकरसम्पुटान् ॥५३॥
ततः सप्तमकक्षायां ययौ रामः सभां प्रति । शिबिकायाश्चावतीर्य शनैः सिंहासनं ययौ ॥५४॥
सव्यं कृत्वा नमस्कृत्य सोपानैः स शनैः प्रभुः । सिंहासनमारुरोह वरछत्रसुशोभितम् ॥५५॥
दधार छत्रं सौमित्रिश्चामरं भरतस्तदा । शत्रुघ्नो व्यजनं रम्यं पादुके वायुनन्दनः ॥५६॥
सुग्रीवो जलपात्रं च वरादर्शं विभीषणः । दधार हस्ते ताम्बूलपात्रं स वालिनन्दनः ॥५७॥
वस्त्रकोशं जांबवांश्च दधार वेगवत्तरः । तस्थौ सिंहासने रामः स पृष्ठांकोपबर्हणः ॥५८॥
तस्थौ पृष्ठे लक्ष्मणश्च भरतः सव्यपार्श्वके । शत्रुघ्नोऽसौ वामपार्श्वे पुरतो वायुनन्दनः ॥५९॥
वायव्यकोणे रामस्य सुग्रीवः संस्थितोऽभवत् । ईशान्यां राक्षसेन्द्रः स आग्नेय्यामङ्गदः स्थितः॥६०॥
नैर्ऋत्यां जांबवांश्चापि पौराः सर्वे समन्ततः । राघवाग्रे नृपाः सर्वे स्थिताः सम्बद्धपाणयः ॥६१॥
पार्श्वयोस्ते राघवस्य प्रोच्चस्थाने मुनीश्वराः । पुरतो ननृतुः सर्वा वारवेश्याः सहस्रशः ॥६२॥
ततो वीरास्ततो दूताः सभायां संस्थिताः क्रमात् । निषेदुर्मुनयः सर्वे रामपुत्रौ निषेदतुः ॥६३॥
राममित्रा निषेदुस्ते तथा रामाज्ञया नृपाः । ये ये मुख्या निषेदुस्ते तथा पौराः सुहृज्जनाः ॥६४॥
एभ्योऽन्ये ते स्थिता एव न निषेदुः प्रभोः पुरः । तेषां मध्ये रामचन्द्रः शुशुभेऽनुपमस्तदा ॥६५॥
सेवकाद्या न निषेदुः सुमन्त्र एव तस्थिवान् । एवं स्थित्वा सभायां स कृत्वा कार्याण्यनेकशः ॥६६॥
नानाकार्येषु बन्धूंश्च पुत्रावाज्ञाप्य राघवः । दृष्ट्वा नानाकौतुकानि पूर्ववद्गृहमाययौ ॥६७॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि गोमुखादीन्यनेकशः । श्रुत्वा वाद्यनिनादांश्च जानकी सम्भ्रमात्पुरः ॥६८॥

रथ खड़े रहते थे। जिनमें अनेक प्रकारके अलङ्कार लगे रहते और अच्छे कपड़ोंका ओहार पड़ा रहता था। ॥ ५० ॥ इसके बाद उस आँगनमें बाहरसे आये हुए उन राजाओं, पुरवासियों और मित्रोंको देखते थे, जो वहाँ रामकी प्रतीक्षामें पहले ही से उपस्थित रहा करते थे ॥ ५१ ॥ फिर पाँचवीं चौकमें पुष्पकविमान, पुष्पवाटिका तथा शस्त्र धारण किये हजारों सिपाहियोंको देखते थे ॥ ५२ ॥ फिर छठीं चौकमें जाकर हाथ जोड़े हुए हजारों घोड़सवार वीरोंको देखते थे ॥ ५३ ॥ इसके बाद सातवीं चौकमें पहुँचकर अपनी राजसभामें जाते थे। वहाँ पालकीसे उतरकर सिंहासनके पास जाते थे ॥ ५४ ॥ दाहिनी ओर सिंहासनको प्रणाम करके शनैः शनैः सीढ़ियोंसे चढ़कर सिंहासनपर बैठते थे। वह सिंहासन छत्रसे सुशोभित रहता था ॥ ५५ ॥ रामके बैठ जाने-पर लक्ष्मण छत्र लेते, भरत चमर लेते, पंखा शत्रुघ्नजी लेकर खड़े होते और हनुमान्‌जी रामकी चरणपादुका लिये रहते थे। इनके सिवाय सुग्रीव जलकी झारी, विभीषण एक सुन्दर-सा दर्पण, अङ्गद ताम्बूलका पात्र और वस्त्रकी सन्दूक जाम्बवान् लिये रहते थे। राम पीठपर तकिया लगाकर सिंहासनपर बैठते और उनके पीछे लक्ष्मण, दाहिनी ओर भरत, बायीं ओर शत्रुघ्न, सामने पवनकुमार, वायव्य कोणमें सुग्रीव, ईशान कोणमें विभीषण और आग्नेय कोणमें अङ्गद खड़े होते थे।। ५६-६० ॥ नैर्ऋत्य कोणमें जाम्बवान् रहते और बहुतसे पुरवासी चारों ओर खड़े रहते थे। रामचन्द्रजीके आगे सब राजे हाथ जोड़-जोड़कर खड़े रहा करते थे ॥ ६१ ॥ रामके दाहिने बायें दोनों ओर एक ऊँचे आसनपर मुनिगण बैठते थे। सामने हजारों वेश्यायें नाचती थीं ॥ ६२ ॥ इसके बाद वीरगण और फिर दूतगण खड़े रहा करते थे। समस्त ऋषीश्वर तथा दोनों राजकुमार भी आकर अपने-अपने आसनपर बैठ जाते थे ॥ ६३ ॥ रामके मित्र तथा राजे रामके आज्ञा-नुसार बैठते थे। जो नगरके मुख्य निवासी थे, वे तथा मित्रगण भी बैठते थे ॥ ६४ ॥ इनके सिवाय और लोग रामके सामने नहीं बैठते थे, उन्हें खड़े ही रहना पड़ता था। उन सबोंके बीचमें रामकी एक अनुपम शोभा होती थी ॥ ६५ ॥ सेवक आदिमेंसे कोई भी नहीं बैठता था। उनमेंसे केवल सुमन्त्र बैठते थे। इस प्रकार सभामें बैठ और नाना प्रकारके कार्य करके भाइयों और बेटोंको कितने ही काम सौंपकर विविध प्रकार-

CC0. In Public Domain. Shashi Kant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रत्युद्गम्य तोयहस्ता तत्प्रतीक्षां चकार सा । रामोऽपि पूर्ववल्लोकान्सप्तकक्षास्वनुक्रमात् ॥६९॥
प्रविशन्सकलानाज्ञां ददौ तांस्तान्स्वतोषयत् । ततोऽग्रे बन्धुभिर्गेहं पुत्राभ्यां संविवेश सः ॥७०॥
ददर्श जानकीं रामः पीतकौशेयधारिणीम् । साऽपि रामं ययौ सीता लज्जयाऽवनतानना ॥७१॥
वक्त्रनेत्रकटाक्षैश्च मोहयन्ती रघूत्तमम् । नानालङ्कारसंयुक्ता वरनूपुरनिःस्वना ॥७२॥
ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा धृत्वा सीताकरं मुदा । लक्ष्मणादीन्संविसर्ज्य सीतागेहं विवेश सः ॥७३॥
बहिर्दृष्टं श्रुतं वाऽपि यद्यत्कौतुकमुत्तमम् । तत्सर्वं जानकीं प्राह तोषयामास तां मुहुः ॥७४॥
ततः सर्वान् समाहूय भोजनार्थं समुद्यतः । स्नानं कृत्वा स मध्याह्नं कर्म चक्रे रघूत्तमः ॥७५॥
तर्पयित्वा पितॄँश्चापि नैवेद्यान् शम्भवे ददौ । वैश्वदेवं ततः कृत्वा बलिदानं विधाय सः ॥७६॥
दत्त्वा भूतबलिं चापि पितॄंश्चापि स्वधेति च । बहिस्त्यक्त्वा काकबलिं त्वतिथीन्पूज्य सादरम् ॥७७॥
यतींश्च ब्राह्मणान्पूज्य हेमपात्रेषु राघवः । परिवेष्टितेषु जानक्या त्रिपदासु धृतेषु च ॥७८॥
तैः सर्वैर्भोजनं चक्रे स्नुषाभिर्वीजितो मुदा । करशुद्धिं ततः कृत्वा भुक्त्वा तांबूलमुत्तमम् ॥७९॥
ददौ तेभ्यो दक्षिणाश्च विप्रेभ्यो रघुनायकः । गत्वा शतपदं रामो निद्राशालां ययौ शनैः ॥८०॥
एतस्मिन्नंतरे सीता भुक्त्वा रामान्तिकं ययौ । वीजयामास श्रीरामं मञ्चकस्थं पुरःस्थिता ॥८१॥
चकार निद्रां श्रीरामो मञ्चके सीतया सह । ता दास्यो वीजयामासुर्दिव्यालङ्कारभूषिताः ॥८२॥
ततः प्रबुद्धा सा सीता प्रबुद्धोऽभूद्रमापतिः । सारिभिः सीतया क्रीडां तथा बुद्धिबलेन हि ॥८३॥
नानाकृत्रिमसैन्यैश्चाकरोदन्यैरपि प्रभुः । ततो द्राक्षामण्डपाधो जलयंत्रादिकौतुकम् ॥८४॥
दृष्ट्वा पक्षिकुलान्सर्वान्पञ्जरस्थान्ददर्श सः । गत्वा सोपानमार्गेण प्रासादाग्रे पुरीं निजाम् ॥८५॥

के कौतुक देखनेके बाद पहिलेकी तरह अपने घरको लौट आते थे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उस समय गोमुखादि बाजे बजने लगते थे। उन बाजोंको सुनकर घबड़ायी हुई सीता हाथमें जलकी झारी लेकर रामके आनेकी प्रतीक्षा करने लगती थीं। राम भी पहलेकी तरह सातों चौक लांघकर ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ चलते हुए सब लोगोंको प्रसन्न करते जाते थे। फिर भाई तथा पुत्रोंके साथ आगे बढ़ते हुए अपने भवनमें जाते थे ॥ ७० ॥ वहां पीले रङ्गके रेशमी कपड़े पहने सीताको देखते और सीता भी लज्जाके मारे सिर झुकाये अपने तिरछे नेत्रकटाक्षोंसे रामको मुग्ध करती हुई सामने जाती थीं। उस समय सीताके अलङ्कारों और नूपुरोंकी अनेक प्रकारकी झनकार सुनायी पड़ती थी ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ इसके बाद राम जल लेकर हाथ-पैर धोते, कुल्ला करते और सीताका हाथ अपने हाथसे पकड़कर उठते थे। तब लक्ष्मण आदिको विदा करके सीताके महलोंमें जाते थे ॥ ७३ ॥ वहाँपर बाहर जो कुछ कौतुक देखे रहते, वह सब एक-एक करके सीताको सुनाते हुए उन्हें प्रसन्न करते थे ॥ ७४ ॥ इसके बाद सब लोगोंको भोजनका बुलावा भेजते और स्वयं स्नान करके मध्याह्नकालीन कर्म करते थे ॥ ७५ ॥ पितरोंका तर्पण करके शिवजीके लिये नैवेद्य अर्पण करते थे। फिर बलिवैश्वदेव करते और काकबलि आदि देते थे ॥ ७६ ॥ तदनन्तर भूतबलि देकर पितरोंकी 'स्वधा' शब्दका उच्चारण करके तृप्त करते, काकबलि बाहर निकाल देते और उसके बाद आदरपूर्वक अतिथियोंका सत्कार करते थे ॥ ७७ ॥ ब्राह्मणों और यतियोंका पूजन कर लेनेके पश्चात् सामने तिपाईपर रक्खे हुए सुवर्णके पात्रोंमें जानकीके हाथों परोसे अनेक प्रकारके पकवानोंको सब लोगोंके साथ खाते थे। उस समय सब पुत्रवधुयें उन लोगोंको पंखा झला करती थीं। भोजन करनेके पश्चात् हाथ धोते और उत्तम ताम्बूल खाकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देते थे। फिर सौ पग चलकर अपनी निद्राशालामें पहुँच जाते थे ॥ ७८-८० ॥ इसी बीच सीता भी भोजन करके रामके पास पहुँच जातीं और वहाँ मञ्चके ऊपर बैठे हुए रामके पास बैठकर पंखा झलने लगती थीं ॥ ८१ ॥ बादमें राम सीताके साथ शय्यापर शयन करते थे, तब दासियाँ उनपर पंखा झलने लगतीं थीं ॥ ८२ ॥ कुछ देर शयन करनेके बाद सीता उठ जातीं और राम भी जाग जाते थे। तब राम सीताके साथ बुद्धिबलसे कुछ देरतक चौंसर आदिके खेल खेलते थे। फिर अंगूरको झाड़ीके नीचे बने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वनारामान्वितां दृष्ट्वा हट्टवीथ्याऽतिरंजिताम् । शनैर्ययौ प्रभुर्गोष्ठं नानधेनूर्ददर्श सः ।८६॥
तां सम्प्रेष्य गृहं सीतां स्वदासीपरिवेष्टिताम् । द्वारांतिकं ययौ रामस्तत्र ते लक्ष्मणादयः ॥८७॥
चक्रुः प्रणामं श्रीरामं तैः सहैव शनैः शनैः । वाजिशालां ययौ रामो दृष्ट्वा तत्र स वाजिनः ॥८८॥
गजशालामुष्ट्रशालां दृष्ट्वा रामः शनैः शनैः । ददर्श शस्त्रशालां च व्याघ्रशालां प्रभुर्ययौ ॥८९॥
दृष्ट्वाऽथ शिबिकाशालां माहिषेयीं विलोक्य च । महिषोर्वृषशालां च रथशालां ददर्श सः ॥९०॥
आरुह्य स्यंदने रामः शनैः सर्वैर्बहिर्ययौ । सप्तकक्षाः समुल्लंघ्य तत्रस्थैः पूर्ववज्जनैः ॥९१॥
सर्वैर्युक्तश्चाष्टमां तां श्रेष्ठां कक्षां ददर्श सः । तत्र यन्त्राणि श्रेष्ठानि शतघ्नीः शकटस्थिताः ॥९२॥
तृणकाष्ठादिसद्मानि दूतस्थानान्यपश्यत । ततो नवमकक्षायां ददर्श रघुनन्दनः ॥९३॥
शस्त्रपाणीन्वारणस्थान् तुरगस्थाननेकशः । रक्षयन्ति हि ये सर्वे स्वीयं गेहं त्वहर्निशम् ॥९४॥
एवं स नवकक्षाश्च समुल्लंघ्य रघूत्तमः । बहिः स सद्मनो दृष्ट्वा परिखाः सजला नव ॥९५॥
शनैः पश्यन्नयोध्यां तां राजमार्गे मुदान्वितः । शीघ्रं ययौ पुरद्वारं ददर्श द्वाररक्षकान् ॥९६॥
नवकक्षास्त्वयोध्यायाः समुल्लंघ्य शनैः प्रभुः । परिखाश्च नवापश्यत्तोयवह्न्यादिपूरिताः ॥९७॥
ततो नानावनारामकौतुकानि रघूत्तमः । पश्यन्स बन्धुपुत्रैश्च सरय्वास्तीरमाययौ ॥९८॥
तत्र स्थित्वा सुनौकायां क्रीडां कृत्वा कियत्क्षणम् । नद्यास्तटे सभायां स तस्थौ सैन्ययुतः प्रभुः ॥९९॥
तत्रापि वारवेश्यानां पश्यन्नृत्यानि राघवः । कियत्कालमतिक्रम्य ययौ शीघ्रं ततः पुरीम् ॥१००॥
ततः शनैः सभां गत्वा पूर्वोक्तैश्चोपचारकैः । लक्ष्मणाद्यैः सेवितश्च तस्थौ सिंहासनोपरि ॥१०१॥
ततः कृत्वा ह्यनेकानि नानाकार्याणि राघवः । आज्ञाप्य बन्धुपुत्रांश्च पूर्ववत्स गृहं ययौ ॥१०२॥

फौवारे आदि देखते थे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ फिर पींजरोंमें पाले हुए पक्षियोंको देखते थे । तत्पश्चात् सीढ़ीके मार्गसे सर्वोच्च प्रासादपर चढ़ जाते और वहाँसे वनों और बगीचोंसे अलंकृत, बाजारों तथा गलियोंसे अतिरंजित अपनी अयोध्यापुरीको देखते थे । फिर धीरे-धीरे गोशालामें जाते और वहाँकी गौओंको देखा करते थे ॥ ८५ ॥ ॥ ८६ ॥ इसके अनन्तर दासियों समेत सीताको घर भेज देते और स्वयं फोहारेकी ओर जाते थे । वहाँ लक्ष्मण आदि भ्राता रामको सविनय प्रणाम करते थे ॥ ८७ ॥ फिर उनको साथ लेकर राम धीरे-धीरे अश्वशालाको जाते । वहाँ घोड़ोंको देखकर ॥ ८८ ॥ गजशाला और उष्ट्रशालाको देखते हुए अस्त्रशाला तथा व्याघ्रशालाका अवलोकन करते थे ॥ ८९ ॥ फिर शिबिकाशाला और महिषीशालामें जाकर शिबिकाओं तथा भैंसोंको देखनेके बाद रथशाला देखते थे ॥ ९० ॥ तत्पश्चात् एक रथपर सवार होकर शनैः शनैः बाहरकी तरफ जाया करते थे । बादमें महलके सातों चौकोंको लांघते एवं पहलेकी तरह उपस्थित सब लोगों देखते हुए आठवें फाटकवाले आँगनमें पहुँचते थे । वहाँपर लड़ाइयोंमें -काम आनेवाले कितने ही यन्त्र तथा बहुत-सी तोपें रक्खी रहती थीं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ उन्हें देखकर दूतोंके निवाससंस्थान तथा तृण-काष्ठादिके संग्रहभवनको देखनेके अनन्तर नवें आँगनमें पहुँचते थे ॥ ९३ ॥ वहाँ यह देखते थे कि हाथमें शस्त्र लिये घोड़े और हाथीपर सवार होकर सिपाही रात-दिन अपने-अपने स्थानोंकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ९४ ॥ इस प्रकार नवों कक्षाओंको लाँघकर कोटके चारों ओर जलसे भरी बाहरकी नौ खाइयोंको देखते थे ॥ ९५ ॥ इसके बाद राजमार्गसे चलकर अयोध्याको देखते हुए शीघ्र पुरद्वारपर पहुँचते और वहाँपर रहनेवाले द्वाररक्षकोंकी देख-रेख करते थे ॥ ९६ ॥ फिर अयोध्याकी नौ कक्षाओंको लाँघकर जल और अग्निसे परिपूर्ण नौ परिखाएँ और अनेक बाग-बगीचेके कौतुक देखते हुए अपने भाइयों और पुत्रोंके साथ सरयूके तीर पहुँचते थे ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ वहाँ एक अच्छी नौकापर बैठ तथा कुछ देरतक सैर करके सेनाके शिबिरमें जाते और सैनिकोंके साथ सभामें बैठते थे ॥ ९९ ॥ वहाँ कुछ समय तक वेश्याओंके नृत्य देखकर पुरीमें लौट आया करते थे ॥ १०० ॥ तदनन्तर सभामें जाते और पूर्वमें जो कह आये हैं उन सबके साथ लक्ष्मणादि भ्राताओंसे सेवित होकर सिंहासनपर बैठते थे ॥ १०१ ॥ वहाँ अनेक कार्योंको करनेके पश्चात् भाइयों और पुत्रोंको अपने-अपने घर जाने-

CC-0. In Public Domain. Kirikant Sharma Rajafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सायंकाले ततः संध्यां कृत्वा हुत्वा यथाविधि । गंधाद्यैरुपचारैश्च शिवं सम्पूज्य भक्तितः ॥१०३॥
कृत्वोपहारं विप्रैश्च पुत्राभ्यां बन्धुभिः सह । शिबिकायां पुनः स्थित्वा देवतायतनेषु च ॥१०४॥
साकेतस्थेषु श्रीरामो गत्वा नत्वा शिवादिकान् । नानाविधान्देवसंघान् फलैः पुष्पैरपूजयत् ॥१०५॥
देवालयेषु सर्वेषु सुराणां तेषु राघवः । शृण्वन्नानाकीर्तनानि वारस्त्रीनर्त्तनान्यपि ॥१०६॥
पश्यन्नानाकौतुकानि परां मुदमवाप सः । वाहनारूढदेवानामपश्यत्कौतुकानि च ॥१०७॥
ततो ययौ वाहनेन हट्टमार्गेण राघवः । रत्नदीपप्रकाशैश्च विवेश निजमंदिरम् ॥१०८॥
ततो नानाकथाभिश्च वार्ताभिः पुत्रबन्धुभिः । सार्धयामां निशां नीत्वा रतिगेहे विवेश सः ॥१०९॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र सीताऽग्रे रतिमन्दिरे । पुष्पशय्यादि सम्पाद्य तत्प्रतीक्षां चकार सा ॥११०॥
तावदायांतमालोक्य सहसोत्थाय जानकी । धृत्वा हस्ते राघवेंद्रं रतिशालां निनाय सा ॥१११॥
सर्वा विसर्ज्य दासीश्च मुक्ताजालान्यनेकशः । समंततो विमुच्याथ तस्थौ रामः स मंचके ॥११२॥
ततस्तां मैथिलीं धृत्वा मंचके संन्यवेशयत् । नाना क्रीडां विधायाथ तस्थौ रामः स मंचके ॥११३॥
ततस्तुष्टं रमानाथं जानकी लज्जिताऽब्रवीत् । राम राजीवपत्राक्ष किंचित्पृच्छामि मे वद ॥११४॥
कुशजन्मानन्तरं हि कथं गर्भो मया न वै । धार्यते कारणं त्वस्य किमस्ति तद्वदस्व माम् ॥११५॥
तत्सीतावचनं श्रुत्वा सस्मितं प्राह राघवः । हे सीते कंजनयने सम्यक् पृष्टं त्वया मम ॥११६॥
तत्सर्वं ते वदाम्यद्य तच्छृणुष्व सुमध्यमे । किमर्थं च बहून् पुत्रांस्त्वत्र त्वं वांछसि प्रिये ॥११७॥
सद्वंशे बहवः पुत्रा न योग्यास्त्वत्र वै भुवि । कदैकस्य दुराचारात्कुलस्य लांछनं भवेत् ॥११८॥
अतएव ममेच्छा न बहुपुत्रेषु मैथिलि । मदिच्छया त्वया गर्भो धार्यते न कदाचन ॥११९॥
पुत्रस्त्वेकः प्रतीक्ष्यो हि यः कुलं भूषयेद्गुणैः । किं जाता बहवः पुत्रा दुष्टास्ते कुमयो यथा ॥१२०॥

की आज्ञा देकर स्वयं भी अपने घर चले जाते थे ॥ १०२ ॥ सायंकालके समय विधिपूर्वक सन्ध्या और हवन करके धूप-दीप-गन्धादि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक शिवजीको पूजा करते थे ॥ १०३ ॥ फिर भोजन करके पुत्रों तथा बाँधवोंके साथ पालकीमें बैठकर देवताओंके मन्दिरोंको जाते थे ॥ १०४ ॥ साकेतपुरी (अयोध्या) के सब मन्दिरोंमें जाकर शिवादिक देवताओंको नमस्कार करके फल-फूलसे पूजन करते थे ॥ १०५ ॥ उन्हीं देवालयोंमें थोड़ी देर तक हरिकीर्तन सुनते तथा गणिकाओंका नृत्य देखते थे ॥ १०६ ॥ इस प्रकार विविध कौतुकोंको देखकर राम बहुत प्रसन्न होते थे । तदनन्तर देवताओंकी सवारीके कौतुक देखते थे ॥ १०७ ॥ इसके बाद सवारीपर चढ़कर रत्नके बने दीपकोंके प्रकाशमें चलते हुए राजमार्गसे अपने घर जाते थे ॥ १०८ ॥ फिर पुत्रों तथा भ्राताओंके साथ कुछ देरतक इधर-उधरकी बातें करते और डेढ़ पहर रात बीतनेके बाद रतिशालामें प्रविष्ट होते थे ॥ १०९ ॥ उधर सीता अपनी रतिशालामें फूलोंकी शय्या बिछाकर रामके आनेकी प्रतीक्षा करती रहती थीं ॥ ११० ॥ वे रामको आते देखतीं तो तुरन्त आगे बढ़तीं और उनका हाथ पकड़कर रतिशालाके भीतर ले जाती थीं ॥ १११ ॥ वहाँ सीताकी सेवामें उपस्थित दासियोंको विदा करके रामचन्द्र कमरेकी सारी खिड़कियाँ खोलकर शय्यापर बैठते थे ॥ ११२ ॥ इसके बाद सीताका हाथ पकड़कर उन्हें भी बैठाते और विविध क्रीड़ा करके सीताको प्रसन्न करने लग जाते थे ॥ ११३ ॥ इस प्रकार प्रसन्न रामको देखकर एक दिन सीताने लज्जित भावसे कहा—हे राजीवपत्राक्ष राम ! मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि कुशके जन्म लेनेके बाद फिर मेरे गर्भ क्यों नहीं रहता ? इसका कारण बतलाइये ॥ ११४–११५ ॥ इस प्रकार सीताका प्रश्न सुनकर मुस्कुराते हुए राम कहने लगे—हे कमलनयनी सीते ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । मैं सब कारण बतलाता हूँ ॥ ११६ ॥ हे सुमध्यमे ! तुम सावधान होकर सुनो । हे प्रिये ! पहले मुझे यह बतलाओ कि तुम अधिक पुत्र क्यों चाहती हो ? ॥ ११७ ॥ इस संसारके अच्छे कुलमें अधिक पुत्र होना ठीक नहीं है । बहुतेरे पुत्रोंमें यदि एक पुत्र भी दुराचारी निकल गया तो सारे कुलपर लाञ्छन लग जाता है ॥ ११८ ॥ इसलिये हे मैथिलि ! मुझे अधिक पुत्रोंकी इच्छा नहीं है । मेरी इच्छा न रहनेके कारण ही तुम्हें गर्भ नहीं रहता ॥११९॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

द्वावेवास्तां कदाचिच्च यथा नेत्रे भुजौ यथा । यथा तौ शशिसूर्यौ च यथाऽहं लक्ष्मणस्तथा ॥१२१॥
तवापि जातौ द्वौ पुत्रौ माऽग्रेऽस्तु संततिस्त्वतः । ततः प्राह पुनः सीता न जाता दुहिता मम ॥१२२॥
एकाऽपि कारणं तत्र किमस्ति तद्वदस्व माम् । तत्सीतावचनं श्रुत्वा जानकीं प्राह राघवः ॥१२३॥
त्वत्कन्या च मया कस्मै देयाऽत्र जगतीतले । मत्समानो नृपः कोऽस्ति सप्तद्वीपपतिर्महान् ॥१२४॥
यस्य पत्न्यै त्वया कार्यं शिरसा नमनं तदा । को वरोऽस्ति जगत्यां हि नृपस्य तनयो महान् ॥१२५॥
प्रक्षालनीयौ चरणौ विवाहे यस्य वै मया । अतएव ममेच्छाऽभूत्कन्यायामपि नो प्रिये ॥१२६॥
कुशादीनां तु याः कन्यास्तास्ते किं नैव बालिकाः। किं यौवनमदात्सीते मोहं प्राप्ताऽसि भूतले ॥१२७॥
आत्मानं विस्मृताऽस्यद्य त्रैलोक्यजननीमिति । यदत्र विश्वे स्त्रीरूपं दृश्यते तत्त्वदंशजम् ॥१२८॥
पौरुषं दृश्यते यच्च तच्च सर्वं ममांशजम् । अत्र स्त्रीपुरुषा ये च ते पुत्रदुहितास्तव ॥१२९॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । इति यद्वचनं सीते सामान्यं विद्धि नो वरम् ॥१३०॥
एकः स तनयो धन्यः कुलं यस्तारयेन्निजम् । कृमितुल्याश्च ते पुत्राः शतशो दुष्टमार्गगाः ॥१३१॥
इति यद्वचनं सीते वरिष्ठं तत्स्मृतं बुधैः । अन्यत्ते कारणं वच्मि यस्मात्त्व बहवः सुताः ॥१३२॥
मया नैवार्पितास्त्वत्र तच्छृणुष्व शुचिस्मिते । विनोदात्ते वदाम्यद्य माऽन्यथा कुरु मद्वचः ॥१३३॥
बहुपुत्रैश्च नारीणां तारुण्यं स्थास्यते न हि । मत्वेति तव तारुण्यच्छेदिनी बहुसन्ततिः ॥१३४॥
न मयाऽत्रार्पिता सीते गुह्यं विद्धीति मे प्रिये । यदीच्छाऽस्ति बहूनां ते तनयानां विदेहजे ॥१३५॥
तर्हि ते द्वापरे कृष्णरूपेण द्वारकापुरि । दश पुत्रान् प्रदास्यामि तदा तेषां सुखं भज ॥१३६॥

केवल एक ऐसे पुत्रकी इच्छा करनी चाहिए कि जो अपने अलौकिक गुणोंसे कुलको विभूषित कर सके। कोड़ोंकी तरह व्यर्थ जन्म लेनेवाले बहुतेरे दुष्ट पुत्रोंसे क्या लाभ ॥ १२० ॥ बस, ये दोनों चिरञ्जीवी रहें। ये मेरे दो नेत्र, दो भुजा, चन्द्र-सूर्य और हमारे तथा लक्ष्मणके सदृश हैं। तुम्हारे दो बेटे तो हो ही गये हैं, अब और सन्तति न हो यही ठीक है। फिर सीताने कहा—लेकिन हमारी कोई कन्या क्यों नहीं हुई ? ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ इसका क्या कारण है ? सो हमसे कहिये। सीताका यह प्रश्न सुनकर रामने कहा कि यदि तुम्हारे कन्या होती तो मैं किसको देता ? संसारमें कौन ऐसा है, जो मेरा जामाता बन सके ? हमारे बराबर कौन राजा है, जो सातों द्वीपोंका अधीश्वर है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ जिसकी स्त्रीको तुम मस्तक झुकाकर प्रणाम कर सको। संसारमें कौन ऐसा वर मिल सकता है कि विवाहमें जिसके पैर मैं अपने हाथोंसे धोता। इसी कारण मैंने पुत्रीकी इच्छा नहीं की ॥१२५॥१२६॥ फिर कुश आदिके जो कन्याएँ उत्पन्न हुई हैं, वे क्या तुम्हारी नहीं हैं ? हे सीते! यौवनके मदसे तुम पागल तो नहीं हो गयी हो ? ॥ १२७ ॥ जो तीनों लोकोंकी माता होकर भी ऐसी ऊटपटांग बात कर रही हो। इस संसारमें जितना स्त्रीरूप दीखता है, वह सब तुम्हारे ही अंशसे जायमान हुआ है ॥१२८॥ संसारमें जितना भी पुरुषरूप है, वह मेरे अंशसे उत्पन्न हुआ है। यहाँ जितने पुरुष-स्त्री हैं, वे सब तुम्हारे लड़के और लड़कियाँ हैं ॥ १२९ ॥ शास्त्रोंमें जो यह बात कही गयी है कि "एक ही नहीं, मनुष्यको कई पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा रखनी चाहिए। सम्भव है कि उनमेंसे कोई ऐसा सपूत निकल आये, जो गयामें श्राद्ध करके कुलका उद्धार करे।" यह एक साधारण बात है। यह कोई श्रेष्ठ उक्ति नहीं कही जा सकती ॥ १३० ॥ मेरी रायमें तो अपने कुलका विस्तार करनेवाला केवल एक पुत्र हो। दूषित मार्गपर चलनेवाले कीड़ेकी तरह उत्पन्न सैकड़ों बेटोंसे कोई लाभ नहीं ॥ १३१ ॥ मैं जिस बातका कह रहा हूँ, बहुतसे विद्वानोंने उसे श्रेष्ठ माना है। दूसरा कारण भी बतलाता हूँ कि मैंने तुमसे कई पुत्र क्यों नहीं उत्पन्न किये। हे शुचिस्मिते! मैं विनोदवश इस बातको कह रहा हूँ। इसे व्यर्थ मत जाने देना, ठीकसे समझना ॥ १३२ ॥ बहुत पुत्रोंके होनेसे स्त्रीकी तरुणाई नहीं रह जाती। बहुत सन्तान होनेसे तुम्हारे यौवनका नाश हो जाता ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ यही सोचकर मैंने अधिक सन्तति नहीं उत्पन्न की। यह गुप्त रहस्य जानना। हे विदेहजे! फिर भी बहुत सन्तान पानेकी ही तुम्हारी इच्छा हो तो द्वापरमें कृष्णरूपसे मैं तुम्हें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कन्यामपि तदैकां तेऽहं दास्यामि न संशयः । तदा ते बहुपुत्रैश्च तारुण्यं स्थास्यते न हि ॥१३७॥
अतः स्त्रीणां सहस्राणि षोडशैकशतं पुनः । तथा मुख्यास्त्वष्ट नार्यस्त्वया सह करोम्यहम् ॥१३८॥
तदा बहूनां पुत्राणां स्नुषाणां त्वं सुखं भज । अहं चापि बहुस्त्रीणां तदा सौख्यं भजामि वै ॥१३९॥
इति रामवचः श्रुत्वा तदा सीता स्मितानना । राघवं हर्षिता प्राह वाक्चातुर्यं कुतः प्रभो ॥१४०॥
एतल्लब्धं त्वया राम येन रञ्जयसीह माम् । एवं प्रोक्ता मया शिष्य दिनचर्या रमापतेः ॥१४१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे
उत्तरार्द्धे रामदिनचर्यावर्णनं नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः

(भगवानके विविध अवतार)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा वसिष्ठं हि प्रभाते चाब्रवील्लवः । किंचित्ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद मुनीश्वर ॥ १ ॥
सर्वं यद्यपि जानामि वाल्मीकेश्च प्रसादतः । तथापि लोकान्सकलान् ज्ञातुं पृच्छामि तेऽद्य हि ॥२॥
यदाऽस्माभिर्निशायां हि सर्वैर्निद्रा विधीयते । तदा संश्रूयते कर्णे भस्त्रत्कस्य वै ध्वनिः ॥ ३ ॥
अमुं मत्संशयं छिंधि परं कौतूहलं गुरो । लवस्येति वचः श्रुत्वा वसिष्ठस्तमथाब्रवीत् ॥ ४ ॥
बह्व्यश्च ब्रह्महत्याश्च रावणेन कृताः पुरा । येन देहेन सोऽद्यापि लंकायां ज्वलते लव ॥ ५ ॥
रावणो रामहस्तेन वधान्मुक्तिं गतः क्षणात् । रामचिंतनपुण्येन वैरबुद्ध्या कृतेन च ॥ ६ ॥
आत्मनः सकलं पापं तेन दग्धं पुरैव हि । देहेन न कृतं तस्य देवानां नमनं पुरा ॥ ७ ॥
सम्मार्जनादिकं कर्म देवागारेऽपि नो कृतम् । न कृता तीर्थयात्रा हि तेन देहेन भक्तितः ॥ ८ ॥

दस बेटे दूँगा। उस समय तुम बहुत सन्तानका भी सुख भोग लेना ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ उस समय मैं तुम्हें एक कन्या भी दूँगा। इसमें कोई संशय नहीं है। किन्तु इतना अवश्य होगा कि अधिक सन्तान होनेसे तुम्हारा यौवन ढल जायगा ॥ १३७ ॥ इसी कारण मुझे सोलह हजार एक सौ स्त्रियोंके साथ विवाह करना पड़ेगा और तुम्हारे साथ आठ मेरी मुख्य स्त्रियाँ भी होंगी ॥ १३८ ॥ उस समय तुम बहुतसे पुत्रों और बहुओंका सुख भोगोगी और मैं भी बहुतसी स्त्रियोंका सुख भोग लूँगा ॥ १३९ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर सीताने मुसकाकर कहा—हे प्रभो ! तुमने बातचीत करनेको इतनी चतुराई कहाँसे सीखी ? जिससे इस तरह मेरा मनोरंजन कर रहे हो। इस तरह रामने बहुत देर तक आपसमें बातें कीं और दोनों एक दूसरेका आलिंगन करके आधी रातके समय सो गये। हे शिष्य ! मैंने इस प्रकार तुम्हें रामचन्द्रकी दिनचर्या सुनायी ॥ १४० ॥ १४१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे एकोनविंशः सर्गः ॥१९॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक दिन सबेरे लवने वसिष्ठसे कहा कि हे मुनीश्वर ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, उसे आप बताइए ॥ १ ॥ यद्यपि वाल्मीकिजीकी कृपासे मैं सब कुछ जानता हूँ। फिर भी संसारी लोगोंको ज्ञान प्राप्त करानेके लिए आज आपसे पूछ रहा हूँ ॥ २ ॥ जब कि रात्रिमें हम लोग सोते हैं, तब कानमें धौंकनीकी तरह किसकी ध्वनि सुनायी देती है ॥ ३ ॥ मेरे इस संशयका निवारण करिए। इसका मुझे बड़ा कौतूहल है। लवकी बात सुनकर वसिष्ठने कहा—॥ ४ ॥ रावणने जिस देहसे बहुत-सी ब्रह्महत्याएँ की थीं, हे लव ! वह देह आज भी लंकामें जल रही है ॥ ५ ॥ रामके हाथों वध होने, रामका स्मरण करने और उनके साथ वैरबुद्धि रखनेसे रावण क्षण भरमें मुक्त हो गया। आत्माके सारे पापोंको वह पहले ही जला

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

न देहेन न निष्कामं तपश्चर्याव्रतं कृतम् । न देहः श्रमितस्तस्य शीतोष्णसहनादिभिः ॥ ९ ॥
एतादृशस्तस्य देहो बहुब्राह्मणहिंसकः । लङ्कायां ज्वलतेऽद्यापि निशायां श्रूयतेऽत्र सः ॥१०॥
ज्वालानां भस्त्रवच्छब्दो यः पृष्टो मां त्वया लव । जनशब्दाद्दिने नैव श्रूयतेऽत्र जनैः सदा ॥११॥
चितायां यस्य चाद्यापि वायुपुत्रेण प्रत्यहम् । काष्ठभारशतं नीत्वा लङ्कायां क्षिप्यते मुहुः ॥१२॥
यदा तत्पापशांतिः स्यात्तदा भस्मीभविष्यति । अन्यत्ते कारणं वच्मि तच्छृणुष्व शिशो लव ॥१३॥
देहान्ते रावणेनापि रामाय याचितो वरः । वरेण येन लोकानां स्मरणं मे भविष्यति ॥१४॥
स त्वया मे वरो देयस्तच्छ्रुत्वा राघवोऽब्रवीत् । त्वद्देहज्वलिनि ज्वालाशब्दः सर्वे जना भुवि ॥१५॥
श्रोष्यन्ति सप्तद्वीपेषु तेन ते स्मरणं सदा । भविष्यति हि सर्वेषां ब्रह्मांडांतर्निवासिनाम् ॥१६॥
एवं श्रुत्वा दशास्यः स वरं रामे लयं ययौ । एवं यच्च त्वया पृष्टं तत्सर्वं कथितं मया ॥१७॥
गुरोरिति वचः श्रुत्वा तं नत्वा स लवोऽपि च । स्वगेहं गतसंदेहः प्रययौ शिबिकास्थितः ॥१८॥
एकदा बन्धुभिर्गेहे पुत्राभ्यां सीतया सह । मुनिभिर्गुरुणा रामः संस्थितः प्राह हर्षितः ॥१९॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

शृण्वंतु मुनयः सर्वे सर्वे शृण्वंतु बन्धवः । पुत्रौ सीता मन्त्रिणश्च सर्वाः शृण्वन्तु मातरः ॥२०॥
यथा यथाऽवतारेऽस्मिन् सुखं भुक्तं हि सीतया । न तथाऽन्येषु सर्वेषु ह्यवतारेषु वै कदा ॥२१॥
अवतारास्तु बहवः शतशोऽत्र मया धृताः । नानाकार्याणि वै कर्तुं तेषां संख्या न विद्यते ॥२२॥
सप्तावतारास्तेष्वेव श्रेष्ठास्त्वत्र मया धृताः । ईदृशं न सुखं तेषु कदा भुक्तं मया भुवि ॥२३॥
शंखासुरो महादैत्यः पूर्वं जातो महोदधौ । येन वेदा हृताः सर्वे सत्यलोकात् कृते युगे ॥२४॥
तदर्थं मत्स्यरूपेण ह्यवतारो मया धृतः । तं हत्वा क्षणमात्रेण विष्णुरूपं मया धृतम् ॥२५॥

चुका था, किन्तु शरीरसे उसने कभी देवताओंको नमस्कार भी नहीं किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ न कभी देवमन्दिरकी सफाई की, न उस शरीरसे तीर्थयात्रा की, न अपने शरीरसे कोई निष्काम तपश्चर्या की और न शीत-उष्णको ही सहन करके शरीरसे परिश्रम किया। ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाली उसकी देह आज भी लङ्कामें जल रही है। उसीका शब्द प्रत्येक मनुष्यको सुनाई देता है। ज्वालाकी धकधकाहटका निनाद धौंकनीकी तरह सुनाई पड़ता है ॥ ८–१० ॥ दिनके समय मनुष्योंके कोलाहलसे वह शब्द नहीं सुन पड़ता। आज भी हनुमान्‌जीको रोज सौ भार लकड़ी उसकी चितामें डालनी पड़ती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ जब उसके पाप नष्ट होंगे, तब कहीं उसका शरीर जलेगा। हे बच्चे लव! मैं एक दूसरा कारण भी बतलाता हूँ, सो सुनो ॥ १३ ॥ अपने देहान्तके समय रावणने रामसे यह वरदान माँगा था कि आप हमें कोई ऐसा वर दीजिए, जिससे संसारके लोग मेरा भी स्मरण किया करें ॥ १४ ॥ रामने कहा कि तुम्हारी देह जलानेवाली आगका धक्-धक् शब्द सातों द्वीपोंके हर एक व्यक्तिको सुनाई पड़ता रहेगा। इसीसे सबको तुम्हारी याद आती रहेगी ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस प्रकारका वरदान पाकर वह रामके शरीरमें लीन हो गया। इस तरह तुमने हमसे जैसा प्रश्न किया, सो सब कह सुनाया ॥ १७ ॥ गुरुकी बात सुनकर लवका सन्देह निवृत्त हो गया और वे पालकीमें बैठकर अपने घर चले गये ॥ १८ ॥ एक दिन सब भाइयों, पुत्रों, सीता तथा गुरुके साथ रामचन्द्रजी बैठे थे। प्रसङ्गवश हर्षित होकर राम कहने लगे—॥ १९ ॥ समस्त ऋषि, मेरे सब भाई, दोनों बेटे, सीता, समस्त मन्त्री और माताएं सब लोग मेरी बात सुनें ॥ २० ॥ मैंने इस अवतारमें सीताके साथ जितना सुख भोगा है, उतना किसी भी अवतारमें नहीं भोगा ॥ २१ ॥ विविध प्रकारके कार्यसाधन करनेके लिए मैंने इतने अवतार लिये, जिनकी कोई संख्या नहीं है ॥ २२ ॥ फिर भी मेरे सात अवतार मुख्य हैं, लेकिन उन सातोंमें भी मैंने इतना आनन्द नहीं पाया ॥ २३ ॥ आजसे बहुत दिनों पहले महोदधिमें एक शङ्खासुर नामका दैत्य हुआ था, जो सत्यलोकसे चारों वेदोंको चुरा ले गया था। उसके लिये मैंने मत्स्यरूप धारण किया और उसे मारकर फिर विष्णुरूपधारी बन गया ॥ २४ ॥ २५ ॥ उस मत्स्य तथा तिर्यक् (वराह) योनिमें कोई विशेष सुख नहीं था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किं सुखं झषजात्यां हि तिर्यग्योन्यपि गर्हिता । अतस्तस्मिन्नवतारे न स्थितं हि चिरं मया ॥२६॥
ततः समुद्रमथने मज्जंतं मन्दराचलम् । दृष्ट्वा धृत्वा कूर्मरूपं स्वपृष्ठे पर्वतो धृतः ॥२७॥
तच्चापि गर्हितं रूपं मत्वा नैव चिरं धृतम् । किं वारिचरजात्यां हि सुखं तत्र भवेज्जले ॥२८॥
ततो दृष्ट्वा सागरे हि मज्जन्तीं पृथिवीं मया । क्रोडरूपं महद्धृत्वा दंष्ट्रायामवनिर्धृता ॥२९॥
मम पृथ्वीति संस्पर्धी हिरण्याक्षो मया हतः । किं सुखं पशुयोन्यां हि गर्हितायां भवेज्जले ॥३०॥
अतस्तस्मिंश्चावतारे न लब्धं हि सुखं मया । प्रह्लादवचनात्स्तम्भान्नारसिंहस्वरूपधृक् ॥३१॥
अवतीर्णस्त्वहं भूम्यां हिरण्यकशिपुः क्षणात् । मया तदा हतः क्रोधात्तद्रूपमतिभास्वरम् ॥३२॥
यद्भयान्निकटं कोऽपि प्रह्लादाच्च विनाऽपरः । न मानवः स्थितो भूम्यां तत्र वार्ता सुखस्य का॥३३॥
तदाऽतिक्रोधरूपेण सिंहयोन्यां तु किं सुखम् । मयाऽनुभूतं विपुलं सुखेच्छातृप्तिमाप न ॥३४॥
ततो बलेर्मोहनार्थं खर्वरूपं तु वामनम् । धृत्वा कृत्वा त्रिपद्याञ्च भूमेः पातालगः कृतः ॥३५॥
तत्र किं मुनिदेहेन वने सौख्यं भवेन्मम । न यत्रास्ति यथायोग्यं देहमप्यतिसुन्दरम् ॥३६॥
तत्र का सुखवार्ताऽस्ति भूम्यां मे ब्रह्मचारिणः । अतस्तदैव सहसा नाकलोकं गतं मया ॥३७॥
पुनर्विप्रोद्भवेनैव जामदग्न्यस्वरूपिणा । एकविंशतिवारं हि निःक्षत्रा पृथिवी कृता ॥३८॥
सहस्रार्जुननामा स महावीरो हतस्तदा । तच्चापि क्रोधसंयुक्तं मुनिरूपं मया धृतम् ॥३९॥
सुखवार्ता मुनीनां हि का तत्र वनचारिणाम् । ज्ञात्वेत्थं जन्मना तेन तपश्चर्या मया कृता ॥४०॥
किं सुखं तपतस्तत्र वने मे जातमुत्तमम् । एवं षड् वै धृताः पूर्वमवतारा मया भुवि ॥४१॥
न जाता सुखवार्ताऽपि तत्र क्वापि मुनीश्वराः । द्वापरेऽग्रे कृष्णरूपं गोकुलेऽत्र करोम्यहम् ॥४२॥

इसीलिये उस अवतारमें उस रूपसे मैं ज्यादा दिनोंतक नहीं रहा ॥ २६ ॥ इसके बाद समुद्रमन्थनके समय जब मैंने मन्दराचल पर्वतको डूबते देखा, तब कूर्म (कछुए) का रूप धारण करके उस पर्वतको अपनी पीठपर धारण किया ॥ २७ ॥ उस स्वरूपको भी अच्छा न समझकर मैं अधिक दिनोंतक उस रूपमें नहीं रहा। भला जलचर जाति तथा जलमें रहकर मैं सुखी कैसे हो सकता था ? ॥ २८ ॥ तदनन्तर पृथ्वीको समुद्रमें डूबती देखकर मैंने क्रोड (शूकर) रूप धारण करके पृथ्वीको अपने दाँतोंपर रखकर उठाया ॥ २९ ॥ इस पृथ्वीपर मेरा राज्य है। अतएव यह पृथ्वी मेरी है। इस प्रकार डींग मारनेवाले हिरण्याक्ष नामक असुरका मैंने संहार किया। पशुयोनिमें रहकर भी हमें कोई विशेष सुख नहीं मिला। इसलिए उस रूपको भी जल्दी ही त्याग दिया। फिर प्रह्लादके कथनानुसार नृसिंहरूप धारण करके खंभेसे निकलना पड़ा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उस समय अवतार लेकर मैंने क्षणमात्रमें हिरण्यकशिपुको समाप्त कर दिया। मेरा वह रूप बड़ा तेजस्वी था ॥ ३२ ॥ उसके भयसे प्रह्लादके सिवाय मेरे पास जानेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं थी। बताओ, ऐसी योनिमें मैं सुखी कैसे रह सकता था। उस समय मेरा वह क्रोधपूर्ण रूप था, दूसरे सिंहकी योनि थी। उस योनिको मैंने अनुभव कर लिया। इच्छा थी कि इस रूपमें मैं कुछ आनन्द पाऊँ, लेकिन नहीं पा सका ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तत्पश्चात् बलिको नीचा दिखानेके लिए मैंने बहुत ही छोटा वामनका रूप धारण किया और तीन पैरोंमें सारी त्रिलोकी नापकर बलिको पाताल लोकमें भेज दिया ॥ ३५ ॥ उस समय भी एक तो मुनिका वेष, दूसरे वनोंमें रहना, तीसरे शरीर भी जितना चाहिए उतना सुन्दर नहीं था ॥ ३६ ॥ वनचरकी दशामें पृथ्वीपर रहकर सुख कहाँ था ? इसी लिए उस रूपको भी शीघ्र त्यागकर मैं स्वर्गलोकको लौट गया ॥ ३७ ॥ फिर मैंने ब्राह्मणरूपसे परशुरामका अपतार लेकर इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियशून्य कर डाला। उसी समय महावीर सहस्रार्जुनका बध किया। उस समय भी एक क्रोधी मुनिका रूप धारण करना पड़ा था ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वनमें रहनेवाले मुनियोंको भला कब सुख मिल सकता था। यह समझकर मैंने उस जन्ममें भी तपस्या ही की ॥ ४० ॥ उस तपस्वी जीवनमें वनोंमें रहकर मुझे क्या सुख मिला होगा, इसका आप लोग भी अनुमान कर सकते हैं। इस तरह मैंने छः

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नेदृशं तत्र भोक्ष्यामि सुखं शृणुत विस्तरात् । कारागृहस्थितिः पित्रोर्जन्मादावेव मे भवेत् ॥४३॥
मातृपितृविहीनश्च तदा स्थास्यामि शैशवे । पारकीये नन्दगेहे वृद्धिं गच्छामि गोकुले ॥४४॥
गोपवेषस्य किं सौख्यं गोपृष्ठे भ्रमतो मम । स्त्रीगोनागाश्वपक्ष्यादि बहूँस्तत्र निहन्म्यहम् ॥४५॥
देवपत्नीवरात्कुर्यां परस्त्रीगमनादिकम् । नानाचौर्यादि दुष्कर्म कृत्वाऽहं गोकुले ततः ॥४६॥
मथुरायां हनिष्यामि सगजं कंसमातुलम् । तत्र दास्या रतिं कुर्यां नैष्ठुर्यं गोपिकादिषु ॥४७॥
यद्भुक्ता गोपिकाः सर्वा रामो बन्धुर्भजिष्यति । अन्यच्च कालयवनभयान्मे हि पराभवः ॥४८॥
न पराभवतो दुःखं किंचिदस्ति जगत्त्रये । ततोऽहं स्वस्थलं त्यक्त्वा तटाके सागरस्य च ॥४९॥
स्थास्यामि स्वल्पकालं हि चिरकालं न मे स्थितिः । न स्थलं मध्यदेशे हि न राज्यं मे भविष्यति ॥५०॥
विना राज्येन किं सौख्यं पराज्ञावशवर्तिनः । छत्रादिराज्यभोगाश्च तस्मिन् जन्मनि मे न हि ॥५१॥
बहुस्त्रीणामेकदेहस्तदाऽयं मे भविष्यति । तदा कासां सुखं देयं दुःखं कासां तदा मया ॥५२॥
एवं सदा व्यग्रचित्तस्तासां रंजनकर्मणि । तत्र का सुखवार्त्ताऽस्ति निशायां भ्रमतो मम ॥५३॥
घटिकायां च षट्त्रिंशत्पंचशतगृहाणि हि । पर्यटन्नप्यष्टविंशत्स्त्रीगेहानि तदा मम ॥५४॥
शेषाणि गंतुं नैवास्ति कालो भानुरुदेष्यति । त्रिंशद्घटीमयी रात्रिस्त्वेवं मे सा गमिष्यति ॥५५॥
तदा मे भ्रमतो रात्रौ कुतो निद्रा कुतः सुखम् । यदा भवेन्निशावृद्धिः किंचिन्निद्रां तदाऽऽप्नुयाम् ॥५६॥
यस्येच्छाऽस्त्यत्र दुःखं हि भोक्तुं तेन नरेण हि । कर्तव्या बह्वचः पत्न्यो द्रष्टव्यं तत्फलं ततः ॥५७॥
एवं भवेन्न मे सौख्यं द्वापरे कृष्णजन्मनि । भविष्यत्यवतारस्य समाप्तिर्विप्रशापतः ॥५८॥

अवतार लिये ॥ ४१ ॥ लेकिन उन छहोंमें मुझे सुखका नाम भी नहीं मिला । आगे द्वापर युगमें इस पृथ्वीपर गोकुलमें कृष्णरूसे मैं अवतार लूँगा ॥ ४२ ॥ लेकिन ऐसा सुख उस अवतारमें भी नहीं पा सकूँगा । सुनिए, उस अवतारका विवरण विस्तारपूर्वक आप लोगोंको बतलाता हूँ । जन्मके पहले ही मेरे माता-पिता कारागारमें रहेंगे ॥ ४३ ॥ शैशव कालमें ही माता-पितासे वियुक्त होकर एक अन्य व्यक्ति (नन्द) के घर गोकुलमें रहकर पलूँगा । उस गोपवेषसे गौओंके पीछे-पीछे घूमनेमें मुझे क्या सुख मिलेगा ? फिर गो (वत्सासुर), स्त्री (पूतना), नाग (कालिया), अश्व (केशी) तथा पक्षी (बकासुर) को मारूँगा ॥४४॥४५॥ देवस्त्रियोंके वरदानसे परस्त्रीगमन आदि (पाप) करूँगा । फिर गोकुलमें चोरी आदि दुष्कर्म कर लेनेके बाद मथुरा जाकर हाथी कुवलयापीडके साथ मामा कंसको मारूँगा । वहाँ मुझे गोपियोंके साथ निठुराई करके दासी (कुबड़ी) के साथ विलास भी करना पड़ेगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ जिन गोपियोंको मैंने भोगा होगा, भविष्यमें बलरामजो उन्हें भोगेंगे । फिर कालयवनके भयसे मुझे परास्त भी होना पड़ेगा ॥ ४८ ॥ पराजयसे बढ़कर संसारमें और कोई दुःख नहीं हो सकता । फिर समुद्रके किनारे अपना निवासस्थान बनाकर कुछ दिनों तक वहाँ ही रहूँगा । यह निश्चित है कि उस अवतारमें भी मैं अधिक दिनतक संसारमें न रहूँगा । मध्य देशमें निवासस्थान न रहनेके कारण मेरे पास कोई राज्य भी नहीं रहेगा ॥ ४९ ॥ ५० ॥ राज्यरहित होकर दूसरेकी आज्ञामें रहनेसे भला क्या सुख मिल सकता है ? उस जन्ममें राजाओंकी उपभोग्य वस्तुयें छत्र-चमर आदि भी मेरे पास नहीं रहेंगे ॥ ५१ ॥ बहुत-सी स्त्रियोंके बीच मेरा अकेला शरीर रहेगा । उस समय रात-दिन यही चिन्ता रहा करेगी कि इनमेंसे किसे सुख दें और किसे दुःख । सदा मुझे उनका मनुहार करना पड़ेगा । भला रातभर एक घरसे दूसरे घरकी दौड़ मारनेमें मुझे क्या सुख मिल सकता है ? ॥५२॥५३॥ उस समय एक घड़ीमें पाँच सौ छत्तीस घरोंका चक्कर लगानेपर भी अट्ठाईस घर छूट जायँगे और यही सोचना पड़ेगा कि सूर्योदयका समय हो रहा है, अब किसीके यहाँ जानेका समय नहीं है । इस तरह तीस घड़ीकी रातें बीतेंगी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उस समय रातभर घूमनेमें निद्रा तथा सुख क्योंकर मिल सकेगा ? हाँ, जब रात कुछ बड़ी होगी तो चाहे घड़ी आधी घड़ी सोनेके लिये समय मिल जाय ॥ ५६ ॥ जिस मनुष्यको संसारमें दुःख भोगनेको इच्छा हो, वह कई स्त्रियोंको रख ले और फिर देखे उसका फल ॥ ५७ ॥ भाव यह है कि मुझे उस अवतारमें भी कुछ सुख

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ततो दैत्यान्यज्ञकर्मसक्तान्दृष्ट्वा पुनस्त्वहम् । कलावग्रे बुद्धरूपं धरिष्याम्यतिमोहनम् ॥५९॥
निजवाक्यैर्मतिस्तेषां दैत्यानां यज्ञकर्मतः । परिवर्त्य कियत्कालं स्थास्यामि जगतीतले ॥६०॥
तदाऽहं मौनमाश्रित्य मलिनः केशलुञ्चकः । युगादिजीवधारी च सर्वेषामुपदेशकृत् ॥६१॥
अहिंसनव्रतं सर्वान् दर्शयिष्याम्यहं जनान् । तज्जन्मन्यतिदुःखं मे केशयूकामलादिना ॥६२॥
ततोऽग्रेऽहं धरिष्यामि कल्किरूपं महत्कलेः । अंते दृष्ट्वा जनानां च सर्वत्र वर्णसंकरम् ॥६३॥
भूत्वाऽत्र विप्रदेहेन खड्गधारी हयस्थितः । संहारं क्षणमात्रेण दुष्टानां हि करोम्यहम् ॥६४॥
सोऽवतारो नातिचिरं मम स्थास्यति भूतले । न तत्र सुखलेशोऽपि मे भविष्यति भूसुराः ॥६५॥
प्रवर्तयिष्यति पुनस्ततोऽग्रे तत् कृतं युगम् । पूर्ववच्च पुनस्तत्र ह्यवतारान्करोम्यहम् ॥६६॥
एवं नवावतारेषु न भुक्तं हि सुखं मया । अतस्त्वस्मिन्नवतारे सुखं भुक्तं यथेच्छया ॥६७॥
नानेन सदृशः कश्चिदवतारोऽवनीतले । पूर्वं भूतो ममाग्रेऽपि न भविष्यति वै कदा ॥६८॥
सप्तलोकाधिपत्यं च नारी सीता च वर्तते । यत्रेमौ बालकौ पुत्रौ महावीरौ धनुर्धरौ ॥६९॥
यत्र त्वेते बंधवश्च त्रैलोक्यजयिनः शुभाः । कामधेन्वादिरत्नानि सप्त यत्र ममान्तिके ॥७०॥
साक्षादयं वेदरूपो वसिष्ठस्त्वस्ति मे गुरुः । आर्यावर्ते पुण्यदेशेऽयोध्यायां वसतिर्मम ॥७१॥
राज्यभोगादिभोगानां भोक्ताऽहं त्वत्र नोऽपरः । यत्र सत्यव्रतं मेऽस्ति यत्रैकदयिताव्रतम् ॥७२॥
यत्रैकेनैव बाणेन मया बाल्यादिका हताः । यत्रैकैव हि सीताया मम शय्या न चापरा ॥७३॥
यत्राप्रतिहताज्ञा मे त्रैलोक्ये हि मुनीश्वराः । यत्र यानं पुष्पकं तु यत्र दूतोऽञ्जनीसुतः ॥७४॥
सुग्रीवराक्षसेन्द्रौ च यत्र मित्रे ममांतिके । कोदण्डसदृशं चापं यत्र मेऽरिनिषूदनम् ॥७५॥
सूर्यवंशे यत्र जन्म ततो दशरथो वरः । कौसल्या यत्र जननी यत्राहं स्ववशः सदा ॥७६॥

नहीं मिलेगा। अन्तमें ब्राह्मणके शापसे मेरे उस अवतारकी समाप्ति होगी ॥ ५८ ॥ इसके अनन्तर कलिमें दैत्योंको यज्ञकर्म करते देखकर मैं अतिशय मनोमोहक बौद्ध अवतार लूँगा ॥ ५९ ॥ अपनी बातोंसे उन दुष्टोंकी मति यज्ञकी ओरसे फेरकर कुछ दिनों तक मैं संसारमें रहूँगा ॥ ६० ॥ उस समय मैं मौनव्रत धारण करके मैले-कुचैले कपड़े पहने और कितने ही जूँ आदि जीवोंको शरीरमें पाले हुए सारे संसारके लोगोंको उपदेश दूँगा। सबको अहिंसाव्रतका अभिनय दिखाऊँगा। उस जन्ममें बालोंमें पड़े हुए जूएँ, कपड़ोंके चीलर तथा खटमल आदिसे महान् दुःख उठाना पड़ेगा ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ फिर कलियुगके अन्तमें सब लोगोंको वर्णसंकर होते देखकर मैं कल्कि अवतार लूँगा ॥ ६३ ॥ उस जन्ममें एक विप्रके यहाँ उत्पन्न हो और घोड़ेपर सवार होकर क्षणमात्रमें दुष्टोंका संहार कर डालूँगा ॥ ६४ ॥ हे ब्राह्मणों ! वह अवतार भी चिरस्थायी नहीं होगा। अतएव उसमें भी मैं कुछ सुख नहीं भोग सकूँगा ॥ ६५ ॥ उसके बाद फिर सत्ययुग आ जायगा और मैं पहलेकी तरह फिर अवतार लेता रहूँगा ॥ ६६ ॥ इस तरह नौ अवतारोंमें कुछ सुख नहीं मिलेगा। किन्तु इस अवतारमें मैंने अपने इच्छानुसार सुख भोग लिया है ॥ ६७ ॥ इस अवतारके समान कोई अवतार जगतीतलमें न हुआ है, न होगा ॥ ६८ ॥ जिसमें सातों द्वीपोंका प्रभुत्व, सीता जैसी स्त्री, कुश-लव जैसे महावीर और धनुर्धारी पुत्र, तीनों लोकोंको जीतनेवाले भ्राता और कामधेनु आदि सात रत्न विद्यमान हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥ जहाँ वेदके साक्षात् स्वरूप वसिष्ठ जैसे गुरु हैं, आर्यावर्त जैसे पवित्र देशमें निवासस्थान है, राज्यभोगको प्रतिद्वन्द्विता करनेवाला और कोई नहीं है, जहाँ सत्यका व्रत है, जहाँ अटल एकपत्नीव्रत है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जहाँ केवल एक बाणसे शत्रुको मारनेकी सामर्थ्य है, जहाँ सीताकी और हमारी एक शय्या है ॥ ७३ ॥ जहाँ मुनिगण बेरोक-टोक जहाँ चाहें, तहाँ आ जा सकते हैं। जहाँ कि पुष्पकविमान जैसी सवारी है ॥ ७४ ॥ सुग्रीव और विभीषण जैसे मित्र हैं, शत्रुओंका नाश करनेवाला कोदण्ड जैसा धनुष है ॥ ७५ ॥ सूर्यवंशमें जन्म हुआ है, दशरथ जैसे पिता और कौसल्या जैसी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुमेधासदृशी यत्र मे श्वश्रूः स्नेहवर्धिनी । विदेहः श्वशुरो यत्र विद्यादो यत्र गाधिजः ॥७७॥
लक्ष्मणो यत्र मे मन्त्री सरयूर्यत्र मे नदी । पार्श्वगा ह्यङ्गदाद्याश्च चतुर्दन्तो गजो महान् ॥७८॥
द्विजेच्छापूरणं यत्र व्रतं मेऽकुण्ठितं सदा । इदं वैकुण्ठसदृशं गृहं यत्रातिभासुरम् ॥७९॥
चिंतामणिरलंकारो हृदये यत्र वर्तते । एकादश सहस्राणि वर्षाण्यायुश्चिरं मम ॥८०॥
अनम्रं मे शिरश्चेदं केषामप्यवनीभृताम् । एवं मया सुखं भुक्तमिह जन्मनि भूसुराः ॥८१॥
नाल्पा वाप्युर्वरिताऽस्ति सुखेच्छा मम भूतले । अतएवावतारोऽयं पूर्णरूपान्मया धृतः ॥८२॥
भूतभाव्यावतारा ये तेंऽशादेव मया धृताः । यद्वृत्तं तु वने पूर्वं सीतया बन्धुना मया ॥८३॥
तच्च लोकोपदेशार्थं भूभारहरणाय च । जनोपदेशः कीदृक् स कृतस्तं प्रवदाम्यहम् ॥८४॥
पितुर्वचो माननीयं यद्यप्यतिश्रमप्रदम् । पुत्रैरित्युपदेशार्थं मया वाक्यं पितुः कृतम् ॥८५॥
न तदा किं मृषा कर्तुं पितुर्वाक्यं बलं मयि । तथापि लोकशिक्षार्थं तद्वाक्यं पालितं मया ॥८६॥
न हंतव्या मया क्रोधाद्दुष्टा किं कैकयी तदा । तथा सा मंथरा चापि मे राज्ये विघ्नकारिणी ॥८७॥
किं तदा कुंठिता शक्तिः कैकेयीमंथरावधे । स्त्रीहत्या नैव कर्तव्या चेति सर्वान्सुशिक्षितम् ॥८८॥
सापत्नमातृवाक्यं तु पालनीयं स्वमातृवत् । स्वसुखार्थं वधोऽन्यस्य न कर्तव्यो जनैरिति ॥८९॥
उपदेष्टुं मया नैव कैकयीमंथरे हते । न बंधुहिंसा कर्तव्या परराज्यं न कांक्षयेत् ॥९०॥
अहमुपदिशन्नित्थं जनान्बंधुर्हतो न मे । मृते पितर्यपि हृतं न तद्राज्यं बलान्मया ॥९१॥
राज्यासक्ता नरा भूम्यां भोगासक्ता भवन्तु न । उपदेष्टुं जनानित्थमहं पूर्वं वनं गतः ।९२॥
मातृपितृसुहृत्पुत्रस्नेहासक्तिं न कारयेत् । इत्थं मयोपदिशता त्यक्तः स्नेहस्तदा द्विजाः ॥९३॥

माता है, जहाँ कि मैं सदा स्वाधीन रहता हूँ ॥ ७६ ॥ स्नेहको बढ़ानेवाली सुमेधा जैसी सास है, विदेह जैसे ससुर हैं, विश्वामित्र जैसे विद्यादाता गुरु हैं ॥ ७७ ॥ लक्ष्मण जैसे मंत्री हैं, सरयू जैसी नदी है, अङ्गदादि वीर अङ्गरक्षक हैं, बड़ा भारी चतुर्दन्त हाथी है ॥ ७८ ॥ ब्राह्मणोंकी इच्छा पूर्ण करना जैसा अकुण्ठित व्रत हैं, वैकुण्ठके समान सुन्दर भवन है ॥ ७९ ॥ चिन्तामणि जैसा अलङ्कार सदा हृदयपर रहता है, जहाँ ग्यारह हजार वर्षोंकी लम्बी आयु है ॥ ८० ॥ किसी भी राजाके सामने न झुकनेवाला यह मस्तक है। यहाँ जो सुख है, सो क्या अन्यत्र मिल सकता है ? हे विभो ! इस संसारमें मैंने जिन सुखोंका भोग किया है, सो बतला दिया ॥ ८१ ॥ अब मेरे हृदयमें किसी प्रकारका भी सुखभोग करनेकी कामना शेष नहीं रह गयी है। इसीलिए मैंने पूर्णरूपसे इस अवतारको धारण किया था। भूत तथा भविष्यके अवतारोंमें जो अंश बाकी रह गये थे, उनके समेत यह अवतार लिया है। जो बाल्यकालमें सीता तथा भाईके साथ वनकी यात्रा की थी, वह दुःख भोगनेके लिए नहीं। बल्कि दुनियाँके लोगोंको उपदेश देनेके लिए की थी। उससे मैंने संसारी जनोंको कौन-सा उपदेश दिया है, सो भी बतला रहा हूँ ॥ ८२-८४ ॥ चाहे अतिशय परिश्रमसाध्य हो, फिर भी पिताकी बात माननी चाहिये। यह उपदेश देनेके लिए मैंने उस समय पिताकी आज्ञाका पालन किया था ॥८५॥ क्या पिताकी बात टालनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं थी ? थी, पर लोकशिक्षाके लिये उनकी बात मान ली थी ॥८६॥ क्या उस समय दुष्टा कैकेयी तथा राज्यतिलकमें विघ्न डालनेवाली पापिनी मन्थराके वध करनेका पराक्रम मुझमें नहीं था ? था, पर उनको दण्ड न देकर मैंने संसारको यह शिक्षा दी कि स्त्रीका वध कभी भी न करना चाहिए और अपनी सौतेली माँकी आज्ञाका भी उसी तरह पालन करना चाहिए, जैसे लोग अपनी सगी माताका करते हैं। दूसरे मुझे लोगोंको यह भी उपदेश देना था कि अपने सुखके लिए परायेका वध न करना चाहिए। इसीसे कैकेयी और मन्थराको नहीं मारा ॥ ८७-८९ ॥ अपने भाईकी हिंसा न करे और दूसरेका राज्य न हड़पना चाहे। यह उपदेश देनेहीके लिये मैंने भरतपर आँख नहीं उठायी, उन्हें नहीं मारना चाहा। पिताके स्वर्गवासी हो जानेपर भी मैंने उस राज्यको नहीं स्वीकार किया ॥ ९० ॥ ९१ ॥ राज्यमें आसक्त लोग सर्वथा विलासी न हो जायँ, यह उपदेश देनेके लिए ही मैं वनको गया था ॥ ९२ ॥ माता, पिता, मित्र,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुखं दुःखं समं ज्ञेयं सुखं हर्षो न मानयेत् । शोकः कार्यो विपत्तौ न चेति लोकान् प्रदर्शितम् ॥९४॥
राज्यसौख्यं मया त्यक्त्वा भुक्ताः क्लेशास्तदा वने । कामादीनां रिपूणां च दुष्टानां हि वधो भुवि ॥९५॥
जनैः कार्यं सदा चेति ह्युपदेष्टुं मया वने । बहवो निहतास्तत्र राक्षसा मुनिहिंसकाः ॥९६॥
स्त्रीसंगः सर्वदा त्याजस्त्वेकाकी च तपश्चरेत् । नासक्तं निजचित्तं हि स्त्रीषु कार्यं नरैः कदा ॥९७॥
इत्थं मयोपदिशता सीतायाश्च तदा वने । वियोगो दर्शितो लोकान् मत्तो भिन्ना न जानकी९८॥
कदापि जायते विप्राः सत्यं चेदं ब्रवीम्यहम् । आर्तस्य रक्षणं कार्यं कार्यो दुष्टस्य निग्रहः ॥९९॥
मयोपदिशता चेत्थं जनान्सुग्रीवराक्षसौ । रक्षितौ निहतौ बालिरावणावितरे हताः ॥१००॥
कीर्तिः कार्या जनेष्वत्र मयोपदिशता त्विति । पाषाणास्तारिता नीरे किमाकाशगतिर्न मे ॥१०१॥
यद्यपि शुद्धे स्वे चित्ते विरुद्धं च जनेषु यत् । त्यक्तव्यं तत्प्रियं चापि मयोपदिशता त्विति ।१०२॥
जनानपापान् ज्ञात्वाऽपि लंकायां दिव्यदानतः । लोकापवादभीत्या सा पुरा त्यक्ताऽत्र जानकी॥१०३॥
स्वयमेवात्र यत्त्यक्तं शुद्धं ज्ञात्वा हि तत्पुनः । अंगीकार्यं जनैर्बुद्ध्या मयोपदिशता त्विति ॥१०४॥
जनानंगीकृता सीता पुरा त्यक्ता मया शुभा । एकपत्नीव्रतादीनि राजकर्माण्यनेकशः ॥१०५॥
अश्वमेधादियज्ञश्च सदाचारो जपस्ततः । स्नानसंध्यादिकं यद्यन्मयाऽत्र क्रियते सदा ॥१०६॥
तत्सर्वं जनशिक्षार्थं मुक्तसंगस्य किं मम । कर्मातीतस्य भो विप्राः सदानन्दस्वरूपिणः ॥१०७॥
अहं सदाऽऽनंदमयः सुखात्मा सुखदो नृणाम् । अवतारपरत्वेन सुखं दुःखं मयाऽकथि ॥१०८॥
यदत्र भवतामग्रे कौतुकार्थं न संशयः । उपासकानां तोषार्थमवतारः स्वयं मया ॥१०९॥

पुत्र आदिके स्नेहमें अधिक आसक्त न हो जाना चाहिए। यह उपदेश देते हुए मैंने स्नेहका परित्याग कर दिया था॥ ९३ ॥ सुख-दुःख दोनोंको समान समझना चाहिए। सुखमें न विशेष हर्षित हो, न दुःखमें घबड़ाये। यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने राज्यसुखको ठोकर मारकर वनके क्लेशोंको अपनाया था। काम-क्रोध आदि दुष्ट शत्रुओंको मारना चाहिए ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने वनमें रहकर बहुतसे मुनिहिंसक राक्षसोंको मारा था ॥९६॥ स्त्रियोंमें अधिक आसक्त होना ठीक नहीं, बल्कि उनका सङ्ग त्यागकर दूर रहता हुआ तपस्या करे ॥ ९७ ॥ यह उपदेश देनेके लिए मैंने वनमें सीताको भेजकर उनसे वियोग दर्शाया था। वास्तवमें सीता हमसे पृथक् कभी नहीं हो सकतीं ॥ ९८ ॥ हे ब्राह्मणों ! यह सब बातें मैंने सर्वथा सत्य कही हैं। मनुष्यमात्रको चाहिए कि वह दुखी जनकी रक्षा करे और दुष्टोंको दण्ड दे ॥ ९९ ॥ सुग्रीव और विभीषणकी रक्षा करके दुष्ट वालि और रावणको मारकर संसारको मैंने यही उपदेश दिया है ॥ १०० ॥ इस संसारमें मनुष्यको चाहिए कि वह अपनी कीर्तिका विस्तार करे। इसीलिए मैंने समुद्रके पानीमें पत्थर तैराये थे। वैसे मैं चाहता तो क्या आकाशमार्गसे चलकर लङ्का नहीं पहुँच सकता था ? ॥ १०१ ॥ यदि कोई वस्तु अपनेको प्रिय हो, किन्तु दुनियाँवालोंके विरुद्ध हो तो उस प्रिय वस्तुका भी परित्याग कर देना चाहिए। यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने लङ्कामें अग्निको साक्षी दे तथा पवित्र जानकर भी लोकापवादके भयवश सीताका परित्याग कर दिया था॥ १०२ ॥ १०३ ॥ भ्रमवश यदि किसी पवित्र वस्तुको त्याग दे और बादमें मालूम हो कि वह शुद्ध है तो उसको फिरसे अङ्गीकार कर लेना चाहिये। यह उपदेश देनेके लिये ही मैंने पहले त्यागी हुई भी सीताको फिर स्वीकार कर लिया। उसी प्रकार एकपत्नीव्रत, अनेक तरहके राज्यकार्य, अश्वमेधादि यज्ञ, सदाचार, जप, तप, स्नान, संध्या आदि जितना भी काम हम करते हैं, सो सब लोगोंको उपदेश देनेके लिए ही कर रहे हैं॥ १०४–१०६ ॥ वैसे तो संसारी मायाजालसे अलग, सदा आनन्दस्वरूप, कर्मसे परे, सदा आनन्दमय, सुखात्मा और समस्त मनुष्योंके सुखदाता मुझ रामके लिए इन सब बातोंसे क्या मतलब ? ये सुख-दुःख जो बताये, वे अवतारके आधारपर आप लोगोंके कौतुकके लिए कहे हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। अपने भक्तोंके सन्तोषार्थ विशेष-गुणसम्पन्न ये अवतार गिनाये, वास्तवमें मेरे लिए सब अवतार बराबर हैं। किन्तु अपनी बुद्धिसे भली भाँति

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विशेषगुणवानुक्तः सन्ति सर्वे समा मम । सम्यग्बुद्धया विचाराच्च वरिष्ठः सकलेष्वयम् ॥११०॥
द्वावतारौ जलचरौ तथा वनचरौ च द्वौ । द्वौ तौ च वल्कलधरौ एको वैश्यश्च गोपकः ॥१११॥
एकस्तु मलिनश्चापि परश्च क्षणिकस्तथा । एवं भूता भविष्याश्चावतारास्तोषदा न मे ॥११२॥
अयं सर्वविशिष्टोऽत्र ह्युपासकजनप्रियः । अवतारस्त्वहं वेद्मि सेवनान्मंगलप्रदः ॥११३॥
चरित्राण्यतिरम्याणि पातकघ्नानि वै मया । कृतान्यस्मिन्नवतारे श्रवणान्मुक्तिदानि हि ॥११४॥
सदा जना भजंत्यत्र ह्यवतारममुं मम । भक्ता येऽस्यावतारस्य ते मेऽतीव प्रियाः सदा ॥११५॥
एवं सर्वमिदं विप्रा आनन्देन मयोदितम् । दोषमारोपयंत्यस्मिन्नवतारेऽपि ये जनाः ॥११६॥
ते मद्द्वेष्या नरकेषु पतंति सह पूर्वजैः ।

श्रीरामदास उवाच

एवमुक्त्वा रामचन्द्रः सम्पूज्य हि मुनीश्वरान् ॥११७॥
विसृज्य सकलान्सीतां रंजयामास राघवः । एवं शिष्य मया प्रोक्तमवतारप्रवणनम् ॥११८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकांडे उत्तरार्धे अवतारवर्णनं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः

(रामका अपने दासको वरदान देते हुए दो रूप धारण करना)

श्रीरामदास उवाच

एकदा जानकीं द्रष्टुं सप्तद्वीपांतरस्त्रियः । मुनीनां पार्थिवानां च सुहृदां व्यवसायिनाम् ॥ १ ॥
सामान्यक्षत्रियाणां च वैश्यानां च सहस्रशः । चैत्रस्नानमिषेणैव ययुर्वाहनसंस्थिताः ॥ २ ॥
दृष्ट्वा समागतास्ताश्च जानकी गजगामिना । प्रत्युद्गम्यानयामास स्त्रीशालामतिसादरात् ॥ ३ ॥

विचार करके मैं इस निश्चयपर पहुँचा हूँ कि समस्त अवतारोंमें यह रामवतार सर्वश्रेष्ठ है ॥ १०७–११० ॥ दो अवतार जलचर रूपके, दो वनचर, दो वल्कधारी, एक वैश्यवर्णका गोपरूप, एक मलिनवेश-वाला और एक क्षणिक ये भूत तथा भविष्यके सारे अवतार मेरे मनके नहीं हैं—इनसे मैं प्रसन्न नहीं हूँ ॥१११॥ ॥ ११२ ॥ मैं जहाँतक जानता हूँ, समस्त अवतारोंमें उपासक जनोंको प्रिय तथा सेवनसे मङ्गलप्रद यही रामावतार है ॥ ११३ ॥ इस अवतारमें मैंने जितने काम किये हैं वे सब अतिशय रम्य, पातकोंको नष्ट करनेवाले तथा सुननेसे मुक्ति देनेवाले हैं ॥ ११४ ॥ भक्तोंको चाहिये कि मेरे इसी अवतारका भजन करें । जो लोग इसकी उपासना करते हैं, वे मुझे सदासे अत्यन्त प्रिय हैं ॥ ११५ ॥ हे विप्रो ! यह सब रहस्य मैने आनन्दके साथ आप लोगोंको सुनाया । जो लोग मेरे इस अवतारमें भी दोषारोप करते हैं, वे मेरे शत्रु होकर अपने पूर्वजोंके साथ नरकमें गिरते हैं ॥ ११६ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—इस प्रकारकी बातें करके रामने उन मुनियोंका पूजन किया और सबको विदाई दी ॥ ११७ ॥ तत्पश्चात् सीताको प्रसन्न करनेवाली बात करने लगे । हे शिष्य ! मैने इस तरह तुम्हारे समक्ष सभी अवतारोंका वर्णन किया ॥ ११८ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेज-पाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे अवतारवर्णन नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

श्रीरामदास कहने लगे-एक बार सीताको देखनेके लिये सातों द्वीपोंकी स्त्रियाँ जिनमें मुनियोंकी, राजाओं-की, मित्रोंकी, व्यवसायियोंकी ॥ १ ॥ साधारण श्रेणीके क्षत्रियोंकी तथा वैश्योंकी हजारोंकी संख्यामें नारियाँ चैत्रस्नानके ब्याजसे अनेक प्रकारके वाहनोंपर सवार हो-होकर अयोध्या आयीं ॥ २ ॥ उन्हें आती देखकर गजके समान मन्दगतिसे चलनेवाली सीता शीघ्र उनके आगे पहुँचीं और आदरके साथ अपनी स्त्रीशालामें ले गयीं ॥३॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पूजयामास ताः सर्वा नानालंकारभूषणैः । ताः सर्वाः पूजयामासुः सीतां सिंहासनस्थिताम् ४ ॥
दिव्यालंकारवस्त्राद्यैर्नानादेशोद्भवैर्वरैः । परिवार्य ततः सीतां तस्थुः सर्वाः स्त्रियश्च ताः ॥ ५ ॥
श्रुत्वा सीतामुखाद्रामचरित्राणि सहस्रशः । तास्तुष्टाः श्रोतुमुद्युक्तास्तत्पाणिग्रहणं शुभम् ॥ ६ ॥
स्मितास्यास्ताः स्त्रियः सर्वास्तदा प्रोचुर्विदेहजाम् । त्वत्पाणिग्रहणोत्साहं श्रोतुं वांछामहे वयम् ॥ ७ ॥
तत्सर्वं विस्तरेणाद्य वक्तुमर्हसि जानकि । इति तासां वचः श्रुत्वा लज्जया जानकी तदा ॥ ८ ॥
स्वां सखीं नोदयामास तुलसीं रुक्मभूषिताम् ।

तुलस्युवाच

शृणुध्वं सकला नार्यः पाणिग्रहणमुत्तमम् ॥ ९ ॥
जानक्याः कथयाम्यद्य महामंगलदायकम् । वस्तोषार्थं हि संक्षेपाच्छ्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥१०॥
साकेताद्रघुनंदनेन स मुनिर्भ्रात्रा युतेनाश्रमं स्वं गत्वा विनिहत्य राक्षसबलं तेनैव यज्ञं निजम् ।
संपाद्याशु रथस्थितश्च मिथिलामार्गे हरेरंघ्रिणः संस्पर्शाद्गतकल्मषां समकरोद्भार्यां मुनेर्गाधिजः ॥११ ।
गत्वा गाधिजसंयुतश्च मिथिलां भ्रात्रा सभासंस्थितश्चापाधः पतितं निरीक्ष्य च रिपुं स्वीयं मुनेराज्ञया ।
तं नत्वा गिरिजेश्वरस्य च धनुः कृत्वा त्रिखंडं क्षणात्सीताहस्तविसर्जितां निजगले मालां दधौ राघवः१२
बन्धूनां च निजं विधाय मिथिलापुर्यां विवाहान् शुभान् पितृभ्यां सह भार्यया रघुपती राज्ञाऽतिसंपूजितः
त्यक्त्वा तां मिथिलां ययौ निजपुरीं मार्गे क्रुधा तिष्ठतो दुर्दर्पं जमदग्निजस्य धनुषा सोपाहरल्लीलया१३॥
एवं नार्यश्च सीताया विवाहः कथितो मया । युष्माभिः कौतुकात्पृष्टो यः सर्वमंगलप्रदः ॥१४॥

श्रीरामदास उवाच

एवं स्त्रियश्च ताः श्रुत्वा परमां मुदमाप्नुयुः । ततस्ताः पूजयामासुः पुनः सीतां मुदान्विताः ॥१५॥

सीताने अनेक तरहके भूषणोंसे उनकी पूजा की और उन स्त्रियोंने भी सिंहासनपर बिठलाकर दिव्य अलङ्कारोंसे सीताका पूजन किया । इसके अनन्तर वे सब सीताको चारों ओरसे घेरकर बैठ गयीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ सीताके मुखसे रामके सहस्रों चरित्र सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुईं और उन्होंने सीताके मुखसे ही सीताका विवाहसम्बन्धी वृत्तान्त सुननेकी इच्छा प्रकट की ॥ ६ ॥ वे मुस्कुराती हुई सीतासे कहने लगीं कि हम आपके विवाह-समारोहका वृत्तान्त सुनना चाहती हैं ॥ ७ ॥ हे सीते ! वह सारा हाल विस्तारपूर्वक हमको सुनाइए। इस प्रकार उनका प्रश्न सुनकर सीता लज्जावश कुछ नहीं बोलीं और अपनी सहेली तुलसीको, जो कि सुवर्णमय आभूषण पहने बैठी थी, संकेत किया और तुलसी कहने लगी—आप लोग सीताके मङ्गलमय विवाहका वृत्तान्त सुनें ॥ ८ ॥ ९ ॥ आप लोगोंको प्रसन्न करनेके लिए उस महामङ्गलदायी और सुननेसे पुण्य बढ़ानेवाले विवाहका मैं संक्षेपमें वर्णन करती हूँ ॥ १० ॥ अयोध्यापुरीसे विश्वामित्र राम और लक्ष्मणको साथ लिये हुए अपने आश्रम पहुँचे। वहाँ राम-लक्ष्मणने राक्षसोंकी प्रबल सेनाका संहार किया और मुनि विश्वामित्रके यज्ञ कर लेनेके बाद रथपर बैठकर मुनिके साथ दोनों भाई मिथिलाकी ओर चले। रास्तेमें विश्वामित्रने रामके चरणोंका स्पर्श कराकर गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याको शापसे मुक्त कराया ॥ ११ ॥ फिर मुनिके साथ जनकपुर पहुँचे। स्वयम्बरके समय रामने सभामें मुनि विश्वामित्रकी आज्ञासे शिवके धनुषको प्रणाम किया और क्षण भरमें उसे तोड़कर तीन टुकड़े कर डाले। फिर सीताके हाथोंकी वरमालाको रामने अपने गलेमें धारण किया ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर रामने मिथिलापुरीमें ही अपना और अपने सब भाइयोंका विवाह किया। फिर पत्नी, पिता, माता आदिके साथ जनकसे पूजित होकर राम मिथिलासे अयोध्याको चले। रास्तेमें क्रोधी परशुराम मिले और उनके वैष्णव धनुषको चढ़ाकर रामने उनके दुर्दर्पको दूर कर दिया ॥ १३ ॥ हे नारियों ! तुमने कौतुक वश सीताके जिस सर्वमङ्गलप्रद विवाह-वृत्तान्तको पूछा था, सो मैंने कह सुनाया ॥ १४ ॥ श्रीरामदास कहते हैं कि इस प्रकार सीताके विवाहका वर्णन सुनकर वे स्त्रियाँ बहुत

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सीतया पूजिताः सर्वास्तां नत्वामंत्र्य जानकीम् । चैत्रस्नानं समाप्याथ जग्मुः स्व स्वं स्थलं प्रति ।।१६।।
अथैकदा गुरोरास्याद्रामाग्रे संस्थितो लवः । शृण्वन्पुराणं पप्रच्छ श्रोतुं सर्वान् जनान्गुरुम् ।।१७।।
गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद मुनीश्वर । पुस्तकेषु च सर्वत्र पत्रे पत्रे पृथक् पृथक् ।।१८।।
एकत्र लिख्यते श्रीति रामेत्येकत्र लिख्यते । किमर्थं मानवैस्तच्च तत्सर्वं कथयस्व मात् ।।१९।।
इति तद्वचनं श्रुत्वा गुरुस्तं वाक्यमब्रवीत् ।

वसिष्ठ उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स लोकसंदेहहृत्परम् ।।२०।।
श्रीरामचरितं पूर्वं व्यासेन मुनिना पृथक् । अष्टादश पुराणानि तथोपपुराणानि च ।।२१।।
कृतान्यन्यैश्च मुनिभिः षट्शास्त्रादीन्यनेकशः । श्रीरामचरितादेव श्लोकमात्रमपीह यत् ।।२२।।
सर्वमस्तीत्स्ति तद्बोद्धुमादावेकत्र श्रीति च । विलिख्यैकत्र रामेति तन्मध्ये परिलिख्यते ।।२३।।
अनया संज्ञया सर्वे ज्ञास्यंत्वग्रे जना भुवि । श्रीराम मध्ये लिखितं श्रीरामचरितादिदम् ।।२४।।
कृतमस्ति पृथक् भिन्नं पुरा व्यासादिभिस्त्विति । एतस्मात्कारणाद्बाल सूचनार्थं विलिख्यते ।।२५।।
श्रीरामेति पृथक् पत्रे सर्वत्र जगतीतले । अन्यच्च कारणं वच्मि तच्छृणुष्व शिशो लव ।।२६।।
अशुद्धं लिखितं यच्चाज्ञानतो भ्रांतितोऽपि हि । पत्रं तच्चातिशुद्धं हि भवत्विति मनीषया ।।२७।।
श्रीरामेति च सर्वत्र पत्रे पत्रे विलिख्यते । यदङ्कितं श्रीरामेति नाम्ना पत्रं तु लेखकैः ।।२८।।
ज्ञेयं तच्चाति शुद्धं हि गतदोषस्तु लेखकः । भवत्यत्र जगत्यां हि सत्यं लव वदाम्यहम् ।।२९।।
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वसिष्ठं प्रणिपत्य च । लवः स गतसन्देहस्तूष्णीमासीन्मुदान्वितः ।।३०।।
एकदा रघुनाथस्तु मंचकोपरि संस्थितः । मुखात्तांबूलस्य रसं प्रथमं दोषकारकम् ।।३१।।
त्यक्तुकामो न ददर्श पात्रं निष्ठीवनस्य सः । तस्यांतिके स्थिता दासी नाम्ना वै सुगुणेति च ।।३२।।

प्रसन्न हुईं और उन्होंने फिरसे सीताका पूजन किया ।। १५ ।। सीताने भी फिर उनका पूजन किया और वे सीताको प्रणाम करके और उनसे आज्ञा लेकर चैत्रस्नान समाप्त हो जानेपर अपने-अपने घर चली गयीं ।। १६ ।। इसके बाद एक दिन गुरु वसिष्ठ बैठे पुराणोंकी कथा सुना रहे थे। रामचन्द्रजी और लव भी बैठे हुए थे। कथा सुनते-सुनते लवने सब लोगोंको ज्ञान प्राप्त करानेके लिए वसिष्ठसे कहा—।।१७।। हे गुरो ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, सो बताइए । प्रायः ऐसा देखा जाता है कि सब पुस्तकोंके पन्ने-पन्नेमें एक ओर 'श्री' और दूसरी ओर 'राम' ऐसा लिखा जाता है। लोग ऐसा क्यों करते हैं ? यह कृपया हमें बता दीजिये ।। १८ ।। १९ ।। इस प्रकार लवका प्रश्न सुनकर वसिष्ठने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। इससे बहुतोंका सन्देह दूर हो जायगा ।। २० ।। पहले व्यास मुनिने श्रीरामचन्द्रके चरित्रात्मक अट्ठारह पुराण और अट्ठारह ही उपपुराण बनाये ।। २१ ।। उसी तरह और-और ऋषियोंने षट्शास्त्र आदि बनाकर तैयार किये । सब ग्रंथोंके सभी श्लोक श्रीरामचरित्रसे बने हैं। इसी बातको बतलानेके लिए प्रत्येक पन्नेमें 'श्री' लिखकर 'राम' लिखा जाता है ।। २२ ।। २३ ।। इस संकेतसे संसारके मनुष्य पुस्तक देखकर यह समझेंगे कि ये सब ग्रंथ श्रीरामचरितके अन्तर्गत हैं। हे वत्स ! श्रीराम लिखनेका एक कारण यह है, जो बता चुका। दूसरा भी बतलाते हैं—हे लव ! सो भी सुन लो ।। २४–२६ ।। अज्ञानतासे या भ्रमवश पन्नेमें जो कोई शब्द अशुद्ध लिख गया हो, वह पन्ना अत्यन्त शुद्ध हो जाय। इस विचारसे भी पन्नेमें लेखकगण श्रीराम लिखते हैं ।। २७ ।। २८ ।। ऐसा करनेसे अशुद्ध भी शुद्ध हो जाता है और लेखकको कोई दोष नहीं लगता। हे लव ! मैं तुमको यह सब सच्ची बातें बतला रहा हूँ ।। २९ ।। इस प्रकार समाधान सुनकर लवका सन्देह निवृत्त हो गया और वे चुपचाप बैठ गये ।। ३० ।। एक बार राम मंचपर बैठे थे। मुखमें ताम्बूल था। ताम्बूलका प्रथम रस दोषकारक होता है, इस ख्यालसे उन्होंने थूकना चाहा। किन्तु निष्ठीवनपात्र (ओगालदान) नहीं दिखायी पड़ा। उनके पास ही खड़ी सुगुणी नामकी दासी रामकी इच्छा

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तादृशं राममालोक्यं पात्रं दूरं विलोक्य च । कृत्वा पात्रं स्वहस्ताभ्यामंजलावेव तद्रसम् ॥३३॥
रामेण मुक्तमास्याच्च जग्राह वेगवत्तरा । ततः सा प्राशनं रामोच्छिष्टं दासी चकार तत् ॥३४॥
महाप्रसादं तं मत्वा दैवाल्लब्धं विचिंत्य च । तदाऽतितुष्टः श्रीरामस्तस्यै तत्कर्मणाऽब्रवीत् ॥३५॥
वरयस्व वरं दासि यत्ते मनसि वर्तते । तद्रामवचनं श्रुत्वा दासी प्राह रघूत्तमम् ॥३६॥
एकपत्नीव्रतं तेऽस्ति सांप्रतं त्विह जन्मनि । जन्मांतरे त्वया संगं वांछामि रघुनायक ॥३७॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् । यदाऽग्रे कृष्णरूपेण गोकुलेऽवतराम्यहम् ॥३८॥
तदा राधेति नाम्नी त्वं गोपिकासु भविष्यसि । तदा मया चिरं क्रीडां त्वं भोक्ष्यसि न संशयः॥३९॥
तदा ममातिप्रीता त्वं गोपिकासु भविष्यसि । इति दासी रामचन्द्राद्वरं लब्ध्वा तुतोष सा ॥४०॥
अन्यच्छृणु विष्णुदास रामचन्द्रकथानकम् । यत्प्रोच्यते मया तेऽग्रे महत्कौतुककारकम् ॥४१॥
एकदा राघवः श्रीमान्सभायामासनोपरि । संस्थितो बन्धुभिः पुत्रैर्मन्त्रिभिः पुरवासिभिः ॥४२॥
एतस्मिन्नंतरे कश्चिद्ब्रह्मचारी समाययौ । युवा दण्डधरः श्रेष्ठः कमंडलुकरः शुचिः ॥४३॥
ऐणकृष्णाजिनधरः काषायवसनो व्रती । तं दृष्ट्वा राघवः श्रीमानवतीर्य वरासनात् ॥४४॥
प्रत्युद्गम्याथ तं नत्वाऽऽसने समुपवेश्य च । पूजयामास विधिना धेनुमग्रे निवेद्य च ॥४५॥
ततः सम्पूजितं विप्रं राघवो वाक्यमब्रवीत् । अद्य धन्योऽस्म्यहं विप्र यतस्ते दर्शनं मम ॥४६॥
कार्यमाज्ञाप्यतां किंचिद्यदर्थं भवताऽऽगतम् । तद्राघववचः श्रुत्वा ब्रह्मचारी वचोऽब्रवीत् ॥४७॥
वाल्मीकिना प्रेषितोऽहं यस्मात्तच्छृणु राघव । यष्टुकामो महायज्ञं स वाल्मीकिर्महामुनिः ॥४८॥
त्वामाकारयितुं मां त्वन्निकटं वेगवत्तरम् । प्रेषितवानतस्त्वं हि सीतया बन्धुभिः सह ॥४९॥
प्रस्थानं कुरु राजेन्द्र मुहूर्तस्त्वद्य वर्तते । एवं वदति श्रीरामं भूसुरे सदसि स्थिते ॥५०॥

समझ गयी, किन्तु पात्र दूर था। इसलिए रामको थूकनेके लिए उसने अपनी अञ्जली फैला दी ॥ ३१—३३ ॥ रामने भी वह प्रथम रस उसके हाथमें थूक दिया। दासी उसको लेकर तुरन्त चाट गयी। उसने मनमें सोचा कि यह महाप्रसाद है और भाग्यवश आज मुझे मिल गया है। उसके इस व्यवहारसे राम बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अरी दासी ! तेरी जो इच्छा हो, वह वर माँग ले। रामकी बात सुनकर उसने कहा—इस जन्ममें आप एकपत्नीव्रती हैं। इसलिए हे रघुनायक ! मैं दूसरे जन्ममें आपके साथ एकान्त-सहवास करना चाहती हूँ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उसकी यह बात सुनकर रामने कहा कि अगले जन्ममें मैं कृष्णरूपसे गोकुलमें अवतार लूंगा, तब तुम राधा नामसे विख्यात एक गोपपत्नी होओगी। उस समय बहुत दिनों तक तुम मेरे साथ क्रीडाका सुख भोगोगी, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वृजकी सारी गोपियोंमें तुम मुझे सबसे प्रिय होओगी। दासी इस तरह रामचन्द्रजीसे वरदान पाकर प्रसन्न हो गयी ॥ ४० ॥ हे विष्णुदास ! रामचन्द्रजीकी एक दूसरी कथा भी मैं तुम्हारे आगे कह रहा हूँ। वह बड़ा कौतूहलजनक है ॥ ४१ ॥ एक समय राम सभामें सिंहासनपर भाइयों, पुत्रों तथा मंत्रियोंके साथ बैठे थे ॥ ४२ ॥ उसी समय एक युवा ब्रह्मचारी दण्ड धारण किये और हाथमें कमण्डलु तथा पवित्र मृगचर्म लिये और काषाय वस्त्र धारण किये वहाँ आ पहुँचा। उसे देखते ही श्रीमान् रामचन्द्रजी आसनसे उठ खड़े हुए। थोड़ा आगे बढ़कर उसे प्रणाम किया और एक अच्छे आसनपर बिठलाया। फिर गोदान देकर उन्होंने उसकी पूजा की ॥ ४३-४५ ॥ पूजन कर लेनेके पश्चात् रामने कहा—हे विप्र ! आज आपके दर्शनसे मैं अपनेको धन्य समझता हूँ ॥ ४६ ॥ अच्छा, अब आप मुझे वह आज्ञा दीजिए कि जिसके लिए आप यहाँ आये हों। रामकी यह बात सुनकर ब्रह्मचारी कहने लगा—॥ ४७ ॥ श्रीवाल्मीकिजीने मुझे आपके पास भेजा है। वे एक महायज्ञ करना चाहते हैं। इसीलिए आपको बुलानेके लिए हमें भेजा है। हे राजेन्द्र ! आज बड़ा अच्छा मुहूर्त है। अतएव सीता तथा अपने भ्राताओंके साथ आप शीघ्र प्रस्थान कर दीजिए। इस प्रकार वह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समाययौ ब्रह्मचारी द्वितीयो गाधिजाश्रमात् । तं दृष्ट्वा पूर्ववद्रामः प्रत्युद्गम्य द्विजोत्तमम् ॥५१॥
आसनेऽन्ये चोपवेश्य पूजयामास सादरम् । ततस्तत्पुरतः स्थित्वा तं प्रपच्छ रघूत्तमः ॥५२॥
यदर्थं श्रमितोऽसि त्वं तन्ममाज्ञाप्यतां मुने । तद्रामवचनं श्रुत्वा ब्रह्मचारी वचोऽब्रवीत् ॥५३॥
राम त्वां गाधिजेनाहं प्रेषितोऽस्मि जवेन हि । यष्टुकामो महायज्ञं विश्वामित्रोऽस्ति राघव ॥५४॥
त्वं तेनाकारितश्चासि प्रस्थानं कुरु सत्वरम् । ब्रह्मचारिणोस्तद्वाक्यमुभयोः स रघूत्तमः ॥५५॥
श्रुत्वा विहस्य प्रोवाच द्विजाभ्यां वै तथेति च । तदाश्चर्यं जनाः प्रापुः प्रोचुस्ते तु परस्परम् ॥५६॥
कथमद्योभयोः सार्कं रामो गच्छति तन्मखौ । केचिदूचू राघवाय किमशक्यं तथाऽत्र हि ॥५७॥
यथा स्त्रीणां वने पूर्वं यथाऽस्माकं हि दर्शनम् । यथा गतोऽस्ति लंकायाः पुरा भरतदर्शने ॥५८॥
भिन्नरूपेण रामेण सर्वेषामर्पितं पृथक् । तद्वदत्रापि द्विविधा भूत्वा गत्वा च तन्मखौ ॥५९॥
किमाश्चर्यमिदं चाद्य किमशक्यं परात्मनि । एवं वदत्सु पौरेषु लक्ष्मणं प्राह राघवः ॥६०॥
अद्यैवाहं गमिष्यामि भोजनानन्तरं बहिः । वासोगेहानि नेयानि बहिः सेनां प्रचोदय ॥६१॥
आज्ञापनीयं वाद्यानां ध्वनिं कर्तुं हि सेवकान् । तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः ॥६२॥
कारयामास वाद्यानां ध्वनिं दूतैश्च संभ्रमात् । सैन्यं प्रचोदयामास बहिर्वासोगृहाण्यपि ॥६३॥
नेतुमाज्ञापयामासुर्दूतास्ते निन्युरादरात् । ततो रामोऽपि विप्राभ्यां गृहं गत्वा विदेहजाम् ॥६४॥
सर्वं वृत्तं निवेद्याथ कृत्वा विप्रैर्हि भोजनम् । सीतां च करिणीपृष्ठे बंधुनाऽऽरोहयत् प्रभुः ॥६५॥
पुष्पके पौरनारीश्च करिणीषूर्मिलादिकाः । समारोहयच्छ्रीरामः स्वयं तस्थौ गजोपरि ॥६६॥
लक्ष्मणाद्या गजेष्वेव ते समारुरुहुस्तदा । निनेदुश्चाथ वाद्यानि ननृतुर्वारयोषितः ॥६७॥

ब्राह्मण कह ही रहा था कि इतनेमें एक दूसरा ब्रह्मचारी विश्वामित्रके आश्रमसे आ पहुँचा। पहलेकी तरह रामने उसका भी स्वागत किया ॥ ४८-५१ ॥ उसे एक दूसरे आसनपर बिठाकर उन्होंने उसकी भी उसी तरह पूजा की। इसके अनन्तर उसके भी आगे बैठकर उन्होंने कहा कि जिस कार्यके लिए आपने कष्ट किया हो, मुझे आज्ञा दीजिए। रामकी बात सुनकर ब्रह्मचारीने कहा—॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हे राम ! मुझे विश्वामित्र-जीने आपके पास भेजा है। वे एक महायज्ञ करना चाहते हैं। उसमें उन्होंने आपको बुलाया है। इसलिए आप शीघ्र प्रस्थान कीजिए। रघूत्तम राम उन दोनों ब्रह्मचारियोंके सन्देश सुनकर मुसकराए ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उन दोनोंसे कहा—"अच्छा चलेंगे"। इस बातको सुनकर सभाके लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे परस्पर कहने लगे—॥ ५६ ॥ राम इन दोनोंके साथ जाकर कैसे उन दोनों यज्ञोंमें सम्मिलित हो सकेंगे। किसीने कहा कि रामके लिए अशक्य कौन-सा काम है, वे क्या नहीं कर सकते ? ॥ ५७ ॥ जैसे वनमें उन्होंने उन हजारों स्त्रियोंको हजारों रूपोंसे दर्शन दिया था। जिस प्रकार लंकासे लौटकर आनेपर भरत-मिलापके समय प्रत्येक मनुष्यसे मिले थे ॥ ५८ ॥ उसी तरह इस समय भी राम अपना दो रूप बनाकर दोनों जगह चले जायँगे ॥ ५९ ॥ इसमें आश्चर्य करनेकी बात ही कौन-सी है। जिसकी आत्मा इतने ऊँचे दर्जेपर पहुँच गयी है और जो साक्षात् परमात्मा है, उसके लिए अशक्य कोई काम नहीं है। इस तरह लोग आपसमें बतकही कर रहे थे, तभी रामने लक्ष्मणसे कहा—॥ ६० ॥ लक्ष्मण ! आज ही भोजन करनेके पश्चात् हमलोग बाहर चलेंगे। तम्बू-कनात आदि भेजवा दो और सेना भी तैयार करवाओ ॥ ६१ ॥ वाद्य बजानेके लिए सेवकोंको आज्ञा दे दो। रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने "तथास्तु" कहा ॥ ६२ ॥ तत्काल उन्होंने दूतोंको तुड़ही बजानेकी आज्ञा दी। लक्ष्मणके आज्ञानुसार सेवक सब सामान ठीक करने लगे। इसके अनन्तर राम उन दोनों ब्रह्मचारियोंके साथ सीताके महलोंमें गये ॥६३॥६४॥ जानकीजीको भी निमन्त्रणका समाचार सुनाया और दोनों ब्राह्मणोंके साथ भोजन किया। फिर बन्धुओंके साथ सीताको हाथीपर सवार कराया। बाकी पुरवासिनी नारियोंको पुष्पक विमानपर एवं उर्मिलादिको हाथीपर बिठलाया। उन सबको सवारियोंपर बिठाकर स्वयं भी एक हाथीपर सवार हुए और लक्ष्मणादि भी हाथीपर बैठे। ... विविध प्रकारके बाजे बजने लगे और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च प्रजगुः सुस्वरं नटाः । एवं सभाययौ रामस्तदा वासोगृहाणि सः ॥६८॥
तां रात्रिं समतिक्रम्य प्रभाते रघुनन्दनः । स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा गजारूढोऽभवत्पुनः ॥६९॥
क्रोशद्वयं ततो गत्वाऽग्रे द्वौ मार्गौ निरीक्ष्य च । ससैन्ये द्वे निजे देहे चकार रघुनन्दनः ॥७०॥
तदा द्वयोर्मार्गयोश्च ससैन्यौ सीतया युतौ । पुत्राभ्यां बन्धुभिर्युक्तौ द्वौ रामौ सकला जनाः ॥७१॥
ददृशुः पुष्पके द्वे च द्वौ जातौ ब्रह्मचारिणौ । वाल्मीकीयो ब्रह्मचारी त्वेकः स स्वं गुरुं ययौ ॥७२॥
विश्वामित्राध्वरं चान्यः श्रीरामेण मुदा युतः । गाधिजेयो ब्रह्मचारी त्वेकः स स्वं गुरुं ययौ ॥७३॥
वाल्मीकेरध्वरं चान्यः श्रीरामेण ययौ मुदा । एवं ते सारमेयांताः सर्वदेहद्वयानि हि ॥७४॥
निजानि ददृशुस्तत्र विस्मयाविष्टमानसाः । एवं तौ रघुवीरौ हि तयोर्मुन्योस्तदाश्रमे ॥७५॥
ससैन्यौ सीतया युक्तौ बन्धुपुत्रसमन्वितौ । जग्मतुर्वै मुनिभ्यां हि प्रत्युद्गम्यातिपूजितौ ॥७६॥
तयोर्यागौ विधायाथ परिपूर्णौ पुनः पुरीम् । समाजग्मतुः श्रीरामौ ससैन्यौ पूर्ववन्मुदा ॥७७॥
यत्र द्वे निजदेहे वै कृते तत्र रघूत्तमौ । समागत्य पुनश्चैकं निजदेहं चकार सः ॥७८॥
वाल्मीकीयो ब्रह्मचारी विश्वामित्रद्विजस्तथा । भिन्नदेहे त्वेकरूपं भजतस्तौ तदा द्विजौ ॥७९॥
ससैन्यं पुष्पकं चापि बभूवैकं तु पूर्ववत् । ततः श्रीरामचन्द्रः स विवेश नगरीं निजाम् ॥८०॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुर्वारयोषितः । पौरनार्यो विमानस्था ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥८१॥
तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च प्रजगुस्ते नटादयः । एवं नानाकौतुकानि पश्यन्मार्गे शनैः शनैः ॥८२॥
ययौ निजगृहं रामः सभायां संविवेश ह । सीताऽपि निजगेहं सा संविवेशोर्मिलादिभिः ॥८३॥
एवं भूसुर रामेण कौतुकानि महान्ति च । अमानुषाणि यान्यत्र कृतानि च सहस्रशः ॥८४॥
वाल्मीकिना विस्तरेण वर्णितानि हि कृत्स्नशः । सारं सारं मया तेभ्यः संगृह्याथ कथानकम् ॥८५॥

वेश्यायें नाचने लगीं ॥ ६५–६७ ॥ बन्दीजन रामको विरुदावली सुनाने तथा नटगण मीठे मीठे स्वरोंमें गाने लगे। इस प्रकार अपने राजभवनसे प्रस्थान करके राम रास्तेमें बने हुए डेरेपर पहुँचे ॥ ६८ ॥ वह रात्रि रामने वहाँ बितायी। सबेरे उठे तो स्नानादि नित्यक्रिया की और फिर हाथीपर बैठकर चल दिये ॥ ६९ ॥ दो कोस आगे जानेपर जहाँसे विश्वामित्र तथा वाल्मीकिके आश्रमोंके रास्ते अलग होते थे, वहाँसे उन्होंने सेना समेत अपना दो स्वरूप बना लिया ॥ ७० ॥ उस समय दोनों रास्तेमें राम सेना, सीता तथा पुत्रवधू आदिसे युक्त होकर चले। उस समय जितने भी मनुष्य साथ थे, वे सब एकके दो दिखायी दिये ॥ ७१ ॥ पुष्पक विमान भी दो हो गया और दोनों ब्रह्मचारियोंमेंसे एक रामको विश्वामित्रके आश्रमकी ओर ले चला, दूसरा वाल्मीकिके आश्रमको ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ उस समय मनुष्यसे लेकर साथके कुत्ते तक दो हो-होकर दिखायी दे रहे थे। वे लोग अपने दो शरीरोंको देख-देखकर बड़े विस्मित हुए ॥ ७४ ॥ इस प्रकार वे दोनों राम अपनी-अपनी सेना, सीता और बन्धुओंके साथ दोनों आश्रमोंको चले। जब कि आश्रमपर पहुँचे तो दोनों ऋषियोंने अगवानी करके उनकी पूजा की ॥ ७५ ॥ इस प्रकार पहुँच-पहुँचकर उन दोनोंका यज्ञ समाप्त हो जानेपर फिर वे दोनों राम पहलेकी तरह अयोध्याको लौटे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ जाते समय जिस स्थानपर रामने अपना दो रूप बनाया था, वहाँ पहुँचनेपर फिर एक हो गये। विश्वामित्रका ब्रह्मचारी तथा वाल्मीकिका ब्राह्मण ये दोनों भी एक ही एक हो गये ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ उसी तरह पुष्पकविमान और सेना भी एक हो गयी। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी आनन्दपूर्वक अपनी अयोध्या नगरीमें प्रविष्ट हुए ॥ ८० ॥ उस समय भी नाना प्रकारके बाजे बजे और वेश्यायें नाचीं। पुरवासिनी नारियोंने पुष्पक विमानसे रामपर फूलोंकी वर्षा की, बन्दीजनोंने स्तुति की और गानेवालोंने अच्छे-अच्छे गायन गाये। इस प्रकार रास्तेमें तरह-तरहके कौतुक देखते हुए धीरे-धीरे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वे अपने भवनमें गये और सभामें पहुँचकर राजसिंहासनपर बैठे। सीता उर्मिला आदिके साथ महलके भीतर गयीं ॥ ८३ ॥ हे विप्र ! रामने हजारों प्रकारके जिन महान् और अलौकिक कामोंको किया था, उनका वाल्मीकिने विस्तृत वर्णन किया है और मैंने तो उसमेंसे सारभागमात्र लेकर सब कथा सुनायी

CC-0. In Public Domain. Kirikant Sharma, Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तवाग्रे कथ्यते शिष्य संक्षेपेणाज्ञया प्रभोः । त्वं धन्योऽसि यदर्थं च रामेणाज्ञापितस्त्वरम् ॥८६॥
वक्तुं स्वचरितं पुण्यं रम्यमानन्ददायकम् । वाल्मीकिश्चापि धन्यः स भावि संवादमावयोः ॥८७॥
यः पूर्वं विरचितवान् स्वीयकालेऽत्र भूतवत् । यथा रामस्य चरितं पूर्वं रामावतारतः ॥८८॥
एवं संवर्णितं कृत्स्नं गोप्यं यच्च कृतं रहः । न वाल्मीकोपमः कश्चित्कविर्भूतो भविष्यति ॥८९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डेउत्तरार्धे दासीवरदानं तथा रामादीनां देहद्वयकरणं नामैकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः

(सीता द्वारा टूटा तुलसीपत्र पुनः डालमें जोड़ना)

श्रीरामदास उवाच

इदानीं रामचन्द्रस्य लीलाकौतुकमुत्तमम् । अन्यद्रम्यं वर्ण्यते हि मया तच्छृणु सादरम् ॥ १ ॥
एकदा राघवस्तस्थौ सभायामासनोपरि । बन्धुभिर्मंत्रिवर्गैश्च पौरैर्जानपदैः सह ॥ २ ॥
पुत्राभ्यां च सुहृद्भिश्च मित्रैर्मन्त्रिजनैः सह । एतस्मिन्नन्तरे भूरिकीर्तिना सुहृदा चरैः ॥ ३ ॥
द्राक्षाफलादिभिः पूर्णास्तथा पुष्पैः सुपूरिताः । करंडिकाः प्रेषिताश्च राघवार्थं सहस्रशः ॥ ४ ॥
ताः सर्वा राघवो दृष्ट्वा प्रेषयामास जानकीम् । युक्ता सखीभिः सीता सा क्रीडाशालास्थिता मुदा॥ ५ ॥
दृष्ट्वा करण्डिकाः सर्वास्त्वेकामुद्घाटयत्तदा । तस्यां तामरसान्येन दृष्ट्वा रम्याणि जानकी ॥ ६ ॥
करेणादाय पद्मं च राघवायार्पणं विना । सा तत्सुगन्धं जग्राह वारं वारं मुदान्विता ॥ ७ ॥
करण्डिकां पूर्ववच्च समाच्छाद्य विदेहजा । स्थापयामास गेहेषु सर्वास्ताश्च करण्डिकाः ॥ ८ ॥
तद्वृत्तं रामचन्द्रोऽपि सर्वं ज्ञात्वा सभास्थितः । चित्ते विचारयामास वारं वारं मुदान्वितः ॥ ९ ॥
सीतयेदं कृतं कर्म योग्यं भुवि स्मृतं न हि । यन्मया पतिनाऽभुक्ते पद्मसास्वादितं तया ॥१०॥

है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ क्योंकि प्रभुने मुझे ऐसा ही करनेकी आज्ञा दी थी। तुम धन्य हो, जिसके लिए भगवान्ने स्वयं मुझे कथा सुनानेकी आज्ञा दी है ॥ ८६ ॥ वे महर्षि वाल्मीकि धन्य हैं, जिन्होंने हमें और तुमको सुनने-सुनानेके लिए भूतकालकी तरह भविष्यका सारा रामचरित्र रामावतारके पहिले ही लिख डाला था ॥८७॥८८॥ वह वर्णन भी इतना सच्चा किया कि रामने जो कार्य गुप्तरूपसे एकान्तमें किये थे, वह सब लिख दिया। वाल्मीकिके समान न कोई कवि हुआ है, न होगा ॥ ८९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

श्रीरामदासने कहा--अब मैं तुम्हें रामका एक दूसरा रम्य और उत्तम चरित्र सुनाता हूँ। उसे आदर-पूर्वक सुनो ॥ १ ॥ एक समय रामचन्द्रजी सिंहासनपर बैठे हुए थे। उस समय उनके समस्त भ्राता, मन्त्री, पुरवासी, दोनों पुत्र, सम्बन्धी तथा मित्र आदि भी उपस्थित थे। उसी समय उनके सुहृद राजा भूरिकीर्तिने दूतों द्वारा अंगूर आदि विविध प्रकारके फलोंसे भरी हुई बहुत सी पिटारियाँ भेजीं ॥ २-४ ॥ उनको देखकर रामने उसे भीतर सीताके पास भेजवा दिया। उस समय सीता अपनी सखियोंके साथ क्रीड़ाभवनमें थीं ॥ ५ ॥ उन पिटारियोंको देखा तो बड़ी उत्सुकताके साथ खोल-खोलकर कुछ पिटारियाँ देखीं, किन्तु उनके भीतर कमलका फूल भरा दीख पड़ा ॥ ६ ॥ तब प्रसन्न मनसे सीताने उसमेंसे एक कमलका फूल निकाला और रामको अर्पण किये बिना ही सूँघ लिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर पिटारियोंको पहलेकी तरह ठीक करके घरमें रखवा दिया ॥ ८ ॥ सभामें बैठे बैठे ही रामको यह बात मालूम हो गयी। उन्होंने बार-बार इसपर विचार किया ॥ ९ ॥ तब उन्होंने सोचा कि सीताने यह ठीक नहीं किया, जो मेरे सूँघे बिना ही कमल सूँघ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अग्रेऽप्येवं स्त्रियः सर्वाः करिष्यंत्यत्र वै भुवि । सीतादर्शितमार्गेण तस्माच्छिक्षां करोम्यहम् ॥११॥
एवं मनसि निश्चित्य ततः स रघुनन्दनः । तूष्णीमेव गृहं गत्वा पूर्ववज्जानकीं मुदा ॥१२॥
रंजयामास विविधैर्नानाक्रीडादिकौतुकैः । सीताऽपि पेटिकाः सर्वा राघवाग्रे सहस्रशः ॥१३॥
आनीय दर्शयामास फलपुष्पादिपूरिताः । रामोऽपि दृष्ट्वा ताः सर्वाः समुद्घाट्य पृथक् पृथक् ॥१४॥
प्रेषयामास बंधूनां गेहेषु दश पंच च । फलादीनां पेटिकाश्च नानाचित्रविचित्रिताः ॥१५॥
मातॄणां सकलानां च गृहेष्वपि तथा पुनः । पुत्रयोः सुहृदां चापि मंत्रिणां च गुरोस्तथा ॥१६॥
पौराणां चापि गेहेषु सेवकानां गृहेष्वपि । दासीभ्यश्च शुभा दत्त्वा पेटिकाः सप्त पञ्च च ॥१७॥
सीतायै शतशो दत्त्वा मुदा ताभ्यो रघूत्तमः । फलानि दश पञ्चाष्ट स्वयं भुक्त्वा ततः परम् ॥१८॥
पद्मादीनि सुपुष्पाणि विभज्य पूर्ववत्पुनः । सीतायै शतशो दत्त्वा स्वयमंगीचकार सः ॥१९॥
अज्ञात इव तद्वृत्तं गोपयामास चेतसि । अथैकदा जनकजा हरिदिन्याम्मुपोषणम् ॥२०॥
कृत्वाऽपरे दिने स्नात्वा ययौ वृन्दावनांतिकम् । तुलसीं पूजयित्वा तां सा चकार प्रदक्षिणाः ॥२१॥
एतस्मिन्नंतरे सीता निराहारा श्रमान्विता । त्यक्त्वा प्रदक्षिणामार्गं किंचिदेव चचाल सा ॥२२॥
चलितायाश्च सीतायाः पल्लवेन हि वाससः । पत्रमेकं तुलस्याश्च पपात भुवि वै तदा ॥२३॥
तत्पत्रं जानकी दृष्ट्वा द्वादश्यां त्रुटितं शुभम् । ज्ञात्वाऽधर्मः कृतश्चेति भयभीताऽभवत्तदा ॥२४॥
ततः सा तत्करेणैव गृहीत्वा पत्रमुत्तमम् । नत्वा वृंदावने सीता चिक्षेप परमादरात् ॥२५॥
ततः प्रदक्षिणाः कृत्वा प्रार्थयित्वा मुहुर्मुहुः । तुलसीं सा ययौ गेहं रञ्जयामास राघवम् ॥२६॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र नारदश्च समाययौ । वीणावाद्यस्वनेनैव कुर्वन्कीर्तनमुत्तमम् ॥२७॥
पालय मां दीनमिति राघवेति पुनः पुनः । पालय मां दीनमिति मनुं पञ्चदशाक्षरम् ॥२८॥

लिया ॥ १० ॥ यदि मैं इस समय चुप रह जाता हूँ तो सीताके दिखाये इस मार्गपर चलकर सब स्त्रियाँ ऐसा ही करने लगेंगी । इसलिए सीताको इसकी सजा देता हूँ ॥ ११ ॥ ऐसा निश्चय करके राम चुपचाप सीताके घर पहुँचे ॥ १२ ॥ वहां सदाकी तरह विविध प्रकारके क्रीड़ा-कौतुक करके उन्होंने सीताको प्रसन्न किया । सीताने भी वह सब पिटारियाँ मँगवाकर रामके आगे रख दीं । वे सब नाना प्रकारके फलों फूलोंसे भरी थीं । रामने भी उन्हें अलग-अलग खोलकर देखा ॥ १३ ॥ १४ ॥ उनमेंसे पन्द्रह पिटारियाँ भाइयोंके यहाँ भिजवा दीं । इसके बाद सब माताओंके पास भेजीं । उसी तरह दोनों पुत्रों, सम्बन्धियों, मन्त्रियों, गुरुजनों, पुरवासियों, सेवकों तथा दासियोंके घर भी पाँच-पाँच सात-सात पिटारियाँ भिजवायीं । इसके अनन्तर सैकड़ों पिटारियाँ सीताको दीं और उनमेंसे स्वयं भी दस-पांच फल निकालकर खाये ॥ १५-१८ ॥ इसके बाद कमल आदि अच्छे-अच्छे फूलोंको पूर्ववत् विभक्त करके सैकड़ों फूल सीताको दिये और स्वयं भी लिये ॥ १९ ॥ किन्तु सीताने रामको अर्पण किये बिना ही जो फूल सूँघ लिया था, उस बातको जानते हुए भी राम अनजान जैसे बने रहे। इसके अनन्तर एक दिन सीताने एकादशीका व्रत किया ॥ २० ॥ दूसरे दिन वे वृन्दावन (तुलसीकी बगीची) में गयीं । वहाँ तुलसीकी पूजा करके प्रदक्षिणा करने लगीं ॥ २१ ॥ उस समय एकादशीका व्रत करनेसे उन्हें थकावट-सी लगी थी । जिससे प्रदक्षिणाका मार्ग छोड़कर वे दूसरी ओर चलने लगीं ॥ २२ ॥ चलते-चलते सीताके कपड़ोंका पल्ला लगनेसे तुलसीका एक पत्र टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २३ ॥ द्वादशीके दिन उस गिरे पत्रको देखकर सीताने सोचा—"ओह ! मैंने बड़ा भारी अधर्म कर डाला" यह सोचकर वे कुछ भयभीत-सी हो गयीं ॥ २४ ॥ इसके पश्चात् सीताने वह पत्र उठा लिया और उसे प्रणाम करके आदरसे उसी वृन्दावनमें फेंक दिया ॥ २५ ॥ ऐसा करनेके बाद प्रदक्षिणा करके बारम्बार प्रार्थना की। फिर महलमें जाकर रामचन्द्रजीका मनोरञ्जन करने लगीं ॥ २६ ॥ इसी समय वीणा बजाते और हरिकीर्तन करते हुए नारदजी वहाँ आ पहुँचे ॥ २७ ॥ वे आते ही "मुझ दीन-

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कीर्तयामास स मुनिर्वारं वारं मुदान्वितः । कलकंठस्वरेणैव महापातकनाशनम् ॥२९॥
॥ पालय मां दीनं राघव पालय मां दीनम् ॥ इति मंत्रः ।
तं मुनिं राघवो दृष्ट्वा प्रत्युद्गम्याथ भक्तितः । नत्वाऽऽसने संनिवेश्य पूजयामास सादरम् ॥३०॥
ततः प्रक्षाल्य तत्पादौ सीतया रघुनन्दनः । धेनुं निवेद्य गंधाद्यैः पूज्य तं मुनिपुंगवम् ॥३१॥
हेमपात्रं भोजनार्थं मुनेरग्रे निवेश्य च । परिवेषणार्थं श्रीरामस्त्वरयामास जानकीम् ॥३२॥
सीताऽपि कामधेनूत्थवरान्नानि विगृह्य सा । हेमपात्रे ययौ वेगात्पात्रेषु परिवेषणम् ॥३३॥
कर्तुं कंकणमंजीरकिंकिणीनूपुरस्वना । तां दृष्ट्वा नारदः सीतां प्राह श्रीराघवं तदा ॥३४॥
राम राजीवपत्राक्ष नाहं सीतासमर्पितैः । दिव्यान्नैरशनं चाद्य करिष्यामि रघूत्तम ॥३५॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा सीताऽऽसीच्चकिता तदा । अज्ञात इव रामोऽपि संभ्रमेण मुनिं तदा ॥३६॥
पप्रच्छ कारणं व्यग्रः सर्वकर्ता स्वयं प्रभुः । किं कारणं वद मुने किमर्थमनयाऽर्पितैः ॥३७॥
अन्नैस्त्वं भोजनं नाद्य करोषि मुनिपुङ्गव । इति रामवचः श्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥३८॥

नारद उवाच

सीतयाऽद्य कृतं पापं किं त्वं वेत्सि न वै प्रभो । यदि त्वं नैव जानासि तर्हि शृणु वदामि ते ॥३९॥
द्वादश्यां तुलसीपत्रमनयाऽद्य निकृंतितम् । यद्यसत्यं तर्हि पश्य गत्वा वृन्दावने प्रभो ॥४०॥
संक्रमेषु चतुर्दश्योर्द्वादश्योः पातपर्वसु । तुलसीं न हरेत्संध्योर्भृग्वंगारापराह्णके ॥४१॥
नष्टे सूर्येन्दुग्रहणे प्रसूतिमरणे तथा । तुलसीं ये निकृतंति ते छिंदति हरेः शिरः ॥४२॥
द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्तिके । लुनाति यो नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान् ॥४३॥
अकाले तुलसीपत्रं छेदयंत्यः स्त्रियः पुमान् । पत्रमेकं ब्रह्महत्यासममाहुर्मनीषिणः ॥४४॥
एवं तु वचनं सर्वैर्मुनिभिर्हि प्रकीर्त्यते । पुरुषाणामयं दोषस्तत्र स्त्रीणां कथाऽत्र का ॥४५॥

की रक्षा करो। हे राघव ! मेरा पालन करो" इस महापातक-नाशक पञ्चदशाक्षर मन्त्रका सहर्ष उच्चारण करने लगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ "पालय मां दीनम्, राघव पालय मां दीनम् ।" यह पञ्चदशाक्षर मन्त्रका स्वरूप है। राम नारदको देखते ही उठ खड़े हुए। उन्होंने आगे बढ़कर प्रणाम किया और आसनपर बिठाला। तब सादर पूजन किया ॥ ३० ॥ सीताके साथ रामने मुनिके पैर धोये और गोदान दिया। इसके पश्चात् उनके सामने सुवर्णके पात्र रक्खे और शीघ्र परोसनेके लिये सीतासे कहा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ सीता भी कामधेनुसे उत्पन्न अच्छे-अच्छे सामान परोसनेके लिये कङ्कण, मञ्जीर तथा नूपूरकी ध्वनि करती हुई चलीं। सीताको चलती देखकर नारदने रामसे कहा—हे राम ! हे राजीवपत्राक्ष !! मैं आज सीताके हाथों परोसे हुए दिव्यान्न नहीं खाऊँगा ॥ ३३-३५ ॥ मुनिकी बात सुनकर सीता चकरा गयीं और सब-कुछ करनेवाले स्वयं प्रभु रामने भी अनजान बनकर विस्मित हो व्यग्रभावसे पूछा—क्यों मुनिराज ! आज आप सीताके हाथका अन्न क्यों नहीं ग्रहण करेंगे ? इस प्रकार रामकी बात सुनकर नारदने कहा—॥ ३६-३८ ॥ आज इन्होंने एक बड़ा पाप किया है। सो क्या आपको नहीं मालूम है ? अच्छा मैं ही सुनाता हूँ ॥ ३९ ॥ आज द्वादशीको इन्होंने तुलसीपत्र तोड़ डाला हे। यदि आप मेरी बात सच न मानते हों तो स्वयं चलकर देख लीजिये ॥ ४० ॥ संक्रान्ति, चतुर्दशी, द्वादशी, प्रतिदिन सबेरे-साँझके समय, शुक्र और मङ्गलके दिन तथा दोपहरके बाद, सूर्य-चन्द्रग्रहणके समय, घरमें सन्तति होनेपर या किसीका देहान्त होनेपर जो लोग तुलसीका पत्र तोड़ते है, वे मानों तुलसीका पत्र न तोड़कर भगवान्का सिर काटते हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ जो द्वादशीको तुलसीपत्र तोड़ता है या कार्तिकमासमें आँवलेकी पत्तियाँ नोचता है, वह अतिशय निन्दित नरकमें जाता है ॥ ४३ ॥ जो लोग असमयमें तुलसीका एक भी पत्र तोड़ते हैं। विद्वान् लोग ऐसोंको ब्रह्महत्यारा कहते हैं ॥ ४४ ॥ इस प्रकारका वचन समस्त मुनियोंने कहा है। फिर जब पुरुषोंके लिये ऐसा नियम बना हुआ है तो स्त्रियोंके लिये क्या

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एतन्निमित्तं श्रीराम सीतया परिवेषितैः । वरान्नैर्भोजनं नाद्य करिष्यामि व्रतस्थितः ॥४६॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तं पुनः । मुने त्वमेव सीतां मे पूतां कर्तुमिहार्हसि ॥४७॥
वरदानं व्रतं वाऽपि येन पूता भवेत्क्षणात् । त्वामहं प्रार्थयाम्यद्य स्वीयं पल्लवमुत्तमम् ॥४८॥
प्रसार्य शिरसा चापि नमस्कृत्य पुनः पुनः । तद्रामवचनं श्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥४९॥
ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृत्यर्थं मुनीश्वरैः । प्रायश्चित्तानि चोक्तानि संति नानाविधानि च ॥५०॥
द्वादश्यां तुलसीपत्रच्छेदनाघप्रशांतये । प्रायश्चित्तं मया नैव दृष्टं राघवसत्तम ॥५१॥
उपायस्त्वेक एवात्र वर्तते रघुनन्दन । पातिव्रतबलात्सीता पत्रं तत्तुलसीं पुनः ॥५२॥
योजयिष्यति मेऽग्रेऽद्य तर्हि पूता भविष्यति । क्षणादेव न सन्देहः सत्यमेव वचो मम ॥५३॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा रामः सीतां व्यलोकयत् । तदा सीताऽब्रवीद्वाक्यं शृणु ब्रह्मसुतोत्तम ॥५४॥
अद्याहं योजयिष्यामि पत्रं तत्तुलसीं पुनः । पातिव्रत्यबलेनैव तवाग्रे पश्य कौतुकम् ॥५५॥
इत्युक्त्वा जानकी देवी तत्पात्रमन्नपूरितम् । पाकस्थाने पुनर्नीत्वा स्थापयामास वेगतः ॥५६॥
ततो वृंदावनं सीता ययौ नूपुरनिःस्वना । नारदो रामचन्द्राद्या ययुर्वृन्दावनं प्रति ॥५७॥
तदा ता उर्मिलाद्याश्च चंपिकाद्याः स्त्रियो ययुः । लक्ष्मणाद्या बंधवश्च कुशश्चाथ लवस्तथा ॥५८॥
तेषां मध्यगता सीता तदा वृंदावनस्थिता । नत्वा तां तुलसीं भक्त्या प्राह वाक्यं सखीयुता ॥५९॥
भो भो तुलसि मद्वाक्यं शृणुष्वाद्य सुशोभने । पातिव्रतबलं पूर्णं मयि यद्यस्ति पावनम् ॥६०॥
तर्ह्यस्य तव पत्रस्य त्वयि सन्धिर्भविष्यति । एवमुक्त्वा जानकी सा यावत्पश्यति वै पुरः ॥६१॥
तावत्पत्रं तुलस्यां तत्संधिं नैव गतं तदा । तदा विषण्णा सा सीता बभूव चकिताऽपि च ॥६२॥
तदा देवाः सगंधर्वा यक्षा नागाः सकिन्नराः । गुह्यका ऋषयः सर्वे तद्द्रष्टुं कौतुकं ययुः ॥६३॥
ततः सीतां विषण्णां तां दृष्ट्वा स नारदो मुनिः । एकांते जानकीं नीत्वा बोधयामास सादरम् ॥६४॥

कहना ॥ ४५ ॥ इसी कारण आज व्रतका पारण करनेके समय मैं सीताका परोसा अन्न नहीं खाऊँगा ॥ ४६ ॥ इस प्रकार नारदकी बात सुनकर रामने कहा–हे मुने ! तब तुम्हीं सीताको पवित्र कर दो ॥ ४७ ॥ यह वरदान तथा व्रत जिस उपायसे पवित्र हो सके, वैसा करो। एतदर्थ मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ और मस्तक झुकाकर पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ। रामका विनय सुनकर नारदने कहा—॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ब्रह्महत्यादि पापोंसे छुटकारा पानेके लिये तो मुनीश्वरोंने अनेक प्रकारके प्रायश्चित्त बतलाये हैं ॥ ५० ॥ किन्तु द्वादशीको तुलसीपत्र तोड़नेसे जो पातक होता है। उसका प्रायश्चित्त तो मैंने कहीं देखा ही नहीं ॥ ५१ ॥ हे रघुनन्दन ! इस विषयमें केवल एक उपाय है। वह यह कि सीता अपने पातिव्रतके बलसे वह पत्र फिर वृक्षमें जोड़ दे तो ये क्षणमात्रमें पवित्र हो सकती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। मैं जो कह रहा हूँ, सो सत्य है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ नारदके ऐसा कहनेपर रामने सीताकी ओर देखा। सीताने कहा—हे ब्रह्माके पुत्रोंमें श्रेष्ठ पुत्र नारद ! ॥ ५४ ॥ अभी मैं आपके सामने ही अपने पातिव्रतके बलसे उस तुलसीपत्रको डालमें जोड़ दूंगी, आप यह कौतुक देखें ॥५५॥ ऐसा कहकर सीता वह अन्नपात्र वेगके साथ लौटा ले गयीं और रख दिया ॥५६॥ इसके अनन्तर वे वृन्दावनमे गयीं। नारद और राम भी वहाँ पहुँचे ॥ ५७ ॥ उर्मिलादिक स्त्रियाँ तथा लक्ष्मणादि बन्धु एवं लव-कुश आदि पुत्र भी वृन्दावनमें पहुँचे ॥ ५८ ॥ उन सबके बीचमें सीताने उस तुलसीके वृक्षको प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक कहने लगीं—॥ ५९ ॥ हे सुशोभने तुलसि ! मेरी बात सुनो। यदि मुझमे पातिव्रतका बल हो तो यह टूटा हुआ पत्र फिर तुम्हारे अङ्गमें जुड़ जाय। ऐसा कहकर सीताने सामने पत्र देखा तो वह जुटा नहीं, यों ही पड़ा था। उस समय आश्चर्यके साथ-साथ सीताको बड़ा विषाद भी हुआ ॥ ६०–६२ ॥ समस्त देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग, किन्नर, गुह्यक तथा ऋषिगण वह कौतुक देखनेको एकत्रित हो गये थे ॥ ६३ ॥ जब सीताको इस प्रकार दुःखित देखा तो नारद मुनि उन्हें एकान्तमें ले गये और आदरपूर्वक समझाया। नारदने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रृण्वत्र कारणं सीते सर्वं त्वां प्रवदाम्यहम् । पतिव्रताभिर्नारीभिर्विना स्वपतिना मुदा ॥६५॥
पुष्पादीनां सुगन्धोऽपि नावग्राह्यः कदाचन । सोऽवग्राहितः पूर्वं मुदा तामरसस्य च ॥६६॥
तद्बुद्ध्वा रामचन्द्रेण मायेयं रचिताऽद्य हि । तदिच्छया तुलस्याश्च तत्पत्रं पतितं भुवि ॥६७॥
त्वद्धस्तपल्लवाग्रेण शिक्षां कर्तुं तवात्र हि । रामस्यांतर्गतं ज्ञात्वा दोषारोपः कृतस्त्वयि ॥६८॥
मया सीते क्षमस्वाद्य मा क्रोधं भज मां प्रति । नारीणामुपकारार्थं तेन त्वामद्य शिक्षितम् ॥६९॥
नोचेत्त्वद्दर्शितपथा स्त्रियः सर्वाः पतिं विना । एवमेवाचरिष्यन्ति नानाभोगान्मुदान्विताः ॥७०॥
इदानीं शृणु मद्वाक्यं येन श्रीराघवाग्रतः । पत्रस्य च तुलस्याश्च दृढा सन्धिर्भविष्यति ॥७१॥
वृन्दावने पुनर्गत्वा त्वं ब्रूहि यन्मयोच्यते । विना पद्मसुगन्धस्यात्रघ्राणाद्यदि रक्षितम् ॥७२॥
पातिव्रत्यं ममास्त्यत्र तर्ह्येतत्तुलसीदलम् । तुलस्यां संधिमाप्नोतु नोचेन्नाप्नोतु वै त्विदम्॥७३॥
अनेन वचनेनाद्य तत्पत्रं सन्धिमाप्नुयात् । तुलस्याः क्षणमात्रेण पूर्ववच्च भविष्यति ॥७४॥
अतस्त्वं याहि तुलसीं विषादं भज मा रमे । इत्युक्त्वा सीतया शीघ्रं तुलसीं नारदो ययौ ॥७५॥
सीताऽपि तुलसीं नत्वा श्रृण्वत्सु सकलेष्वपि । समूहेषु मुनीनां च देवादीनां वचोऽब्रवीत् ॥७६॥
विना पद्मसुगन्धस्यावघ्राणाद्यदि रक्षितम् । पातिव्रत्यं मयाऽस्त्यत्र तर्ह्येतत्तुलसीदलम् ॥७७॥
तुलस्याः संधिमाप्नोतु नोचेन्नाप्नोतु वै त्विदम् । एवं वदति जानक्या वाक्ये पत्रं क्षणेन तत् ॥७८॥
प्राप्तं सन्धिं पूर्ववच्च पश्यत्सु सकलेष्वपि । तदा निनेदुर्वाद्यानि देवानां राघवस्य च ॥७९ ।
देवनार्यो विमानाग्रे संस्थिताः पुष्पवृष्टिभिः । ववर्षुर्जानकीं रामं विप्रा ऊचुर्जयस्वनान् ॥८०॥
तदा सीतां समालिंग्य राघवो मुदिताननाम् । आह तुष्टमनाः श्रीमान् वसनाहारभूषितः ॥८१॥
हे सीते कञ्जनयने मुनीनामपि मोहिनि । नेदं मया शिक्षितं ते सर्वस्त्रीणां सुशिक्षितम् ॥८२॥
धर्मसंस्थापनार्थाय साधूनां पालनाय च । दुष्टानां च विनाशाय मयेदं रूपमाश्रितम् ॥८३॥

कहा—हे सीते ! इस पत्रके न जुटनेमें जो कारण है, वह मैं बतलाता हूँ । पतिव्रता स्त्रियोंको चाहिए कि यदि उनके पतिने हर्षपूर्वक सुगन्ध न लिया हो तो स्वयं भी पुष्पादिकका सुगन्ध न लें । आपने उस रोज रामके सूँघे बिना ही कमलका फूल सूँघ लिया था ॥ ६४–६६ ॥ रामको यह बात मालूम हो गयी थी । इसीसे उन्होंने यह माया रची है । तुलसीका पत्र भी उन्हींकी इच्छासे टूट गया था ॥ ६७ ॥ आपको शिक्षा देने ही के लिए उन्हींने ऐसा किया है । रामकी इच्छा देखकर ही मैंने आपपर दोषारोप किया है । सो क्षमा करें । मेरे ऊपर कुपित न हों । नारीजातिको शिक्षा देनेके लिए ही उन्होंने यह कौतुक रचकर आपको उपदेश दिया है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ वे यदि ऐसा न करेंगे तो आपके बताये मार्गके अनुसार संसारकी समस्त स्त्रियाँ अपने-अपने पतिको अलग करके स्वयं विविध प्रकारके भोगोंका उपभोग करने लगेंगी ॥ ७० ॥ सुनिए, अब मैं बतलाता हूँ कि किस तरह वह पत्र वृक्षमें जुड़ेगा ॥ ७१ ॥ आप फिर वृन्दावनमें जाकर कहें कि उस कमलका फूल सूँघनेके सिवाय यदि मेरा पातिव्रत धर्म सुरक्षित हो तो यह पत्र जुड़ जाय और यदि मैं अपने धर्मको सुरक्षित न रख सकी होऊँ तो न जुड़े ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ आपके इस वचनसे तत्काल वह जुड़कर पहिलेकी तरह हरा-भरा हो जायगा ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मीस्वरूपिणी सीते ! अब चलें, किसी प्रकारका विषाद न करें । ऐसा कहकर नारदजी सीताके साथ-साथ उस वृक्षके पास गये ॥ ७५ ॥ सीता भी जब समस्त परिवारके सभी लोग तथा सारे देवता एकत्र होकर सुन रहे थे, तब उन्होंने कहा—॥ ७६ ॥ यदि उस कमलका सुगन्ध लेनेके अतिरिक्त मेरा पातिव्रत धर्म सुरक्षित हो तो यह तुलसीदल अपने स्थानपर जुड़ जाय, अन्यथा नहीं जुड़े । सीताके ऐसा कहते ही क्षणमात्रमें वह पत्र पहलेकी तरह वृक्षमें जुड़ गया । सब लोग खड़े यह कौतुक देख रहे थे । पत्रके जुड़ते ही देवताओंने बाजे बजाये और देवनारियोंने पुष्पवृष्टि की एवं ब्राह्मणोंने एक स्वरसे जयजयकार किया ॥ ७७–८० ॥ इसके बाद रामने सीताको हृदयसे लगा लिया और प्रसन्न मनसे कहा कि हे मुनियोंके भी मनको मोहनेवाली सीते ! यह मैंने तुम्हींको नहीं, समस्त नारीजातिको शिक्षा दी है । धर्मकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पातिव्रत्यं सदा स्त्रीभिः पालनीयं धियेति च । मया ते शिक्षितं सीते मा विषादं भज प्रिये ॥८४॥
इत्याश्वास्य मुहुः सीतां कृत्वा तामतिहर्षिताम् । विसर्जयित्वा श्रीरामः सुरादीन्समपूजयत् ॥८५॥
ततः सर्वान्नारदादीन् जानकी परिवेषणम् । वेगाच्चकार मुदिता स्वेदबिंदंकिताननना ॥८६॥
ततः सर्वे नारदाद्याश्चक्रुर्भोजनमुत्तमम् । ततो भुक्त्वाऽथ तांबूलं रामं तुष्टाव नारदः ॥८७॥

श्रीनारद उवाच

श्रीरामं मुनिविश्रामं जनसद्धामं हृदयारामं सीतारञ्जनसत्यसनातनराजारामं घनश्यामम् ।
नारीसंस्तुतकालिंदीनतनिद्राप्रार्थितभूपालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामिच्छेदितसत्तालम् ॥८८॥
नानाराक्षसहन्तारं शरधर्तारं जनताधारं बालीमर्दनसागरबन्धननानाकौतुककर्तारम् ।
पौरानन्ददनारीतोषकस्तूरीयुतसद्भालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥८९॥
श्रीकांतं जगतीकांतं स्तुतसद्भक्तं बहुसद्भक्तं सद्भक्तहृदयेप्सितपूरकपद्माक्षं नृपजाकांतम् ।
पृथ्वीजापतिविश्वामित्रसुविद्यादर्शितसच्छीलं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९०॥
सीतारंजितविश्वेशं धरपृथ्वीशं सुरलोकेशं ग्रावोद्धारणरावणमर्दनतद्भ्रातृकृतलंकेशम् ।
किष्किंधाकृतसुग्रीवं प्लवगवृन्दाधिपसत्पालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९१॥
श्रीनाथं जगतां नाथं जगतीनाथं नृपतीनाथं भूदेवासुरनिर्जरपन्नगगन्धर्वादिकसन्नाथम् ।
कोदण्डधृततूणीरान्वितसंग्रामे कृतभूपालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९२॥
रामेशं जगतामीशं जम्बुद्वीपेश नतलोकेशं वाल्मीकिकृतसंस्तवहर्षितसीतालालितवागीशम् ।
पृथ्वीश हृतभूभारं नतयोगींद्रं जगतीपालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९३॥

स्थापना करने, सज्जनोंको रक्षा तथा दुष्टोंका विनाश करनेके लिये ही मैंने यह अवतार लिया है। स्त्रियोंको अपनी बुद्धिसे पातिव्रत धर्मकी रक्षा करनी चाहिए। यह मैंने तुम्हें उपदेश दिया है। इससे कहीं कुपित न हो जाना ॥ ८१–८४ ॥ इस प्रकार बारम्बार सीताको आश्वासन देकर रामने उन्हें फिर हर्षित कर दिया और उन आये हुए देवताओंका पूजन किया ॥ ८५ ॥ फिर नारदादि मुनियोंको साथ लेकर महलमें गये। वहाँ जल्दीसे सीताने भोजन परोसा ॥ ८६ ॥ इसके अनन्तर सबोंने भोजन किया। फिर ताम्बूल खाकर नारद रामकी स्तुति करने लगे ॥ ८७ ॥ नारदने कहा—मैं उन रामको मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ, जो मुनियोंके विश्राम-स्थान हैं, निजजनोंके सुन्दर धाम हैं, हृदयको आनन्द देनेवाले, सीताको प्रसन्न रखनेवाले, सत्य, सनातन, राजा राम, मेघकी तरह श्याम स्वरूपधारी, यमुना आदिसे वन्दित, निद्रासे प्रार्थित उन भूपाल रामको, जिन्होंने बड़े भारी सात तालके वृक्षोंको एक बाणसे गिरा दिया था, मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८८ ॥ अनेक राक्षसोंके प्राण लेनेवाले, धनुर्बाणधारी, जनताके आधार, बालिके नाशक, समुद्रमें सेतु बांधने और अनेक प्रकारके कौतुक करनेवाले, पुरवासियोंके आनन्ददाता, नारियोंके प्रसन्नकर्ता और माथेमें कस्तूरीका तिलक लगानेवाले आप रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८९ ॥ लक्ष्मीके पति, जगत्पति, अच्छे अच्छे भक्तोंसे वन्दित, जिनके बहुतसे भक्त हैं, जो मानसिक कामना पूर्ण करनेवाले तथा पृथ्वीकी पुत्री सीताके पति हैं, विश्वामित्रकी सुविद्यासे जिनका शील उत्तम हो गया है, ऐसे महान् सात तालके वृक्षोंको काटनेवाले आप रामको मैं मस्तक नवाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९० ॥ सीताको प्रसन्न करनेवाले, समस्त विश्वके ईश, पृथ्वीके ईश, देववृन्दके अधिपति, (अहल्यारूपी) पत्थरका उद्धार करनेवाले, रावणके विनाशकारी, रावणके भ्राता विभीषणको लंकेश बनानेवाले, सुग्रीवको किष्किन्धाका अधिपति बनानेवाले, वानरोंके अधिपति सुग्रीवकी भली-भाँति रक्षा करनेवाले और महान् तालके वृक्षोंको काटनेवाले रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ९१ ॥ लक्ष्मीके नाथ, जगतीके नाथ, जगत्के नाथ, राजाओंके राजा, विप्र, असुर, देवता, पन्नग तथा गन्धर्वोंके नायक, धनुष और तरकस लेकर संग्राममें लड़नेवाले राजा राम जिन्होंने महान् तालवृक्षोंको काट गिराया था, मैं उनको प्रणाम करता हूँ ॥ ९२ ॥ ईश, जगत्के ईश, जम्बूद्वीपके ईश, समस्त लोकपालोंके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चिद्रूपं जितसद्भूपं नतसद्दिक्पं नतसद्भूपं सप्तद्वीपजवर्षजकामिनिसंनीराजितपृथ्वीपम् ।
नानापार्थिवनानोपायनसम्यक्तोषितसद्भूपं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९४॥
संसेव्यं मुनिभिर्गेयं कविभिः स्तव्यं हृदि संधार्यं नानापण्डिततर्कपुराणजवाक्यादिकृतसत्काव्यम् ।
साकेतस्थितकौसल्यासुतगन्धाद्यंकितसद्भालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम्॥९५॥
भूपालं घनसन्नीलं नृपसद्बालं कलिसङ्कालं सीताजानिवरोत्पललोचनमन्त्रीमोचिततत्कालम् ।
श्रीसीताकृतपद्मास्वादनसम्यक्शिक्षिततत्कालं रामं त्वा शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ९६॥
हे राजन् नवभिः श्लोकैर्भुवि पापघ्नं नवकं रम्यं मे बुद्धया कृतमुत्तमनूतनमेतद्राघव मर्त्यानाम् ।
स्त्रीपौत्रान्नादिकक्षेमप्रदमस्मत्सद्वरदश्चालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९७॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

एवं स्तुत्वा रमानाथं राघवं भक्तवत्सलम् । प्रणम्याज्ञां प्रभोः प्राप्य प्रययौ नारदो मुदा ॥९८॥
अमरा मुनयः सर्वे जग्मुस्ते स्वस्थलानि वै । एवं श्रीरामचन्द्रेण नररूपधरेण च ॥९९॥
कौतुकानि विचित्राणि कृतानि जगतीतले । कस्तान्यत्र क्षमो वक्तुं विस्तरेण द्विजोत्तम ॥१००॥
तेषु यद्यद्यद्राघवेण स्मारितं त्विह वै मम । तत्तत्प्रकथ्यते शिष्य तवाग्रे राघवाज्ञया ॥१०१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे
उत्तरार्द्धे सीतया तुलसीपत्रसन्धिर्नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

प्रभु वाल्मीकिसे नमस्कृत, प्रसन्न सीताके द्वारा लालित, वागीश, पृथ्वीश, भूभारहारी, योगीन्द्रोंसे नमस्कृत, जगतीके पालक और विशाल तालवृक्षको काट गिरानेवाले रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९३ ॥ चिद्रूप, अच्छे-अच्छे राजाओंको भी परास्त करनेवाले, अच्छे-अच्छे दिक्पालोंसे नमस्कृत, बड़े-बड़े राजाओंसे नमस्कृत, सप्तद्वीप तथा समस्त देशमें उत्पन्न नारियोंसे नीराजित, पृथ्वीके पालक, अनेक राजाओंके द्वारा अनेक प्रकारके उपहार देकर प्रसन्न किये गये राजा राम जिन्होंने विशाल तालके वृक्षोंको काट गिरांया था, उन रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९४ ॥ जो मुनियोंके सेव्य, मंत्रियोंसे गेय, हृदयमें धारण करने योग्य, अनेक पंडितों द्वारा विविध प्रकारके तर्क-पुराण तथा काव्योंसे सत्कृत एवं साकेत-निवासिनी कौसल्याके पुत्र हैं और गन्धादि द्रव्योंसे जिनका मस्तक अलंकृत है, सात तालके वृक्षोंको काट गिरानेवाले आप रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९५ ॥ भूपाल, मेघके समान श्यामस्वरूप, महाराज दशरथके अच्छे पुत्र, पापोंके लिये कालस्वरूप, सीतापति, सुन्दर, कमलकी नाईं आखोंवाले, प्रबल कालके गालसे अपने मन्त्रीको तत्काल छुड़ानेवाले, पतिको बिना अर्पण किये कमलका फूल सूँघ लेनेपर सीताको भलीभाँति शिक्षाके दाता, विशाल तालके वृक्षोंको काट गिरावाले उन रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९६ ॥ हे राजन् ! संसारके प्राणियोंका पाप नष्ट करनेवाले इन नौ श्लोकोंसे मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार आपकी स्तुति की है । मेरे वरदानसे यह स्तुति स्त्री-पुत्र आदि सब वस्तुओंको देनेवाली होगी । विशाल तालके वृक्षोंका भेदन करनेवाले रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९७ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकार भक्तवत्सल, रमानाथ, राघव, रामचंद्रकी स्तुति करके और उनसे आज्ञा लेकर नारदजी प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे विदा हुए ॥ ९८ ॥ तब सब देवता तथा मुनिगण भी अपने-अपने स्थानको चले गये । नररूपधारी रामचंद्रने ऐसे-ऐसे कितने ही कौतुक किये हैं । हे द्विजोत्तम ! विस्तारपूर्वक उनका वर्णन करनेके लिए इस संसारमें कौन समर्थ हो सकता है ? ॥ ९९ ॥ १०० ॥ उन चरित्रोंमेंसे स्वयं रामचंद्रजीने जो जो चरित्र हमें स्मरण कराया है, वह-वह उन्हींकी आज्ञासे मैंने तुम्हारे आगे कहा है ॥ १०१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषा-टीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

त्रयोविंशः सर्गः

(आनन्दरामायणकी महिमा)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः स वैदेह्या बन्धुभिस्तनयादिभिः । चकार राज्यं धर्मेण लोकवंद्यपदांबुजः ॥ १ ॥
एतस्मिन्नन्तरेऽयोध्यापुर्यां श्रीरघुनायकम् । नत्वैकदाऽब्रवीद्दूतो हे राम कञ्जलोचन ॥ २ ॥
करोमि तव सेवां न तपश्चर्यां करोम्यहम् । ददस्वाज्ञां मम त्वं हि गच्छामि निजमन्दिरम् ॥ ३ ॥
तथेति राघवेणोक्तः स ययौ निजमन्दिरम् । तत्र गत्वा शुचिर्भूत्वाऽऽनन्दरामायणं शुभम् ॥ ४ ॥
पठित्वा नवरात्रं तु ततस्तूर्णं बहिर्ययौ । एतस्मिन्नन्तरे एकदेशे पौरा मृतं नृपम् ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा तस्य सुतं बालं ज्ञात्वा कर्तुं हि मन्त्रिणम् । चक्रुस्ते निश्चयं तत्र केचिदूचुरयं शुभः ॥ ६ ॥
केचिदूचुरयं नैव कार्यो मन्त्री खलस्त्वयम् । एवं विवदमानास्ते चक्रुर्वै निश्चयं तदा ॥ ७ ॥
करिणी निजशुण्डाग्रमालया यं वरिष्यति । सोऽस्तु मन्त्री निश्चयेन ततस्तां करिणीं वरैः ॥ ८ ॥
वस्त्रलङ्कारभूषाद्यैः शोभयामासुरादरात् । तच्छुण्डायां रत्नमालां दत्त्वा तां मुमुचुस्तदा ॥ ९ ॥
ततस्ते नववाद्यानि वादयामासुरादरात् । तदा सा करिणी ग्रामाद्बहिस्तूर्णं ययौ शनैः ॥१०॥
अयोध्यायाःपथाऽयोध्यां ययौ देशान् विलंघ्य सा । तत्पृष्ठे सकलाः पौरा नानावाहनसंस्थिताः ॥११॥
ययुस्तूर्णं कौतुकेन कोटिशो मुदिताननाः । ततः सा कारिणी गत्वाऽयोध्यां हट्टस्थितं तदा ॥१२॥
तं दूतं वरयामास येन पारायणं कृतम् । आनन्दरामचरितस्याहो तत्कौतुकं महत् ॥१३॥
बभूव सकलान् लोकान् ततस्तं मालयांकितम् । करिण्या मन्त्रिणं चक्रुस्ते पौरा ये समागताः ॥१४॥
तं नित्युः करिणीसंस्थं पत्नीपुत्रसमन्वितम् । स्वदेशे मन्त्रिणं चक्रुस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥१५॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर संसारसे वन्दित राम जब सीता, पुत्रों और भ्राताओंके साथ धर्मपूर्वक राज्य कर रहे थे ॥ १ ॥ उसी समय एक दूतने अयोध्यापुरीमें रामके पास जाकर कहा कि हे कमललोचन राम ! अब आपकी सेवा न करके मैं तपस्या करना चाहता हूँ । मुझे आज्ञा दीजिए तो अपने घर जाऊँ ॥ २ ॥ ३ ॥ रामने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वह अपने घर चला गया । वहाँ पवित्र मनसे उसने नौ रात्रि तक इस कल्याणदायक आनंदरामायणका पाठ किया और बादमें घरसे बाहर निकला । उसी समय एक देशका राजा मर गया था ॥ ४॥ ५॥ उसका पुत्र बालक था। सो उसके लिये किसीको मंत्री बनानेकी आवश्यकता पड़ी । अब पुरवासियोंमें मंत्रणा होने लगी कि किसको मंत्री बनाया जाय । कोई किसीको कहता कि अमुक मनुष्य अच्छा है, उसे मंत्री बना दिया जाय । किन्तु उसकी बात काटकर दूसरा कहता कि नहीं, वह बड़ा दुष्ट है । उसे मंत्री नहीं बनाया जा सकता । इस तरह परस्पर झगड़ा करते-करते यह निश्चय हुआ कि ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजाकी हथिनी अपनी सूँड़में माला लेकर जिसके गलेमें डाल दे, वही व्यक्ति राजकुमारका मंत्री बनाया जाय । तदनुसार अच्छे-अच्छे वस्त्र-आभूषण आदि पहिनाकर हथिनीको सुसज्जित किया गया और उसकी सूँड़में एक माला देकर उसे छोड़ दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसके बाद वे लोग हर्षसे बाजे बजाने लगे । वह हथिनी धीरे-धीरे नगरसे बाहर निकली ॥ १० ॥ वहाँसे चलकर वह अयोध्या पहुँची । उसके पीछे अनेक प्रकारके वाहनोंपर सवार होकर नागरिक लोग भी कौतुकवश बड़े वेगके साथ प्रसन्न मनसे अयोध्या तक चले आये । उस हथिनीने बाजारमें खड़े उस मनुष्यके गलेमें माला डाल दी, जिसने नौ रात तक आनंदरामायणका पाठ किया था । उन लोगोंके लिये यह एक असाधारण कौतुककी बात हुई ॥ ११–१३ ॥ तब माला पहिने हुए उस दूतको लोगोंने राजकुमारका मंत्री चुन लिया । उसी हथिनीपर बिठाकर पत्नी-पुत्र समेत उसे अपने देश ले गये और राजकुमारके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation, Delhi and eGangotri.

ततः परस्परं श्रुत्वा राजदूताः सहस्रशः । नानादेशेषु सर्वत्र साकेतेऽपि तदा मुदा ॥१६॥
राजसेवां परित्यज्य जग्मुस्ते स्वगृहाणि हि । ततः सर्वे स्वगृहेष्वानन्दरामायणस्य च ॥१७॥
केचित्पारायणं चक्रुः केचित्तच्छ्रवणं मुदा । केचित्तत्पठनं वाऽपि केचिच्चक्रुश्च कीर्तनम् ॥१८॥
केचिच्चक्रुश्च व्याख्यानमेवं तन्निष्ठमानसाः । बभूवुः सकला दूताः कोटिशो जगतीतले ॥१९॥
तदा केन धनं लब्धं केन लब्धं महद्धनम् । केन राजपदं लब्धं केन लब्ध गृहं वरम् ॥२०॥
केन ग्रामाधिकारश्च केन लब्धा कृषिर्वरा । केन वृत्तिः शुभा लब्धा केन स्वर्गो मनोरमः ॥२१॥
केन लब्धं तु पातालं कैर्लोका विविधाः शुभाः । लब्धं कैश्चित्सूर्यपदं लब्धं स्वर्गं मनोहरम् ॥२२॥
केचिदिन्द्रपदं प्रापुः केचिदग्निपुरं गताः । केचित्ते धर्मराजस्य लोकं वा निर्ऋतेरपि ॥२३॥
वरुणस्याथ वायोश्च कुबेरस्येश्वरस्य च । लोकान् जग्मुस्तदा दूतास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥२४॥
केचिज्जग्मुश्चन्द्रलोकं केचिद्ध्रुवपदं गताः । केचित्ते ब्रह्मलोकं च वैकुण्ठं चापि केचन ॥२५॥
एवं यथा यस्य पुण्यं दूतस्यान्यजनस्य च । आनन्दरामचरितपाठश्रवणसम्भवम् ॥२६॥
तथा तस्य गतिर्जाता सद्य एवावनीतले । तदा कोऽपि न कस्यासीद्दूतो देशान्तरेष्वपि ॥२७॥
त्यक्त्वा सेवां समस्ताश्च राघवस्यापि ते गताः । रामं पृष्ट्वा गताः केचिदपृष्ट्वैव गताः परे ॥२८॥
एवं सर्वत्र देशेषु दूताभावोऽभवत्तदा । एकदा राघवं द्रष्टुं गन्तुं सर्वे नृपोत्तमाः ॥२९॥
सैन्यान्याकारयामासुः स्वीयानि तु पृथक्पृथक् । तदा कुत्रापि सैन्यानि ददृशुर्न नृपोत्तमाः ॥३०॥
आः किमेतदिति प्रोक्त्वा स्वसुहृद्भिः सुतादिभिः । ययुस्ते राघवं द्रष्टुं विस्मयाविष्टमानसाः ॥३१॥
तानागतान्नृपान् ज्ञात्वा तान्पुरो गन्तुमादरात् । आकारयत्स्वसैन्यानि न तदा प्राप लक्ष्मणः ॥३२॥

मन्त्रि-पदपर बिठा दिया। यह घटना एक अद्भुत प्रकारसे घट गयी ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ फिर क्या था, जब रामके दूतोंको यह खबर मिली तो अयोध्यापुरीके तथा अन्यान्य देशोंके हजारों दूत प्रसन्नतापूर्वक अपनी-अपनी नौकरी छोड़कर घर चले गये। घरपर कुछने आनन्दरामायणका पाठ करना प्रारम्भ किया ॥ १६ ॥ १७ ॥ कुछ इसे दूसरेके मुखसे सुनने लगे, कुछ इसका पारायण करने लगे और कुछ लोग इसके कीर्तनमें लग गये ॥ १८ ॥ कुछ लोग इसकी व्याख्या करने लगे और कुछने चारों ओरसे अपनी चित्तवृत्ति हटाकर इसी आनन्दरामायणमें लगा दी। इस तरह राजसेवा छोड़कर आनन्दरामायणका आराधन करनेवालोंकी संख्या संसारमें करोड़ोंके लगभग हो गयी ॥ १९ ॥ ऐसा करनेसे कुछको धन मिला, कुछको बहुत अधिक सम्पदा मिली, किसीको राज्यपद प्राप्त हुआ और किसीको अच्छा-सा घर मिला ॥ २० ॥ कुछको ग्रामका अधिकार मिला, किसीको अच्छी खेती मिली, किसीको सुन्दर जीविका मिली और किसीको मनोरम स्वर्गलोक प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ किसीको पाताललोक मिला और कुछ लोगोंको विविध प्रकारके अच्छे-अच्छे लोक प्राप्त हुए और कुछ लोगोंको सूर्यलोक मिला ॥ २२ ॥ कुछ लोगोंको इन्द्रपद प्राप्त हुआ, कुछ अग्निलोकको गये, कुछ धर्मराजके लोक तथा कितने ही लोग निर्ऋतिलोकको चले गये ॥ २३ ॥ कुछ अरुणलोकको, कुछ कुबेरलोकको, कुछ चन्द्रलोकको, कुछ ध्रुवलोकको, कुछ ब्रह्मलोकको तथा कुछ लोग वैकुण्ठलोकमें जा पहुँचे ॥ २४ ॥ २५ ॥ इस तरह आनन्दरामायणके पाठसे उन दूतों तथा अन्य लोगोंको भी वे ही लोक प्राप्त हुए, जिनका जैसा पुण्य था। इस प्रकार पृथ्वीलोकमें सबको शुभ गति प्राप्त हुई। उस समय अयोध्या तथा देशान्तरमें भी कोई सिपाही नहीं रहा ॥ २६ ॥ २७ ॥ सब रामको भी सेवा त्याग-त्यागकर चले गये थे। उनमेंसे कुछ लोग तो रामसे पूछकर गये थे, कुछ बिना पूछे-जाँचे ही चले गये ॥ २८ ॥ इस तरह उस समय सारा देश दूतविहीन हो रहा था। एक बार संसारके जितने अच्छे-अच्छे राजे थे, वे सब रामचन्द्रजीसे मिलने जानेके लिये तैयार हुए। उन्होंने जब साथ चलनेके लिए सेना बुलायी तो पता चला कि सेना है ही नहीं ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह खबर पाकर राजाओंने कहा—आह! यह क्या हुआ? विस्मितभावसे वे अपने-अपने मित्रों और पुत्रोंको साथ लेकर अयोध्या आये ॥ ३१ ॥ जब अयोध्यामें लक्ष्मणको यह सम्वाद मिला तो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ततो निवेदयामास तद्वृत्तं राघवाय सः । तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्यासीद्विस्मयाविष्टमानसः ॥३३॥
सुहृज्जनैर्युतं बन्धुं लक्ष्मणं प्रेष्य पार्थिवान् । स्वपुरीमानयामास ते नेमू रघुनायकम् ॥३४॥
ततस्ते तस्थुः सदसि सेनावृत्तं न्यवेदयन् । रामोऽपि कथयामास स्वसेनावृत्तमादरात् ॥३५॥
तदा विहस्य श्रीरामः समाहूय निजं गुरुम् । पृष्टवान्मम सैन्यानि नृपाणां चापि वै गुरो ॥३६॥
किं जातानि क्व वै सन्ति तद्वदस्व सविस्तरम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा कृत्वा ध्यानं क्षणं गुरुः ॥३७॥
तदा प्राह सभामध्ये विहस्य रघुनन्दनम् । राम राम महाबाहो सर्वं वेत्सि त्वमेव हि ॥३८॥
यदि पृच्छसि मां राम तर्हि सर्वं वदाम्यहम् । शतकोटिमितं रामचरितं तव पावनम् ॥३९॥
वाल्मीकिना कृतं पूर्वं तन्मध्ये रघुनन्दन । आनन्दरामचरितं नवकांडसमन्वितम् ॥४०॥
तस्य श्रवणपाठाद्यैः सर्वसैन्येषु ये नराः । ते गतास्त्वत्पदं केचित्केचिल्लोकांतरादिषु ॥४१॥
न संति भुवि सैन्यानि सत्यं राम वचो मम । नवकाण्डमितं तच्च रम्यमानन्ददायकम् ॥४२॥
तस्यैतच्छ्रवणाद्विद्धि फलं रघुकुलोद्भव । येन ते हीनजातिस्था दूताश्च मुक्तिगामिनः ॥४३॥
सारकांडश्रवादेव संसारान्मुच्यते नरः । यात्राकाडेन यात्राणां लभ्यते मानवैः फलम् ॥४४॥
यागकांडेन यज्ञानां लभ्यते फलमुत्तमम् । विलासकांडश्रवणादप्सरोभिर्विमोदते ॥४५॥
जन्मकांडेन चाप्नोति नरः पुत्रादिसंततिम् । विवाहकांडश्रवणाद्भुवि रम्यां स्त्रियं लभेत् ॥४६॥
राज्यकांडेन राज्यं हि मानवैर्भुवि लभ्यते । कांडं मनोहरं श्रुत्वा लभ्यते मानसेप्सितम् ॥४७॥
पूर्णकांडश्रवादेव ते पूर्णस्य पदं लभेत् । सर्वं तान्मानवैः श्रुत्वाऽऽनन्दरामायणं भुवि ॥४८॥
सच्चिदानन्दरूपे ते लीनो भवति मानवः । एवं राम त्वया पृष्टं तत्सर्वं कथितं मया ॥४९॥
यदग्रेऽत्र चिकीर्षा ते तत्कुरुष्व रघूत्तम । इति रामं वसिष्ठस्तु यावत्प्राह नृपाग्रतः ॥५०॥

उन्होंने राजाओंकी अगवानी करनेके लिए सेना बुलवायी तो उन्हें भी सेना नहीं मिली ॥ ३२ ॥ लक्ष्मणनें रामको यह वृत्तान्त सुनाया तो राम भी भौंचक-से रह गये ॥ ३३ ॥ अन्तमें रामने भी अपने परिवारके लोगोंको भेजकर राजाओंकी अगवानी करायी । राजाओंने अपनी-अपनी सेनाका समाचार सुनाया। सो सुनकर रामने आदरपूर्वक अपना भी सब हाल कहा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तदनन्तर रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठको बुलवाया और हँसकर उनसे कहा—हे गुरो ! हमारा तथा इन राजाओंकी सेना कहाँ चली गयी है, सो विस्तारपूर्वक बतलाइए। रामकी बात सुनकर वसिष्ठने कहा—हे राम ! हे महाबाहो ! आप स्वयं सब बातोंको जानते हैं ॥ ३६–३८ ॥ फिर भी यदि हमसे पूछ रहे हैं तो बतलाता हूँ। बहुत दिनों पहले महर्षि वाल्मीकिने सौ करोड़ श्लोकोंमें आपके पावन चरित्रका वर्णन किया था । उसके मध्यमें नौ काण्डोंका आनन्दरामायण है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसका श्रवण तथा पाठ करनेसे आपकी सेनाके सारे सेनिकोंमेंसे कुछ तो आपके परमपद (वैकुण्ठ) को और कुछ अन्यान्य लोकोंको चले गये हैं ॥ ४१ ॥ हे राम ! आप मेरी इस बातको सच मानिए। इस समय संसारमें कोई भी सेना नहीं है। नौ काण्डोंवाला आनन्ददायक एवं रमणीक वह आनन्दरामायण है ॥ ४२ ॥ उसका श्रवण करनेसे नीच जातिवाले लोग भी मुक्तिपद प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४३ ॥ सारकाण्डके श्रवणसे प्राणी संसारसे मुक्त हो जाता है। यात्राकाण्डके श्रवणसे तीर्थोंकी यात्राका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ यागकाण्डसे यज्ञोंका शुभ फल प्राप्त होता है। विलासकाण्डके श्रवणसे प्राणी स्वर्गकी अप्सराओंके साथ आनन्द करता है ॥ ४५ ॥ जन्मकाण्डके श्रवणसे पुत्रादि सन्तति पाता है। विवाहकाण्डको सुननेसे मनुष्य संसारमें सुन्दरी स्त्री पाता है ॥ ४६ ॥ राज्यकाण्डके सुननेसे प्राणी राज्यपद पाता है और मनोहरकाण्डके सुननेसे अपनी अभिलाषाके अनुसार सब वस्तुयें पा जाता है ॥ ४७ ॥ पूर्णकाण्डके श्रवणसे पूर्णपद प्राप्त होता है और समस्त आनन्दरामायण श्रवण करके मनुष्य सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मामें लीन हो जाता है। हे राम ! आपने मुझसे जो पूछा, सो सब मैंने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तावद्भूम्यां हि किं जातं तच्छृणुष्व सविस्तरम् । गतिं श्रुत्वा तु दूतानां नानादेशेषु ये नराः ॥५१॥
तेऽपि सर्वे तदानन्दरामायणश्रवादिभिः । नानाविमानसंस्थास्ते ययुः स्वर्लोकमुत्तमम् ॥५२॥
शून्यं दृष्ट्वा निजं लोकं यमो विधिसमन्वितः । कैलासे शंकरं गत्वा सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥५३॥
शिवः श्रुत्वा विहस्याथ यमेन केन दुर्गया । ययौ स वृषभारूढः साकेतं वेष्टितोऽमरैः ॥५४॥
शिवमागतमाज्ञाय प्रत्युद्गम्य रघूद्वहः । सिंहासने शिवं देव्या निवेश्य पूजनं व्यधात् ॥५५॥
ससीतो ब्रह्मणश्चापि सुराणां च यमस्य च । एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा राघवं प्राह वै तदा ॥५६॥
राम राजीवपत्राक्ष यमं पश्य निरुद्यमम् । शून्या संयमनी जाताऽऽनन्दरामायणश्रवात् ॥५७॥
शून्योजातोऽस्तिभूलोकः खेऽत्रकाशो न दृश्यते । सर्वेषां तत्र वै वस्तुमग्रे किंचिद्विचारय ॥५८॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा समाहूय रघूत्तमः । शत्रुघ्नं प्रेष्य वाल्मीकिं तस्मै वृत्तं न्यवेदयत् ॥५९॥
सोऽपि श्रुत्वा विहस्याथ राघवं वाक्यमब्रवीत् । येन मत्कवितानाशो न भविष्यति वै भुवि ॥६०॥
तथा सुखं च सर्वेषां तेन तत्कुरु राघव । तथेति राघवश्चोक्त्वा तदा वचनमब्रवीत् ॥६१॥
सप्तजन्मार्जितं पुण्यं ममार्चनसमुद्भवम् । यस्य स्यात्तस्य चानन्दरामायणकथारुचिः ॥६२॥
भविष्यति न सर्वेषां भवत्वत्र कदाचन । इति रामवचः श्रुत्वा सर्वे सन्तुष्टमानसाः ॥६३॥
ययुः स्वं स्वं पदं देवाः स्वं स्वं देश नृपा ययुः । तदारभ्य विष्णुदास शतकोटिमिते शुभे ॥६४॥
रामायणे शिवेनोक्तमानन्दाख्यमिदं शुभम् । रामायणं क्वचित्कुत्र कश्चिद्वेत्स्यति मानवः ॥६५॥
न भूम्यां सकला लोका वेत्स्यंति द्वापरे कलौ । सप्तजन्मार्जितं पुण्यं येषां वेत्स्यंति ते नराः ॥६६॥

कह सुनाया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ भविष्यमें आप जो कुछ करना चाहते हों, सो करते चलिए । इस प्रकार वसिष्ठ रामसे कह ही रहे थे, तब तक पृथ्वीमण्डलमें क्या हुआ सो कहते हैं । उन दूतोंकी गति सुनकर संसारमे जितने मनुष्य थे ॥ ५० ॥ वे अब आनन्दरामायणके पठन और श्रवणसे अनेक प्रकारके विमानोंपर चढ़-चढ़कर उत्तम स्वर्गलोकको चले गये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अपने लोकको शून्य देख यमराज ब्रह्माको साथ लेकर शंकरजीके पास पहुँचे और प्रणाम करके उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ५३ ॥ शिवजी यह समाचार सुनकर ब्रह्मा, पार्वती और यमराजको साथ ले तथा बहुतसे देवताओंसे वेष्टित होकर अयोध्यामे रामके पास गये ॥ ५४ ॥ जब रामको यह समाचार मिला कि शिवजी आये हैं तो प्रेमपूर्वक अगवानी करके पार्वतीके साथ शिवजीको एक दिव्य सिंहासनपर बिठाकर उनकी पूजा की ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा तथा यमादि देवताओंकी भी पूजा की । थोड़ी देर बाद ब्रह्माने रामसे कहा—॥ ५६ ॥ हे राजीवपत्राक्ष राम ! सर्वथा निरुद्यम इन यमराजकी ओर निहारिए । आनन्दरामायणके श्रवणसे इनकी संयमनी पुरी सूनी हो गयी है ॥ ५७ ॥ भूलोक खाली हो चुका है और स्वर्गमें उन सबके रहनेके लिए कुछ जगह हां नही रह गयी है । अब उनको रहनेके लिए कोई और स्थान सोचिये ॥ ५८ ॥ इस प्रकार शिवजीकी बात सुनकर रामने शत्रुघ्नको बुलाया और उनको यह समाचार सुनानेके लिये वाल्मीकिके पास भेजा ॥ ५९ ॥ शत्रुघ्न गये और वाल्मीकिको बुला लाये । रामके मुखसे यह वृत्तान्त सुना तो वाल्मीकि हँसकर कहने लगे—जिस तरह संसारमें मेरी कविताका नाश न हो ॥ ६० ॥ और सब लोग प्रसन्न भी रहें, ऐसा कोई उचित उपाय सोचकर करिये । रामने उनकी बात मान ली और बोले—॥ ६१ ॥ मेरा पूजन करते-करते जिनके पास सात जन्मोंका पुण्य एकत्रित होगा, उनकी ही रुचि आनन्दरामायण सुननेकी होगी ॥ ६२ ॥ भविष्यमें साधारण लोगोंकी रुचि ही इस ओर नहीं होगी । इस प्रकार रामको वाणी सुनकर सबका मन प्रसन्न हो गया ॥ ६३ ॥ तब देवतागण अपने-अपने लोकोंको तथा राजा लोग अपने-अपने देशोंको लौट गये । तभीसे हे विष्णुदास ! शतकोटिरामचरितान्तर्गत इस आनन्दरामायणके विषयमें ऐसा हो गया कि कहीं-कहीं कोई ही कोई मनुष्य आनन्दरामायणको जानने लगा ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ द्वापर और कलिमें तो बहुत ही कम लोग इसे जाननेवाले होंगे । क्योंकि उस समयसे यह नियम बन गया है कि रामचन्द्रके पूजनसे सात जन्मोंके पुण्य जब एकत्रित होंगे, तब आनन्दरामायणमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तद्रामवचनाद्भूम्यां बभूव पूर्ववत्तदा । नाभूत्कस्य कदा मेधाऽऽनंदरामायणं प्रति ॥६७॥
सहस्रेषु नरः कश्चित्सप्तजन्मसु पुण्यवान् । आनन्दरामचरितं वेद स्तोत्रं न चापरः ॥६८॥

इति श्रीशतकोटिरामचर्चरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकांडे उत्तरार्द्धे आनन्दरामायणमहिमावर्णनं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः

(रामका यमको उपदेश, सुमन्त्रका वैकुण्ठगमन और प्रजाको रामकी शिक्षा)

श्रीरामदास उवाच

एकदा संस्थितं रामं सभायां सेवकोऽब्रवीत् । राजराज महाराज रविवंशैकमण्डन ॥ १ ॥
सुमंत्रस्तेऽतिवृद्धः स मन्त्री नाकं गतः प्रभो । तत्पत्न्यस्तेन गन्तुं त्वामाज्ञां पृच्छन्ति राघव ॥ २ ॥
तद्दूतवचनं श्रुत्वा चाकितः खिन्नमानसः । शीघ्रं सुमन्त्रगेहे स ययौ यानेन राघवः ॥ ३ ॥
सुमन्त्रजन्मपट्टे तस्यायुःसंख्यां ददर्श सः । जन्मकालात्सहस्राणि नव नवशतानि च ॥ ४ ॥
नवनवतिवर्षाणि मासास्त्वेकादशैव हि । एकविंशद्दिनाश्चातिक्रांताः शेषा दिना नव ॥ ५ ॥
ज्ञात्वेत्थं रामचन्द्रः स तदा प्राह गुरुं प्रति । कृते युगे तु लक्षायुः सहस्रं द्वापरे स्मृतम् ॥ ६ ॥
शतवर्षं कलौ प्रोक्तं सहस्राणि दशैव च । त्रेतायां कथितं चायुस्तन्मद्राज्ये मृषा कृतम् ॥ ७ ॥
यमेन मामवज्ञाय मद्दण्डं लब्धुमिच्छता । दिनानि नव शेषाणि सन्ति मे मन्त्रिणः कथम् ॥ ८ ॥
यमेन नीतस्त्वद्यैव यमं बद्ध्वा नयाम्यहम् । सुमन्त्रं जीवयाम्यद्य पश्य मे त्वं पराक्रमम् ॥ ९ ॥
इत्युक्त्वा गरुडारूढः कोदण्डं कलयन् करे । वेगेन रघुनाथः स ययौ संयमनीं पुरीम् ॥१०॥
तावन्मार्गे सुमन्त्रं तं पाशबद्धं यमानुगः । गच्छन्तं राघवो दृष्ट्वा तान्सर्वांस्ताडयन्मुहुः ॥११॥
सुमंत्रं मोचयामास लिंगरूपधरं प्रभुः । तदा ते राघवं प्रोचुश्चापराद्धं तवाद्य किम् ॥१२॥

लोगोंकी रुचि होगी और तभी लोग इसे जानेंगे। तबसे रामके कथनानुसार किसीकी बुद्धि आनन्दरामायणकी ओर नहीं गयी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ क्योंकि हजारोंमें कहीं एक-आध मनुष्य हा सात जन्मोंका पुण्यवान् होगा और वही आनन्दरामायणको जान पायेगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयरचित-'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

श्रीरामदास कहने लगे--एक बार राम अपनी सभामें बैठे थे। तभी एक सेवकने आकर कहा—हे राजराज ! हे सूर्यवंशके अलङ्कारस्वरूप महाराज ! आपके बूढ़े मन्त्री सुमन्त्र स्वर्ग चले गये। उनकी स्त्रियाँ सती होकर पतिका अनुसरण करनेके लिये आपकी आज्ञा चाहती हैं ॥ १ ॥ २ ॥ इस प्रकारका सन्देश सुनकर राम एक रथपर सवार होकर सुमन्त्रके घर गये ॥ ३ ॥ वहाँ उन्होंने उनकी जन्मकुण्डली मँगाकर देखी, जिससे ज्ञात हुआ कि ९९९९ वर्ष ग्यारह महीना सुमन्त्रकी आयु थी। जिसमें सब तो बीत गये, केवल नौ दिन बाकी रह गये थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऐसा जानकर रामने गुरु वसिष्ठको बुलवाकर उनसे कहा कि सत्ययुगमें मनुष्यकी आयु लाख वर्षोंकी, द्वापरमें हजारकी, कलियुगमें सौ वर्षकी तथा त्रेतायुगमें दस हजार वर्षकी कही गयी है। सो यमराजने मेरे राज्यमें मेरा अपमान करके उस नियमका उल्लंघन किया है ॥ ६ ॥ ७ ॥ ऐसा ज्ञात होता है कि वह मेरे द्वारा दण्ड पाना चाहता है। मेरे मन्त्रीकी आयुमें अभी नौ दिन बाकी हैं तो यम उसे यहाँसे क्यों ले गया। मैं आज यमको बाँधकर लाता हूँ और सुमन्त्रको जिलाता हूँ। मेरा पराक्रम देखिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर राम गरुड़पर बैठे और धनुषका टङ्कोर करते हुए यमकी संयमनी पुरीको चल दिये। तब तक रास्ते ही में उन्होंने पाशबद्ध सुमन्त्रको ले जाते हुए कुछ यमदूतोंको देखा। देखते ही रामने यमदूतोंको मारकर लिंगरूपधारी सुमंत्रको छुड़ा लिया। तब यमदूतोंने विनयपूर्वक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अस्माभिश्चेदृशो दंडो यतोऽस्माकं कृतस्त्वया । तदा तान्राघवः प्राह दिनान्यान्युर्नवास्य हि ॥१३॥
वर्तन्ते शेषभूतानि कथमद्यैव नीयते । भविष्यन्ति दिनान्यग्रे यदा नव यमानुगाः ॥१४॥
तदाऽऽनेयः सुखेनायं न निषेधं करोम्यहम् । इति रामवचः श्रुत्वा तमूचुस्ते यमानुगाः ॥१५॥
अपूर्वमभवज्जन्म सुमन्त्रस्यास्य राघव । मातुर्योन्या बहिश्चास्य मुखं हस्तौ विनिर्गतौ ॥१६॥
पूर्वं ततोऽस्य दशमे दिवसे दैवयोगतः । उदरादीन्यधोऽङ्गानि पदांतानि शनैः शनैः ॥१७॥
विनिर्गतानि श्रीराम सुमन्त्रै रक्षितो बुधैः । यस्माज्जन्मन्ययं तस्मात्सुमंत्राख्याऽस्य सार्पिता१८॥
अतः पूर्वदिनारभ्य संख्ययाऽऽयुः प्रपूरितम् । अस्य तु तद्दिनारभ्य संख्यया दिवसा नव ॥१९॥
शेषभूताश्च भवता कीर्त्यन्ते ये रघूत्तमाः । अतोऽस्माकं नापराधः संदिग्धं जन्म चास्य हि॥२०॥
वृथाऽयं नीयते राम वृथा शिक्षाऽपि नः कृता । इति तेषां वचः श्रुत्वा रामः प्राह यमानुगान् ॥२१॥
अस्य सोंत्यदिनो ज्ञेयोऽप्रथमो हि यमानुगाः । यस्मिन् दिने सुप्रसूतिरभवच्चास्य मातृकात् ॥२२॥
उत्साहदिवसो ज्ञेयः स एव जातकं तथा । तस्मिन्नेव दिनेऽस्यात्र कृतं पित्रा द्विजोत्तमैः॥२३॥
ज्योतिर्विदा जन्मपत्रे स एव लिखितो दिनः । अतः शेषदिनाः सत्यं ज्ञेयास्तस्यायुषो नव ॥२४॥
अतो युष्माभिर्गन्तव्यं नेयोऽयं दशमे दिने । पुनरागत्य सान्निध्यान्मे निषेधं करोमि न ॥२५॥
इति रामवचः श्रुत्वा तूष्णीमेव यमानुगाः । साश्रुनेत्राश्च छिन्नांगा यमराजं शनैर्ययुः ॥२६॥
रामोऽपि परिवर्त्याथ ययौ स्वनगरीं प्रति । स्त्रीभिर्नीराजितो मार्गे विवेश मन्त्रिणो गृहम् ॥२७॥
तावत्सर्वान्प्रमुदितान्सुमन्त्रेण समन्वितान् । ददर्श रामचन्द्रः स तावद्दृष्ट्वा रघूत्तमम् ॥२८॥
प्रणनाम सुमन्त्रः स पूजयामास राघवम् । ततो रामो ययौ गेहं सर्वे प्रमुदिताननाः ॥२९॥
दिनानि नव शेषायुर्ज्ञात्वा दानादिकं सुधीः । चकार प्रत्यहं भक्त्या सुमन्त्रो राघवाज्ञया ॥३०॥

कहा—हमने आपका क्या अपराध किया था, जिसके लिए आपने हमें ऐसा दण्ड दिया ? रामने कहा कि अभी इसके जीवनके नौ दिन बाकी हैं ॥ १०-१३ ॥ तब तुम आज ही इसे क्यों लिये जा रहे हो ? जब इसके दिन पूरे हो जायँ, तब आकर आनन्दपूर्वक ले जाना । तब मैं भी कुछ नहीं बोलूँगा । इस प्रकार रामकी वाणी सुनकर यमके अनुचर कहने लगे—॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राघव ! इसका जन्म भी एक अपूर्व प्रकारसे हुआ था । पहिले दिन माताकी योनिसे इसके दोनों हाथ तथा मुख बाहर निकल आया था । तदनन्तर दसवें दिन धीरे-धीरे इसके और अङ्ग निकले थे ॥ १६ ॥ १७ ॥ अच्छे मंत्रोंसे पण्डितोंने इसकी रक्षा कर ली थी । अतएव इसका सुमन्त्र नाम पड़ा था ॥ १८ ॥ इसके पूर्व दिनसे अर्थात् जिस दिन इसका हाथ तथा मस्तक बाहर आया, उस दिनसे लेकर आज तकमें इसकी आयु समाप्त हो गयी । आप जो इसके नौ दिन बाकी बतलाते हैं, वे संदिग्ध हैं । इसलिए हे राम ! हमारा कुछ दोष नहीं है ॥ १९ ॥ २० ॥ आप व्यर्थ इसे छीने लिये जाते हैं, हमको व्यर्थ आपने मारा भी है । उनकी बात सुनकर यमदूतोंसे रामने कहा—॥ २१ ॥ हे यमानुचर ! वह अन्तका दिन अर्थात् जिस दिन माताके गर्भसे इसका अच्छी तरह जन्म हुआ है, वही जन्मका दिन माना जायगा ॥ २२ ॥ जिस दिन इसके जन्मका उत्सव मनाया गया है, वास्तवमें वही जन्मदिन है । उसी रोज इसके पिता तथा ज्योतिषियोंने इसका जन्म लिखा है । इसलिए अभी इसके नौ दिन बाकी हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुम लोग जाओ और दसवें दिन आकर इसे ले जाना । तब मैं तुम लोगोंको नहीं रोकूँगा ॥ २५ ॥ रामकी बात सुन और छिन्नअङ्ग होकर आँखोंमें आँसू भरे हुए वे दूत यमलोकको लौट गये ॥ २६ ॥ राम भी लौटकर अयोध्या चले आये । यहाँ स्त्रियोंने उनकी आरती उतारी और राम सुमन्त्रके घर गये ॥ २७ ॥ वहाँ सब लोगोंको सुमन्त्रके साथ प्रसन्न देखा । सुमन्त्रने रामको देखते ही प्रणाम किया और उनकी पूजा की । इसके बाद राम अपने भवन गये । तबसे सब लोग परम प्रसन्न रहे ॥ २८ ॥ २९ ॥ सुमन्त्रने अपने जीवनके नौ दिन बाकी जानकर रामके आज्ञानुसार खूब दान-पुण्य

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ ते यमदूताश्च साश्रुनेत्राः समागताः । उष्णीषाणि करैः क्रोधादास्फाल्य भुवि चाब्रुवन् ॥३१॥
कथं करोष्यधिकारं तवाज्ञाकारिणां त्विमाम् । दृष्ट्वाऽवस्थां न लज्जा ते जायते हृदये यम ॥३२॥
ताड्यास्माकं राघवेण सुमंत्रो मोचितः पथि । दिनानि नव शेषायुः पूर्त्यर्थमधुना वयम् ॥३३॥
देहत्यागं जले कुर्मो न जीविष्याम भो यम । तद्दूतवचनं श्रुत्वा प्रजज्वाल यमस्तदा ॥३४॥
प्राह दूतानद्य रामं बद्ध्वा दण्डं करोम्यहम् । चोदनीयानि सैन्यानि देवेन्द्रं सूचयाम्यहम् ॥३५॥
इत्युक्त्वा त्वरितो गत्वा वृत्तमिंद्रं न्यवेदयत् । पुनरिंद्रं यमः प्राह साहाय्यं क्रियतां मम ॥३६॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा देवेंद्रो यममब्रवीत् । किं भ्रांतोऽसि यमाद्य त्वं विष्णुना योद्धुमिच्छसि ३७॥
गच्छ तूष्णीं संयमनीं रामस्य किं करिष्यसि । तद्भिया हि पुरा दत्तौ मया तौ सुरपादपौ ॥३८॥
एवं तद्वचनं श्रुत्वा वह्निलोकं ययौ यमः । अग्निना भाषितस्त्वेवं निर्ऋतिं वरुणं तथा ॥३९॥
वायुं कुबेरमीशानं रविं चन्द्रं बुधं गुरुम् । शुक्रं शनैश्चरं राहुं केतुं भूमिसुतं ध्रुवम् ॥४०॥
प्रार्थयामास युद्धाय साहाय्यं क्रियतामिति । उत्तराणीन्द्रवत्सर्वे ददुर्भ्रान्तं यमं हि ते ॥४१॥
ततो गत्वा विधिं चापि पातालांतरवासिभिः । सप्तद्वीपवासिनश्च यमः संप्रार्थयन्नृपान् ॥४२॥
तेऽप्युचुर्न करिष्यामः साहाय्यं राघवाग्रतः । ततः क्रोधसमाविष्टः स्वसैन्येन समन्वितः ॥४३॥
रामेण सङ्गरं कर्तुमयोध्यां स यमो ययौ । स्वगणैः सह वेगेन महामहिषसंस्थितः ॥४४॥
अयोध्यां वेष्टयामास नवद्वारविराजिताम् । नवप्राकारसहितां शतघ्नीयन्त्रसंयुताम् ॥४५॥
नवभिः परिखाभिश्च समन्तात्परिवेष्टिताम् । दृढरत्नकपाटाढ्यां रत्नभित्तिविराजिताम् ॥४६॥
सरयूवेष्टितां रम्यां रविकोटिसमप्रभाम् । नानाप्रासादवृन्दैश्च पताकाध्वजशोभिताम् ॥४७॥

आरम्भ कर दिया ॥ ३० ॥ उधर वे यमदूत यमके आगे पहुँचे और अपनी पगड़ी जमीनमें फेंककर कहने लगे—॥ ३१ ॥ हे यमराज ! तुम कैसे अपने अधिकारकी रक्षा करते हो ? अपने आज्ञाकारी हम सेवकोंकी यह दशा देखकर तुम्हें लाज नहीं आती ? ॥ ३२ ॥ रास्तेमें रामने मारकर सुमन्त्रको छुड़ा लिया । क्योंकि उसके जीवनके नौ दिन बाकी थे। राम वह नौ दिन पूरा कर लेनेपर सुमन्त्रको आने देंगे ॥ ३३ ॥ अब हम लोग जलमें डूबकर अपने प्राण दे देंगे । इस प्रकार दूतोंकी बात सुनकर यमराज मारे क्रोधके लाल हो गये ॥ ३४ ॥ उन्होंने दूतोंसे कहा—घबड़ाओ मत, आज ही रामको बाँधकर मैं उनकी इस धृष्टताका दण्ड दूँगा । तुम जाकर सेना तैयार करो । तबतक मैं इन्द्रको सूचित करता आऊँ ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर यमराज तुरंत इन्द्रके पास गये । उन्हें सारा हाल सुनाया और सहायता करनेकी प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ यमराजकी बात सुनकर इन्द्रने कहा—यमराज ! क्या तुम पागल हो गये हो, जो विष्णुभगवान्के साथ युद्ध करना चाहते हो ? ॥ ३७ ॥ चुपचाप अपनी संयमनी नगरीको लौट जाओ । रामका तुम क्या कर लोगे ? उनसे डरकर मैंने अपने हाथोंसे पारिजात और कल्पवृक्ष इन दोनों देववृक्षोंको उठाकर दे आया था ॥ ३८ ॥ ऐसा वचन सुनकर यम अग्निलोक गये, उनसे सहायता माँगी तो अग्निने भी वैसा ही उत्तर दिया। इसके अनन्तर निर्ऋति, वरुण, ॥ ३९ ॥ वायु, कुबेर, ईशान, रवि, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु तथा मङ्गललोक गये ॥ ४० ॥ सर्वत्र उन्होंने सहायताकी प्रार्थना की, किन्तु उस मतवाले यमराजको सबने इन्द्रके समान ही शुष्क उत्तर दिया ॥ ४१ ॥ तब यमराज लौटकर ब्रह्माके पास गये । पातालमें रहनेवाले राजाओं तथा सप्तद्वीपके राजाओंसे भी जाकर सहायताकी प्रार्थना की ॥ ४२ ॥ किन्तु उन्होंने भी कहा कि रामके विरुद्ध मैं तुम्हारी सहायता नहीं करूँगा । इसके बाद क्रोधाविष्ट होकर यमराज अपनी ही सेना लेकर रामके साथ युद्ध करने अयोध्या चले । उस समय उनके समस्त गण साथ थे और यमराज एक बड़े भारी भैंसेपर सवार थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने चारों ओरसे उस अयोध्या नगरीको घेर लिया । जिसमें नौ बडे-बड़े फाटक थे और नौ ही खाइयाँ खुदी थीं । कितनी ही बन्दूकें और तोपें रक्खी थीं । जिनमें रत्नजटित कपाट लगे थे और रत्न ही की दीवार चुनी हुई थी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिसके ऊपर सरयू बह रही थी और करोड़ों सूर्यके प्रकाशकी नाईं जिसका

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Rajagarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यमेन वेष्टितां दृष्ट्वा पुरीं रामो महामनाः । लवमाज्ञापयामास गच्छ योद्धुं यमेन हि ॥४८॥
लवस्तदा रथारूढ़ो दुन्दुभीनां महास्वनैः ।
अयोध्याया बहिर्गत्वा चकार सङ्गरं महत् ॥४९॥
तदा लवशराघातछिन्नदेहा यमानुगाः । निपेतुः क्षणमात्रेण कोटिशो रणभूमिषु ॥५०॥
तान्सर्वान्निहतान् दृष्ट्वा यमो महिषसंस्थितः । चकार तुमुलं युद्धं लवेन क्रोधभासुरः ॥५१॥
स्वबाणौघैर्यमः शीघ्रं रथं सूतं बलं धनुः ।
कवचं मुकुटं चापि चिच्छेद स लवस्य च ॥५२॥
तदा लवश्चातिकुद्धः स्वसैन्येन स्थित पुनः । चकार सङ्गरं घोरं यमेनातिभयंकरम् ॥५३॥
तदाऽमरा विमानस्था ददृशुर्युद्धकौतुकम् । ततो लवः स्वबाणौघैर्महिषं मूर्छितं भुवि ॥५४॥
कृत्वा तं ताडयामास शतबाणैर्यमं जवात् ।
ततो यमोऽप्यतिक्रुद्धो यमदण्डं मुमोच तम् ॥५५॥
तं दण्डं मोचितं दृष्ट्वा ब्रह्मास्त्रं सन्दधे लवः । ब्रह्मास्त्रमागतं दृष्ट्वा यमदण्डो न्यवर्तत ॥५६॥
तदा यमोऽति विकलः पलायनपरोऽभवत् । ब्रह्मास्त्रं तस्य पृष्ठे तद्ययौ कालानलप्रभम् ॥५७॥
तदा दृष्ट्वा रविः शीघ्रं स्वीयां भिन्नां प्रकल्प्य च ।
रथे मूर्तिं ययौ वेगात् प्रार्थयामास तं लवम् ॥५८॥
रे रे बाल यमं त्राहि चोपसंहारयाद्य हि । त्वयोत्सृष्टं ब्रह्मास्त्रं त्वमेवास्त्रविदां वरः ॥५९॥
त्वं मे वंशसमुद्भूतस्त्वयं मे तनयो यमः । कथं स्वपूर्वजं त्वद्य त्वं यमं हन्तुमिच्छसि ॥६०॥
चेदेको मूर्खतां यातः सर्वे मूर्खा भवन्ति न ।
शत्रुं रणात्परिभ्रष्टं वीरास्तं रक्षयन्ति हि ॥६१॥

प्रकाश था। उसमें नाना प्रकारके महल बने थे और वह पुरी बहुत-सी पताकाओं तथा ध्वजाओंसे अलंकृत थी ॥ ४७ ॥ यमराजसे घिरी अयोध्याको देखकर रामने लवसे कहा—तुम यमराजसे युद्ध करनेके लिए जाओ ॥ ४८ ॥ तब दुन्दुभीके विकराल निनादके साथ लव रथपर आरूढ़ होकर अयोध्याके बाहर आये और यमराजके साथ भयङ्कर युद्ध किया ॥ ४९ ॥ उस समय लवके वाणोंसे निहत होकर यमके करोड़ों अनुयायी क्षणमात्रमें धराशायी हो गये ॥ ५० ॥ उन सबोंको मरा देखकर क्रोधसे तमतमाये हुए यमराजने स्वयं लवके साथ तुमुल युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५१ ॥ यमराजने अपने विकराल बाणोंकी वर्षासे शीघ्र लवके रथ, सारथी, धनुष, कवच तथा मुकुटको काट डाला ॥ ५२ ॥ तब अत्यन्त कुपित लवने एक दूसरे रथपर आरूढ़ होकर यमराजके साथ महाभयंकर युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५३ ॥ उस समय समस्त देवता अपने विमानोंपर आरूढ़ होकर समरक्षेत्रमें आये और वह युद्ध देखने लगे। इसके अनन्तर लवने अपने बाणोंकी वर्षासे यमराजके भैंसेको मूर्छित कर पृथ्वीपर लोटा दिया और वेगके साथ बाण चलाते हुए सौ बाणोंकी वर्षासे यमराजपर प्रहार किया। तब यमराजने अतिशय क्रुद्ध होकर लवपर यमदण्ड छोड़ा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ यमदण्डको देखकर लवने ब्रह्मास्त्र चला दिया, जिससे यमदण्ड लौट पड़ा। तब यम विकल होकर भाग निकले और कालानलके समान ब्रह्मास्त्र उनके पीछे-पीछे चला ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ उस ब्रह्मास्त्रको देखकर सूर्यने समझा कि इससे यम नहीं बच सकता। मेरा बेटा अवश्य मारा जायगा। तब सूर्यदेव स्वयं रथपर आरूढ़ होकर लवके पास आये और प्रार्थना करने लगे ॥ ५८ ॥ सूर्यने कहा—अरे अरे हे बच्चे! इस अस्त्रको लौटाकर यमको बचाओ। तुम्हींने इसे चलाया है और तुम्हीं इसका निवारण भी कर सकते हो। तुम अस्त्रविद्या जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हो ॥ ५९ ॥ तुम हमारे वंशमें उत्पन्न हुए हो और यम भी मेरा ही पुत्र है। क्या अपने पूर्वज यमको ही तुम मार डालना चाहते हो ? ॥ ६० ॥ यदि एक लड़का मूर्ख हो गया तो क्या उसके साथ सब मूर्ख हो

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इत्यादिनानावचनैः प्रार्थितो रविणा यदा ।
तदा लवोऽपि संहारं चकारास्त्रस्य ब्रह्मणः ॥६२॥
ततो लवं पुरस्कृत्य यमेन तपनः पुरीम् । विवेश रघुनाथस्य दर्शनार्थं मुदान्वितः ॥६३॥
तदा के देववाद्यानि नेदुः कुसुमवृष्टिभिः । लवं ववर्षुरमरा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६४॥
पौरनार्यो लवं मार्गे ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । गोपुराट्टालसंस्थाश्च ददृशुस्त मुहुर्मुहुः ॥६५॥
नेदुर्नानासुवाद्यानि ननृतुर्वारयोषितः । तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च जगुर्गंधर्वकिन्नराः ॥६६॥
एवं नानासमुत्साहैः स्त्रीभिर्नीराजितः पथि ।
ययौ स विजयी बालः प्रणनाम रघूत्तमम् ॥६७॥
रविमागतमाज्ञाय प्रत्युद्गम्य रघूत्तमः । नत्वा रविं करे धृत्वा सभायां संविवेश ह ॥६८॥
ततः सिंहासने भानुं निवेश्य स्वीयपूर्वजम् । पूजयामास श्रीरामः षोडशैरुपचारकैः ॥६९॥
तदाऽब्रवीद्रविं रामः सभायां पुरतः स्थितः ।
पूर्वजस्त्वं क्षमस्वाद्य यल्लवेनापराधितम् ॥७०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा रामं प्राह रविस्तदा । त्वन्नाभिकमलादुब्रह्मा समुद्भूतो रघूत्तम ॥७१॥
मरीच्याद्या विधेः पुत्रा मरीचेः कश्यपः सुतः ।
कश्यपाच्च ममोत्पत्तिः पौत्रपौत्रस्त्वहं तव ॥७२॥
क्षमस्व मम पुत्रेण यद्यमेनापराधितम् । एवं संप्रार्थ्य श्रीरामं चासने संन्यवेशयत् ॥७३॥
यमेन कारयामास रघुनाथाय वन्दनम् । तदा समाययुर्देवा नेमुः सर्वे रघूत्तमम् ॥७४॥
रामोऽपि सकलान्देवान्पूजयामास सादरम् ।
ततो रामाज्ञया चेन्द्रः सुधावृष्ट्या रणे मृतान् ॥७५॥
शीघ्रमुत्थापयामास सर्वान्वीरान्सवाहनैः । ततो रामो यमं प्राह यावद्राज्यं करोम्यहम् ॥७६॥

जायँगे । वीर लोग संग्रामभूमिसे भागे हुए शत्रुकी भी रक्षा ही करते हैं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार कितनी ही बातोंसे सूर्यके प्रार्थना करनेपर लवने ब्रह्मास्त्रका सम्बरण कर लिया ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर लवको आगे करके यमराजके साथ-साथ सूर्य रामचन्द्रका दर्शन करनेके लिए हर्षपूर्वक अयोध्या नगरीमें गये ॥ ६३ ॥ उस समय देवताओंने अपने बाजे बजाये, लवपर फूलोंकी वर्षा की और अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ६४ ॥ पुरवासिनी स्त्रियें भी रास्तेमें कोठेपरसे फूल बरसाती हुई बार-बार लवको निहार रही थीं ॥ ६५ ॥ उस समय विविध प्रकारके बाजे बजे, गणिकायें नाचने लगीं और मागध, गन्धर्व तथा किन्नरगण स्तुति करने लगे ॥ ६६ ॥ इस तरह अनेक उत्सवोंके साथ रास्तेमें आरती उतरवाता हुआ वह विजयी बालक लव रामके पास पहुँचा और प्रणाम किया ॥ ६७ ॥ रामने सूर्यभगवानका आगमन सुनकर उनकी अगवानी की, प्रणाम किया और हाथ पकड़कर सभाभवनमें ले गये ॥ ६८ ॥ इसके अनन्तर अपने पूर्वज सूर्यको रामने सिंहासनपर बिठलाया और षोडशोपचारसे उनकी पूजा की ॥ ६९ ॥ फिर रामने सूर्यभगवान्से कहा—आप हमारे पूर्वज हैं । अतएव लवने जो कुछ अपराध किया हो, सो क्षमा कीजिये ॥ ७० ॥ रामकी ऐसी बात सुनकर सूर्यने भगवान्से कहा—हे रघूत्तम ! आपही के नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे और उनसे मरीचि आदि उत्पन्न हुए । मरीचिसे कश्यप हुए और कश्यपसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ । अतएव मैं आपके पौत्रका पौत्र हूँ ॥७१॥ ॥ ७२ ॥ हमारे पुत्र यमने जो अपराध किया हो, सो क्षमा करिये । इस प्रकार विनय करके सूर्यने रामको आसनपर बिठलाया और यमसे प्रणाम करवाया । इसके बाद समस्त देवतावृंद वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने रामचन्द्रजीकी वन्दना की ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ रामने भी सादर सब देवताओंकी पूजा की । इसके बाद रामकी आज्ञासे इन्द्रने संग्राममें मरे हुए लोगोंपर अमृतकी वर्षा की और वाहनसमेत समस्त वीरोंको उठा-

CC0. In Public Domain Kinkar Sharma Nagar Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तावत्त्वया तु पूर्णायुर्नरो नेयो न चेतरः ।
तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्याह यमस्तदा ॥७७॥
ततः प्राप्ते सुदशमे दिने स्त्रीभिर्विगाह्य सः । सुमन्त्रो राघवं नत्वा तदग्रे जीवितं जहौ ॥७८॥
ततः स दिव्यदेहाभिः स्वस्त्रीभिर्दिव्यदेहधृक् ॥७९॥
सुमन्त्रः पूजितः सर्वैर्विमाने संस्थितो बभौ । रामाग्रे मरणादेव सुरैः सर्वत्र वेष्टितः ॥८०॥
ततः दृष्ट्वा रवी रामं यमेन स्वस्थलं ययौ ।
ययौ सुमन्त्रः स्वस्त्रीभिर्वैकुण्ठं निर्जरा दिवम् ॥८१॥
रामः सुमन्त्रपुत्रेण तत्क्रियादि सुमन्तुना । कारयित्वा यथाशास्त्र तत्पदे तं न्यवेशयत् ॥८२॥
ततो रामो लक्ष्मणेन पृथिव्यां घोषयन्मुहुः ।
गजन्यस्तां दुन्दुभिं स्वां पताकाध्वजशोभिताम् ॥८३ ।
तथेति लक्ष्मणश्चापि दूतानाज्ञापयत्तदा । दूतास्तेऽथ गजारूढाः सप्तद्वीपान्तरेषु हि ॥८४॥
रामाज्ञां श्रावयामासुर्जनान्दुन्दुभिनिःस्वनैः । अपूर्णायुर्मृतः कश्चिन्नेतव्यो राघवं प्रति ॥८५॥
पौराणिकाः स्थापनीया गेहे ग्रामे पृथक् पृथक् ।
नित्यनैमित्तिकं कर्म न त्याज्यं वै कदाचन ॥८६॥
नावमान्या भूसुराश्च द्वेषः कार्यो न कस्यचित् । हव्यं कव्य सदा देयं दण्डनीयाश्च तस्कराः ॥८७॥
शासनीया दुराचारतत्परा ये जना भुवि । वन्दनीया सदा माता वन्दनीयः सदा पिता ॥८८॥
पूजनीयाः सदा देवाः कार्यो धर्मो निरन्तरम् ।
चैत्रस्नानं सदा कार्यमयोध्यायामथापि वा ॥८९॥
रामतीर्थेषु सर्वत्र कार्या धर्मा विशेषतः ।
द्वारकां सदा गत्वा कार्यं वैशाखमज्जनम् ॥९०॥
ऊर्जे काश्यां पञ्चनपदे स्नातव्यं विधिपूर्वकम् । गत्वा प्रयागं प्रत्यब्दं कर्तव्यं माघमज्जनम् ॥९१॥

कर खड़ा किया । तदनन्तर रामने यमराजसे कहा कि जबतक मैं पृथ्वीपर शासन करता रहूँ, तबतक तुम उन्हीं मनुष्योंको अपने लोकमें ले जाओ, जिनकी आयु पूर्ण हो गयी हो और किसीको नहीं। रामकी बात सुनकर यमराजने कहा कि "ऐसा ही होगा" ॥ ७५–७७ ॥ इसके पश्चात् दसवें दिन स्त्रियोंको साथ लेकर सुमन्त्रने रामको प्रणाम करके उनके सामने ही प्राण त्याग किया ॥ ७८ ॥ सुमन्त्रकी स्त्रियोंने भी उसी समय प्राण त्याग दिया और उन स्त्रियोंके साथ दिव्यरूप धारण करके सुमन्त्र सब लोगोंसे पूजित होते हुए विमानपर बैठकर अतिशय शोभित हुए। रामके समक्ष मरनेसे वे समस्त देवताओंके साथ दिव्यलोकको गये ॥ ७९ ॥ ॥ ८० ॥ इसके पश्चात् सूर्य भी रामसे आज्ञा लेकर यमके साथ लौट पड़े। रामने सुमन्त्रके पुत्र सुमन्तुके हाथों सुमंत्रकी क्रिया करवायी और पिताके आसनपर उसी पुत्रको बिठाला ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ तदनन्तर रामने लक्ष्मणको पृथ्वीतलमें इस बातकी घोषणा करनेकी आज्ञा दी ॥ ८३ ॥ लक्ष्मणने भी "बहुत अच्छा" कहकर दुन्दुभी बजानेवालोंको आज्ञा दे दी। वे हाथीपर सवार हो तथा सातों द्वीपोंमें जा-जाकर नगाड़े बजाते हुए रामकी आज्ञा सुनाने लगे। उन्होंने कहा—राजा रामचन्द्रका आदेश है कि यदि मेरे राज्यमें कोई मनुष्य बिना आयु पूर्ण हुए ही मरे तो उसे मेरे पास ले आया जाय ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ घर-घर तथा गाँव-गाँवमें पुराणोंको जाननेवाले पौराणिक रक्खे जायँ। कोई मनुष्य अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको न छोड़े ॥ ८६ ॥ ब्राह्मणोंका कोई अपमान न करे, कोई किसीके साथ द्वेषभाव न रक्खे, कोई किसीके द्रव्यको न ले और चोरोंको दण्ड दे ॥ ८७ ॥ जो लोग दुराचारी हों, उनपर कड़ा शासन किया जाय। धर्म-कर्म सदा होता रहे। अयोध्यामें अथवा किसी अन्य रामतीर्थमें जाकर लोग चैत्रस्नान किया करें ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ विशेषतः

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चातुर्मास्यव्रतादीनि कर्तव्यानि व्रतानि हि । प्रत्यंगणेषु तुलसी पूजनीया हि सर्वदा ॥९२॥
न निराकरणीयोऽत्र त्वतिथिश्च कदाचन ।
न विप्रयाञ्चा कर्तव्या मृषा क्वापि कदाचन ॥९३॥
यदीच्छेत्स ततो देयं सर्वस्वं ब्राह्मणाय वै । ग्रामे गृहे क्वचिन्नैव कलहं तु समाचरेत् ॥९४॥
सदा गुरुर्वन्दनीयः कर्तव्यं श्रवणं सदा । प्रातःस्नानं सदा कार्यं होतव्या विधिनाऽग्नयः ॥९५॥
कार्यो जपः शंकरस्य ध्येयो नित्यं महेश्वरः । एकांते हि तपः कार्यं द्वाभ्यामध्ययनं तथा ॥९६॥
त्रिभिर्गीतानि कार्याणि चतुर्भिर्विचरेत्पथि ।
परदाररतिस्त्याज्या नावलोक्याऽन्यकामिनी ॥९७॥
परलक्ष्म्याः स्पृहा कार्या न नरैश्च कदाचन । तीर्थं विना पुण्यकाले न स्नातव्यं गृहेष्वपि ॥९८॥
न द्वेष्या गणका वैद्यास्ते पोष्याश्च पुरे पुरे । न वेश्यागमनं कार्यं न दासीं स्पृहयेद्धृदि ॥९९॥
नित्यकर्म यथाकाले कर्त्तव्यं सर्वदा नरैः ।
नावमान्या हि गुरवः परनिंदां न कारयेत् ॥१००॥
जलाशया वने कार्या रोपणीया नगाः पथि । धर्मशाला पृथक्कार्या न नग्नां वीक्षयेद्वधूम् ॥१०१॥
अन्नसत्राणि कार्याणि पुरे ग्रामे वने तथा । प्रकुर्वन्तु वने रक्षां मार्गस्थानां वनेचराः ॥१०२॥
भयं माऽस्तु वने क्वापि निशायां मार्गगामिनाम् ।
वैश्येभ्यस्तु करो ग्राह्यो नेतरेषां कदाचन ॥१०३॥
पादयोः पादुके धृत्वा तीर्थं देवं गुरुं प्रति । गोष्ठं वृन्दावनं होमशालां गच्छेन्न सर्वदा ॥१०४॥
पारायणानि ग्रंथानां वेदानां च सदा नरैः ।
कर्तव्यानि तु निष्कामं मासकार्याणि कारयेत् ॥१०५॥

लोग धर्म-कर्म करते रहें। द्वारकापुरीमें जाकर लोग वैशाखस्नान करें ॥ ९० ॥ कार्तिक मासमें काशीकी पञ्चगङ्गामें और प्रतिवर्ष माघमासमें प्रयाग जाकर स्नान करें ॥ ९१ ॥ चातुर्मास आदिका व्रत करते रहें। हर एक घरके आँगनमें तुलसीकी पूजा होती रहनी चाहिए ॥ ९२ ॥ मेरे राज्यमें कभी कोई आये हुए अतिथिका अनादर न करे । कभी कोई किसी ब्राह्मणकी माँग व्यर्थ न करे ॥ ९३ ॥ यदि वह चाहता हो तो ब्राह्मणके लिये अपना सर्वस्व दे डाले। किसी घर या गाँवमें कोई लड़ाई-झगड़ा न करे ॥ ९४ ॥ सदा गुरुकी वन्दना करे, उनसे सर्वदा धर्मग्रंथ सुनता रहे, नित्य प्रातःस्नान करे और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करता रहे ॥ ९५ ॥ नित्य शिवजीका ध्यान और जप करता हुआ एकान्तमें तपस्या करे। दो व्यक्ति साथ बैठकर अध्ययन करें, तीन मनुष्य साथ बैठकर गायें-बजायें और चार मनुष्य साथ होकर टहलने निकलें। दूसरोंकी स्त्रीसे प्रेम न करें, दूसरेकी स्त्रीको देखें भी नहीं ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ दूसरेकी लक्ष्मीको पानेकी इच्छा न करे, किसी पर्वकालके समय घरमें स्नान न करे, बल्कि किसी तीर्थस्थानपर चला जाय ॥ ९८ ॥ ज्योतिषी तथा वैद्यके साथ कोई बिगाड़ न करे। यदि किसी दूसरे गाँवमें भी रहते हों तो उनका पालन करे। न कोई वेश्यागमन करे और न दासीसे प्रेम करे ॥ ९९ ॥ ठीक समयपर लोग अपने नित्यकर्म करते रहें। गुरुजनोंका अपमान कभी न करे और न दूसरोंकी निन्दा ही करे । वनोंमें जलाशय बनवाये। अलग-अलग धर्मशालायें बनवाये। कभी नङ्गी स्त्रीको न देखे ॥ १०० ॥ १०१ ॥ पुर, ग्राम और वनोंमें जहाँ-तहाँ अन्नक्षेत्र खोले। वनचर मनुष्य वनमें पहुँचे हुए पथिकोंकी रक्षा करें ॥ १०२ ॥ रात्रिके समय भी चलनेवालोंको वनमें किसी प्रकारका भय न रहे। केवल वैश्योंसे कर लिया जाय और लोगोंसे नहीं ॥ १०३ ॥ पाँवमें जूता पहिनकर किसी तीर्थस्थान देवता तथा गुरुके पास न जाय। गोशाला तथा तुलसीकी बगीचीमें भी जूता पहिनकर न जाय ॥ १०४ ॥ धर्मग्रंथों और वेदोंका पारायण सर्वदा सब लोग निष्कामभावसे करते रहें ॥ १०५ ॥

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यतयो वन्दनीयाश्च भोजनीया गृहे गृहे। यतये कमण्डलवः कौपीनं पादुकां तथा ॥१०६॥
वंशदण्डाः सदा देयाः सदा तोष्याः सुभाषणैः।
न खेदयेद्वधूं स्त्रीयां दिने निद्रां न कारयेत् ॥१०७॥
हरिदिन्यां न भोक्तव्यमुपोष्या च चतुर्दशी।
कृष्णपक्षभवा तस्यां रात्रौ कार्यं शिवार्चनम् ॥१०८॥
नानामहोत्सवाद्यैश्च यथाविधिपुरःसरम्। अष्टमी कृष्णपक्षस्य सदोपोष्या शुभा तिथिः ॥१०९॥
देवालयेषु कर्तव्या बलयो भक्तिपूर्वकाः। नानापक्वान्ननैवेद्यान्देवेभ्यश्च समर्पयेत् ॥११०॥
धेनुदानं वाजिदानं गजदानं प्रकारयेत्। भूसुरेभ्यः प्रदेयानि गृहदानानि सादरम् ॥१११॥
गेहे गेहे सदा कार्यं धेनुविप्रप्रपूजनम्।
वसन्ते चन्दनं देयं छत्राणि व्यजनानि च ॥११२॥
पानकं जलकुंभांश्च कार्यं पादावनेजनम्। दधि तक्रं हि जंबीरं देयं विप्रेभ्य आदरात् ॥११३॥
कार्तिके दीपदानानि रात्रौ जागरणानि च। तुलसीसेवनं धात्रीछायामाश्रित्य भोजनम् ॥११४॥
गीतनृत्यादिकरणं विष्णोरग्रे निरन्तरम्।
त्रिपुरारेः समीपे हि पौर्णिमायां हि कार्तिके ॥११५॥
करणीयो महादाहो घृताक्तवर्तिकादिभिः। माघे देयानि काष्ठानि कंबलाश्चित्रितास्तथा ॥११६॥
चैत्रे तांबूलदानं च तथा रम्भाफलानि च। उर्वारुकानि देयानि चन्दनं दधितक्रकम् ॥११७॥
आदर्शदानं कस्तूरीदानं जातीफलस्य च। एलाकर्पूरदानानि मधुमासि प्रकारयेत् ॥११८॥
पदाऽग्रजं न स्पृशेच्च न पादं घर्षयेत्पदा। द्वाभ्यां कराभ्यां कंडूतिं मस्तकस्य न कारयेत् ॥११९॥
दातव्यः करभारो हि विना विप्रैर्नृपाय हि।
नोपेक्षणीयो राज्ञश्च जनैर्दण्डः कदाचन ॥१२०॥
माननीयाश्च श्वशुराः पोष्याः पाल्याः सदैव हि। सुहृदस्तोषणीयाश्च मित्रे कोपं न कारयेत् ॥१२१॥

महात्माओंकी वन्दना की जाय और घर-घर भोजन कराया जाय। उन्हें कमण्डलु, कौपीन, चरणपादुका आदि दान दिया जाय ॥ १०६ ॥ उन्हें बाँसकी छड़ी भी दे और मीठी-मीठी बातोंसे प्रसन्न करे। कभी कोई अपनी स्त्रीको दुःखित न करे और दिनमें शयन न करे। एकादशीको अन्नका आहार न करे और कृष्णपक्षकी चतुर्दशीका भी व्रत किया करे। उस रात्रिमें लोग उत्साहसे शिवजीका पूजन करें ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ कृष्णपक्षकी अष्टमीका भी व्रत सब लोग किया करें। क्योंकि यह बड़ी शुभ तिथि है ॥ १०९ ॥ देवालयोंमें भक्तिपूर्वक पूजन करके विविध प्रकारके नैवेद्य देवताओंको समर्पित किये जायँ ॥ ११० ॥ लोग समय-समयपर धेनुदान, वाजिदान, गजदान आदि दान आदरपूर्वक ब्राह्मणोंको दिया करे ॥ १११ ॥ घर-घरमें सदा गौओं तथा विप्रोंका पूजन होता रहना चाहिये। वसन्त ऋतुमें चन्दन, छत्र तथा पंखेका दान करें ॥ ११२ ॥ पानी पीनेके लिये लोटा, जल भरनेके लिए घड़ा, पैर धोनेके लिए झारी, दही, मट्ठा और नीबूका दान ब्राह्मणोंको दे ॥ ११३ ॥ कार्तिक मासमें दीपदान, रात्रिको जागरण, तुलसीकी सेवा और आँवलेकी छायामें भोजन करे ॥ ११४ ॥ निरन्तर विष्णुभगवान्के सामने नाचे-गाये। कार्तिककी पूर्णिमाको शिवजीके सामने घीमें भीगी बत्ती आदिका महादान करे। माघ मासमें लकड़ियों तथा रङ्ग-बिरङ्गे कम्बलका दान करे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ चैत्रमें ताम्बूल तथा केलेके फल दान करके अगर, चन्दन, दही और मट्ठा आदि दे ॥ ११७ ॥ वैशाखके महीनेमें शीशा, कस्तूरी, जायफल, इलायची तथा कपूरका दान करे ॥ ११८ ॥ पैरसे बड़े भाईको न छुए, पैरसे पैर न रगड़े, दोनों हाथोंसे सिर न खुजलाये ॥ ११९ ॥ ब्राह्मणके अतिरिक्त सब लोग राजाको राज्यकर देते रहें। राजाके दिये दण्डकी उपेक्षा न करे ॥ १२० ॥ अपने-अपने श्वशुरकी इज्जत करे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

न कर्तव्यो रिपूणां च विश्वासश्च कदाचन।
कार्पण्यं नैव कर्तव्यं दानकर्मसु सर्वदा ॥१२२॥
न द्यूतेन कदा कार्या क्रीडा दारिद्र्यसूचिनी।
न श्रोतव्या कदा वार्ता मद्यानां च नरोत्तमैः ॥१२३॥
तीर्थयात्रा सदा कार्या कृच्छ्रकादि समाचरेत्। कार्यं लिंगार्चनं नित्यं कोटिलिंगानि श्रावणे ॥१२४॥
कर्तव्यानि नरैर्भक्त्या सदैवापि च कारयेत्। लघुरुद्रान्महारुद्रानतिरुद्रान्समाचरेत् ॥१२५॥
दानानि पुस्तकानां च कर्तव्यानि निरन्तरम्।
कीर्तनानि च कार्याणि देवागारेषु वा गृहे ॥१२६॥
साधूनां पूजनं कार्यं नमस्कार्यः सदा रविः। ग्रामे ग्रामे वायुपुत्रप्रतिमाः सर्वदा पृथक् ॥१२७॥
सिंदूराक्ताश्च तैलाक्ताः पूजनीया निरन्तरम्। चतुर्थ्यां गणराजस्य पूजनानि प्रकारयेत् ॥१२८॥
अर्पयेद्गणराजाय मोदकान्पूर्णपूरितान्।
पञ्च खाद्यानि सिंदूरदूर्वादीन्यर्पयेत्सदा ॥१२९॥
सदाऽऽत्मचर्चा कर्त्तव्या स्तोत्रपाठान्प्रकारयेत्।
गीतायाः पठनं वेदानध्यापयेत्सदा ॥१३०॥
सदैव शांतिसूक्तानि पुण्यसूक्तान्यनेकशः। पुण्यं पुरुषसूक्तं च श्रीसूक्तादीनि वै पठेत् ॥१३१॥
सदा धर्मे मतिः कार्या कार्यो धर्मस्य संग्रहः। दुष्टबुद्धिः सदा त्याज्या पातकं परिमार्जयेत् ॥१३२॥
ज्ञातव्यं चपलं चायुः क्रूरो ज्ञेयो यमो महान्।
दारुणा नारकी पीडा स्मर्तव्या हृदि सर्वदा ॥१३३॥
गतस्तातो मृता माता गतश्च प्रपितामहः। पितामहो गतश्चेति गमनं स्वं निरीक्षयेत् ॥१३४॥
गतं यथाऽत्र बालत्वं तारुण्यं च गतं यथा।
यथा गच्छति वार्द्धक्यं स्मरध्वं यमशासनम् ॥१३५॥

और नौकरोंका सदा पालन करता रहे। अपने नातेदारोंको प्रसन्न रक्खे। मित्रपर कोप न करे॥ १२१॥ कभी भी शत्रुपर विश्वास न करे और दानादि कर्मोंमें कभी कृपणता न करे। कभी जुवा न खेले। क्योंकि यह दरिद्रता-को पास बुलानेवाला रोग है। अच्छे लोग कभी मदिराकी बात भी न सुनें॥ १२२॥ १२३॥ सदा तीर्थोंकी यात्रा करे और कभी-कभी कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत भी किया करे। प्रतिदिन शिवलिंगका पूजन करें और श्रावणमासमें एक करोड़ शिवलिंग बनाकर उनकी पूजा करे॥ १२४॥ बन पड़े तो सदा ऐसा करे। लघुरुद्र, महारुद्र एवं अतिरुद्र इन तीनों यज्ञोंको बराबर करता जाय॥ १२५॥ निरन्तर पुस्तकदान करे। घरमें अथवा देवालयमे जाकर प्रतिदिन कीर्तन करे॥१२६॥ सब लाग साधुओंका पूजन और प्रतिदिन सूर्यको नमस्कार करें। गाँव-गाँवमें हनुमान्जीकी मूर्तियाँ रक्खी जायँ॥ १२७॥ तेलसे मिला सिंदूर लगाकर नित्य उनकी पूजा की जाय। प्रत्येक चतुर्थी तिथिको गणेशजीका पूजन किया जाय॥ १२८॥ मोदक तथा पूरनपूरी आदि पकवान बनाकर गणेशजीको अर्पण करे और सिन्दूर-दूर्वा आदि भी चढ़ाये॥ १२९॥ प्रतिदिन आत्मज्ञान-सम्बन्धी चर्चा, स्तोत्रपाठ, गीताका अध्ययन तथा वेदोंका अध्ययन-अध्यापन करता रहे॥ १३०॥ नित्य शान्तिसूक्त तथा श्रीसूक्त आदिका पाठ किया करे॥ १३१॥ सदा अपनी बुद्धि धर्ममें स्थित रक्खे और धर्मका संग्रह करता चले। दुष्ट बुद्धिका परित्याग करे और किये हुए पापोंसे छूटनेका उपाय करता रहे॥ १३२॥ आयुको चंचल तथा यमराजको महाक्रूर समझे। नरककी दारुण पीड़ाओंका सदा स्मरण करता रहे॥ १३३॥ यह सोचता रहे कि पिताजी चले गये, माता मर गयी, पितामह और प्रपितामह भी चल बसे, अब हमारी बारी है। जिस तरह बाल्यकाल गुजर गया, तरुणाई बीत गयी, उसी तरह यह वृद्धा-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गता दंता गते नेत्रे श्लथा जाता त्वगत्र हि । कृष्णकेशाः सिता जाता मृत्युर्ज्ञेयः पुरःस्थितः ॥१३६॥
दाने विलंबो नो कार्यः कार्यं चित्तं सुनिर्मलम् । तुषवच्च धनं देयं मा कार्पण्यात्प्ररक्षयेत् ॥१३७॥
एवं श्रीरामदूतास्ते सप्तद्वीपांतरस्थितान् ।
श्रावयित्वा राघवाज्ञां महादुंदुभिनिःस्वनैः ॥१३८॥
अयोध्यां स्वां ययुः सर्वे रामं वृत्तं न्यवेदयन् ।
संश्राविता तवास्माभिश्चाज्ञा सर्वान् जनान्मुहुः ॥१३९॥
सप्तद्वीपेषु सर्वत्र दुंदुभीनां महास्वनैः । तत्तेषां वचनं श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽभवत्तदा ॥१४०॥
एव रामेण भूम्यां हि चरित्राणि महांति च । आचरितान्यनेकानि कस्तान्यत्र वदिष्यति ॥१४१॥
एवं शिष्य मया प्रोक्तं राज्यकांडं मनोरमम् ।
चतुर्विंशत्सुसर्गैश्च महामङ्गलकारकम् ॥१४२॥
राज्यकांडं नृपा यत्र पठन्ति भक्तितत्पराः । न ते राज्यात्परिभ्रष्टा भवन्ति हि कदाचन ॥१४३॥
राज्यकांडं महापुण्यं महामांगल्यदायकम् । ये शृण्वंति नरा भूम्यां ते मांगल्यं भजन्ति हि ॥१४४॥
एकैकवर्धितैः सर्गैरेकैकेन क्षयेन च । सप्तचत्वारिंशद्दिनैरनुष्ठानं सुसिद्धिदम् ॥१४५॥
आधिपत्यं नराः प्राप्य राज्यकांडं पठन्ति ये ।
आधिपत्यात्परिभ्रष्टा न भवन्ति कदाचन ॥१४६॥
राज्यकांडं पठित्वा तु रणे वादे जयो भवेत् । शरणं शत्रवः शीघ्रं यास्यत्येतच्छ्रवादिना ॥१४७॥
आनन्दरामायणमध्यसंस्थं ये राज्यकांडं मनुजाः पठन्ति ।
राज्याच्च्युता राज्यपदं लभन्ते भवन्ति भ्रष्टा न तु ते पदस्थाः ॥१४८॥
आनदरामाणमेतदुत्तमं तत्रापि कांडेषु विचित्रमुत्तमम् ।
श्रीराज्यकांडं परमं सुसौख्यदं सदाऽतिभक्त्या श्रवणीयमादरात् ॥१४९॥

वस्था भी चली जायगी, यह सोचकर यमके कठोर शासनका स्मरण करे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ दांत टूट गये, आँखोंसे कम सूझने लगा, शरीरके चमड़े ढीले पड़ गये और काले-काले बाल श्वेत हो गये। तब यह समझे कि अब मृत्यु सामने आकर खड़ी है ॥ १३६ ॥ दानमें विलम्ब न करे और अपना चित्त निर्मल रक्खे। भूसीकी तरह समझकर धनका दान करे। कंजूस बनकर उसकी रक्षा न करे ॥ १३७ ॥ इस तरह सातों द्वीपोंमें रहनेवालोंको रामकी आज्ञा सुनाकर वे दूत रामके पास लौट गये और उनको सब समाचार सुनाते हुए कहने लगे—हे राघव ! हमने सप्तद्वीपके निवासियोंको दुन्दुभोकी गर्जनाके साथ आपकी आज्ञा सुना दी। उनकी बात सुनकर राम प्रसन्न हुए ॥ १३८–१४० ॥ इस प्रकार रामने इस पृथ्वीतलपर कितने ही बड़े-बड़े काम किये। उन सबको पूरी तरह बतलानेवाला कौन है ? ॥ १४१ ॥ हे शिष्य ! इस रीतिसे मैंने तुम्हें चौबीस सर्गोंमें महा मङ्गलकारक मनोहारी राज्यकाण्ड सुनाया ॥ १४२ ॥ भक्तितत्पर होकर राजा लोग यदि इस राज्यकाण्डको पढ़ेंगे-सुनेंगे तो वे कभी भी अपने-अपने राज्यसे च्युत न होंगे ॥ १४३ ॥ यह राज्यकाण्ड बड़ा पवित्र और महामङ्गलदायक है। जो मनुष्य पृथ्वीतलपर इसे सुनेंगे, उनका सदा कल्याण होगा ॥ १४४ ॥ प्रतिदिन एक एक सर्ग बढ़ाता हुआ और पूरा होनेपर एक-एक कम करता हुआ यदि इसका अनुष्ठान करे तो यह सब प्रकार-की सिद्धियाँ प्रदान करता है ॥ १४५ ॥ कहींका आधिपत्य पाकर जो इसका पाठ करते हैं, वे अपने आधिपत्यसे कभी भी भ्रष्ट नहीं होते ॥ १४६ ॥ राज्यकाण्डका पाठ-पूजन आदि करनेसे शत्रु शीघ्र अपनी शरणमें आ जाते हैं ॥ १४७ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत इस राज्यकाण्डको जो लोग पढ़ते हैं, वे यदि राज्यसे भ्रष्ट हो गये हों तो फिर राज्याधिकारी हो जाते हैं। फिर कभी वे उससे भ्रष्ट नहीं होते ॥ १४८ ॥ पहले तो आनन्दरामायण ही उत्तम है, फिर उसके सब काण्डोंमें यह राज्यकाण्ड उत्तम है। यह हर तरह सुखदायक

CC-0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राज्यस्थितैर्वा व्यवसायतत्परैः सदैव चैतच्छ्रवणीयमादरात् ।
उत्साहकाले व्रतबन्धमङ्गले विवाहकाले पठनीयमुत्तमम् ॥१५०॥
श्रीराज्यकांडं श्रुतिसौख्यदायकं पुण्येषु कालेषु पठन्ति ये नराः ।
लभंति सौख्यान्यतिमङ्गलानि ते गच्छंति विष्णोर्वरयानगाः पदम् ॥१५१॥
पुण्यं पवित्रं परमं विचित्रं श्रीरामचन्द्रस्य कथानकं सदा ।
भक्त्या मुनीनामपि मङ्गलप्रदं श्रोतव्यमेतत्पठनीयमादरात् ॥१५२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे उमामहेश्वरसंवादे तथा रामदासविष्णुदाससंवादे यमशिक्षाकरणं सुमंत्रवैकुण्ठारोहणं प्रजोपदेशकरणं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥२४॥

है। इसलिए इसको सादर श्रवण करना चाहिए ॥ १४९ ॥ कोई राजा हो या वाणिज्यमें लगा हो, उसे यह काण्ड सुनते रहना चाहिए। विशेषकर जब कोई विवाह-व्रतबंध आदि उत्साहका समय हो, तब इसे अवश्य सुने ॥ १५० ॥ सुननेमें सुख देनेवाले इस काण्डको जो किसी पवित्र समयमें पढ़ते या सुनते हैं, वे अंत समयमें विमानपर चढ़कर विष्णुलोकको जाते हैं ॥ १५१ ॥ परम पवित्र और अति विचित्र श्रीरामचन्द्रका यह कथानक मुनियोंको भी मंगलदाता है। अतएव सादर इसका पठन और श्रवण करना चाहिए ॥ १५२ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

॥ इति राज्यकाण्डं उत्तरार्द्धं समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection